दीया, बाती और तूफान

या, बाती और तूफान

श्रीराम शर्मा 'राम'

नवयुग प्रकाशन दिल्ली—७

मूल्य : पाँच रुपये
प्रकाशक : नवयुग प्रकाशन, बैंग्लो रोड, दिल्ली
मुद्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजन्सी द्वारा नूतन प्रेस, दिल्ली

एक

विश्व के ऐश्वर्य से दूर, विभिन्नता और दरिद्रता के झंझावात में पड़े हुए वे तीन प्राणी—पिता, पुत्री और पुत्र—मानो इस रहस्य को नहीं समझ सके कि आखिर इस जीवन का अर्थ क्या है ! प्रौढ़ आयु का वह व्यक्ति कि जिसने एक मास पूर्व ही, अपनी पत्नी को खो दिया और दरिया किनारे पर उसका दाह-संस्कार सम्पन्न किया, अभी तक नहीं भूल सका था कि उस चिता की लपटें कितनी ऊँची थीं और किस प्रकार क्षण भर में राख का ढेर हो गयी थीं। वह व्यक्ति इस बात को भी नहीं भुला सका कि मरण-बेला में पत्नी ने अपने जीवन की समूची ममता और आकांक्षा को समेट कर, पति को सुनाया था—'मैं तुम्हारे पास से जा रही हूँ···नाता तोड़ रही हूँ, तुमसे ! मेरे दोनों बच्चों का ध्यान रखना।' और तब वह पति—वह पुरुष—अपने हृदय के उद्वेग को आँखों में समेटे हुए, धड़कते मन के साथ कातर और दीन बन गया था। मानो वह स्वयं निरालम्ब हो रहा था। उन क्षणों में ही उसने अनुभव किया कि वह केवल शून्य है और मास-पिण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ?

और जब सचमुच ही पत्नी चली गयी, उसकी चिता की ठण्डी राख भी दरिया में प्रवाहित कर दी गयी, तो तब, दुःख, दरिद्रता और पत्नी वियोग की पीड़ा से क्लान्त बना वह व्यक्ति इतना आहत और निशक्त बन गया कि उसने जीवन का बोझ सम्भालने में अपने को सर्वथा अशक्त पाया। काश, वह पिता न होता, आठ वर्ष के पुत्र और

युवा पुत्री में उसका प्राण न अटका होता, तो नि:सन्देह, वह उस बोझ को उतार फेंकता। वह आत्मघात कर लेता। किन्तु वह देखता कि पुत्री सयानी है, विवाह योग्य है। पुत्र बालक है, अभी अजान है। वह समर्थ बने, तो घर की आकाँक्षाएँ उस पर टिक सकती हैं। विस्मय की बात तो यह थी कि जब पुत्र संसार में आया, तो उस घर में मानो उत्साह फूट पड़ा था। पत्नी ने भी जैसे अपनी कोख को सराहा। क्योंकि उससे पूर्व, वह कई कन्याओं की माँ बनी थी, तभी वह नर रूप में पुत्र प्राप्त हुआ था।

किन्तु कितनी दुर्भागी थी वह नारी कि जो पुत्र पाकर भी, नहीं टिक सकी, वह असमय ही पलायन कर गयी। जिस घर को उसने बनाया, सँवारा, उसे भी छोड़ गयी। उस नारी की आकांक्षा थी कि पुत्री का विवाह बड़े चाव से, हर्षोल्लास से भर कर करेगी। परन्तु न पुत्री के लिये घर देखा गया, न उसकी माँग में सेंदुर भर पाया. कि स्वयं नाता तोड़ गयी। कदाचित् यही कारण था कि वह दो सन्तानों का पिता इसलिये भी अधिक आकुल और व्यग्र बना था कि जब उस घर की अधिष्ठात्री नहीं रही, तो उसका ही क्या अर्थ था। मातृहीन बनी सन्तानों को देख, उसका मन हाहाकार करता। उनकी अभाव भरी और परमुखापेक्षी दृष्टि कभी पाकर भी उसके मन: प्रदेश में कोलाहल उठता। उसे लगा कि जैसे की समूची दरिद्रता और याचना उसके घर आ गयी थी। वह डायन की तरह उसके पीछे पड़ी थी। वह किलकिलाती और डराती थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि वह प्रौढ़ व्यक्ति स्वयं चारपाई पर गिर गया। निरन्तर की यातना ने उसे घायल कर दिया। वह तड़प गया। पत्नी गयी, तो उसे लगा, जैसे सभी कुछ चला जायगा। उस तरह तो एक दिन वह स्वयं भी उड़ जायगा। धू-धू करती हुई चिता में जब पत्नी की काया जली, तो दुर्बल इन्सान के मन में आया कि तू भी

जल जायेगा···तेरा अन्त भी इसी प्रकार हो जायगा ! इसलिये, जब वह बीमार पड़ा, तो मौत की प्रतीक्षा करने लगा । वह जिस भ्रमर में जीवन की नौका को पड़ी देख रहा था, थक कर, उसके अन्तराल में डूब जाने और खो जाने की बात सोचता था। क्योंकि वह देखता, इस परिणति के अतिरिक्त और कोई राह नहीं, कहीं टिकाव नहीं । अतएव दरिया की लहरों में विसर्जित हो जाना अब उसे पसन्द आने लगा था। वह चाहता कि जीवन का मोह छूट जाये । लंगर टूट जाये । क्योंकि अपनी विवशता के साथ, उसने समाज का हास्य देखा, कड़वी मुसकान देखी और कोलाहल ! मानो वह सब उसी के लिए था, उसी को लक्ष्य करके किया गया था । इसलिये कि वह दुर्बल था, याचक था, धरती का बोझ बना था ! और इतना उसने भी समझ लिया कि ऐसे जीवन का धरती के लिये कोई मूल्य नहीं था।

रुग्ण-शैया पर पड़ा वह इन्सान, वह अपने परिवार का अधिपति, मौन भाव से, जब छूटे हुए सफर को देखता, तो पाता, बड़े आघात राहें उसने ! मानो इन्सान-ही-इन्सान का निशानेबाज बना । कातिल और क्रूर ! किन्तु उस रोग की अवस्था में तो उसे लगता कि अब वह सभी के निशाने से दूर है, उस सीमा को पार कर आया है । अब वह मौत के समीप है, उसकी छाया में छिप जाने वाला है । इस चिन्तन का एक कारण यह भी था कि उस व्यक्ति ने सहज ही इस बात को पाया कि इस धरती पर बलवान का साथ दिया जाता है, निर्बल का नहीं। अपितु उसका उपहास किया जाता है, जो व्यक्ति कराहता है, पीड़ाओं की साँसें भरता है, तो उसे देखकर किसी को सुखकर नहीं लगता । इसलिये, ऐसे समाज से दूर होने के लिये लालायित था । किन्तु यह भी उसकी विवशता थी कि पुत्र और पुत्री का मोह अभी उसकी छाती के नीचे था । वह उसके प्राणों में कोलाहल पैदा करता । अतएव, वह रुका था, जीवित रहने के लिये भी व्यग्र बना था । मन की चेतना

जीवित थी, उसका सांस्कृतिक बल मानो अपेक्षाकृत बलिष्ठ हो गया था। वह एक शीक्षित व्यक्ति था। उसकी आत्मा में तेज था।

कई दिन हो गये थे कि धरमपुर गाँव के उस परिवार में चिन्ताओं और मानवीय व्यथाओं में अपना डेरा डाल रखा था। मृत्यु और जीवन के मध्य मानो कोई दैवी कोप उग्र बन गया था। एक सप्ताह से ऊपर हो गया कि आसमान में बादल जमे थे। वर्षा नहीं रुकी। गांव के समीप का दरिया चढ़ा हुआ था। वह फूत्कार कर रहा था। चारों ओर जल-ही-जल था। नगर उस गांव से दूर था। दरिया चढ़ा, तो बाहर से व्यक्तियों का आना भी रुक गया था। उस विपत्ति का निराकरण न पिता कर सकता था, न पुत्री। और पिता की अवस्था दिन-दिन बिगड़ रही थी, गाँव का वैद्य औषधि दे रहा था, परन्तु उसका प्रभाव न होने के बराबर था। फलस्वरूप, पिता की अवस्था को देखकर पुत्री चिन्तित थी। माँ गयी, तो घर का भार बरबस ही, उसके ऊपर आ पड़ा था। पिता की बीमारी और छोटे भाई की देख-रेख करना उसका कर्तव्य था।

उस दिन संध्या बीत चली थी, चारों ओर अन्धकार फैला था। वर्षा हो रही थी। उस प्रौढ़ व्यक्ति ने टिमटिमाते दीप की ओर से आँख हटायीं और पास बैठी हुई पुत्री को लक्ष्य किया। लेकिन उसे जो कुछ कहना था, वह आँखों ने कह दिया। पिता की आँखों को देख, जैसे उस मौन वाणी की आर्त्त सुनकर ही पुत्री ने साँस भरी और कहा—'आप तो भगवान और भावना को मानते हैं पिताजी, उसी का स्मरण करें। मन को शाँति दें।

इतना सुना, तो उस बीमार पिता के मन ने झटका-सा खाया और अपनी दृष्टि को फिर दीपक के ऊपर पसार दिया। उसी अवस्था में उसने कहा—'हाँ, बिटिया! मैं भगवान को मानता हूँ; मुझे उस पर भरोसा करना चाहिये। मन में भावना रखता हूँ, तो उस पर टिकना चाहिये।' इतना कहते ही, उसने पुत्री की ओर देखा और कहा—'बेटी,

निर्बल का यही अवलम्ब है। सभी का कोई-न-कोई सहारा है। मैं भी यही खोजता हूँ। भगवान की महिमा को समझना चाहता हूँ।' यह कहते हुए उस व्यक्ति का स्वर रुक गया। मानो जीवन का समूचा क्षोभ और ग्लानीपूर्ण मनःस्ताप उसके हृदय में समाहत हो गया। उस अवस्था में ही, उसने पुत्री की ओर देखकर कहा—'बेटी कमला, मैं जिन्दगी भर पढ़ा, स्कूल के बच्चों को पढ़ाता रहा। उन बच्चों को जाति और देश का इतिहास, धर्म का पाठ सुनाता रहा कि विपत्ति में भगवान का सहारा होता है। चरित्र और सत्य का अवलम्ब ही आदमी को ऊपर उठाता है। पर आज तो मेरे मन में आता है कि भगवान नहीं। वह धोखा है, छल है, लगता है, इन्सान के द्वारा ही उसकी सृष्टि की गयी है। पैसे की दुनिया में बसा हुआ आदमी अपने मस्तिष्क की दासता और झूठी आत्मा-प्रवञ्चना का प्रदर्शन करके ही, भगवान का नाम उच्चारित करता है। मन्दिर और मस्जिद में जाकर आदमी पूजा करता है। बोलो बेटी, यह कैसी अवस्था और विडम्बना है। मुझे लगता है कि आदमी अपने ही छल और दम्भ में आत्मसात् हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य दूसरे को छलता है, तो स्वयं भी छला जाता है। अर्थ और काम ही इस इन्सान की पूजा है। सजा हुआ संसार ही उसका स्वर्ग है। हीनतापूर्ण पाया हुआ जीवन ही उसका नर्क'''मानो कोढ़'''बहता हुआ पीप'''।'

कमला ने देखा कि अपनी बात कहते हुए पिता की वाणी अतिशय कुण्ठित और कठोर बनी है। वाणी में रोष है, पीड़ा है, उस बाला ने अनुभव किया कि निश्चय ही, पिता के मन में जहरीला धुआँ घुट रहा है। जिससे प्राणों का साँस भी छटपटा रहा है। इसलिये उसने चाहा कि प्रस्तुत वार्ता को बन्द कर दे। पिता से मौन रहने के लिये कहे। किन्तु उसने तो देखा कि पिता के मन की शाँति दूर है, वह अदृश्य हो चुकी है। वह तो जैसे माँ की चिता के साथ जल गयी। इसलिये वह कमला एकाएक ऐसा बल अपने में नहीं पा सकी कि पिता से कुछ कहे।

ढाढस बँधाये । यद्यपि पुत्री के रूप में, कमला को इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि उसके पिता ने कदाचित ही, कभी अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये झूठ बोला हो, किसी को ठगा हो । उसे पता था कि पिता ने सदा ही इन्सान की अनुभूति, आदर्श और सात्विक संस्कारों का पाठ समाज को दिया । पण्डित के रूप में उन्होंने मनुष्य की शान का महत्व बताया, पैसे का नहीं । किन्तु वह तात्विक ज्ञान, वह अनुभूति क्या उनकी विपिन्न अवस्था में काम आई । उससे बच्चों को रोटियाँ नहीं मिलीं । पत्नी के रोग में उपचार के साधन भी उपलब्ध नहीं हुए । पैसा होता, तो निश्चय ही, मा अभी न मरती । वह कमला के पिता—सुदर्शनजी—पत्नी के लिये पैसा लुटा देते । नगर के किसी भी योग्य चिकित्सक से परामर्श लेते और इस बात को जहाँ कमला समझती, माँ भी जानती थी । यह अपने उदार पति के मन में भरी पीड़ा को समझती थी । कदाचित् यही कारण था कि पत्नी मरणकाल तक मुसकराती रही । वह जीवित रहने की बात कहती रही । वह चेष्टा करती रही कि पति उसके लिये चिन्तित न बने, वेदना से भरा न दिखायी दे ।

मकान के जिस भाग में सुदर्शनजी की चारपाई पड़ी थी, वहीं पर कुछ फासले से दूसरी चारपाई पर उनका पुत्र रजनीश सो रहा था। वह निर्द्वन्द्व था । बेसुध था । उस समय सुदर्शन जी की दृष्टि पुत्र, पर लगी थी, उसी ओर देखते हुए उन्होंने कहा—'मेरे समान, यह रजनीश भी दुर्भागी रहा···बेचारा मातृहीन बन गया···'

कमला ने कहा—'यह तो भाग्य की बात है, पिताजी ! कर्मों के भोगों से क्या छुटकारा मिलता है ।'

सुदर्शनजी ने साँस-भरी और अपनी दृष्टि फिर पुत्री के मुँह पर टिका दी । निश्चय ही उन्हें पुत्री से यह सुनना असंगत नहीं लगा । उन्हें रुचिकर लगा । मानो वह भी टिकने का आधार था । किन्तु तत्क्षण ही, उनकी आत्मा में फिर विद्रोह का दावानल फूट पड़ा ।

उन्होंने तड़प कर कहा—'बेटी, इस संसार में भाग्य भी बनाया जाता है। जीवन के जो योग्य पदार्थ हैं, उन्हें पाने के लिये आदमी छलिया, दम्भी और क्रूर बनता है। देखती हो इस आसमान को, यह बरसता है। बादल गरजते हैं। बिजली चमकती है। वह कहीं गिरती भी है। आग लगाती है। बने-बनाये घरों को राख बना देती है। भला यह सब क्या है! क्यों है! री, कमला! दूसरों का हेतु किसी के पास नहीं होता। इस आसमान के पास भी नहीं। धरती के पास नहीं। जानवर के पास नहीं, इन्सान के भी पास नहीं···'

कमला ने कहा—'पिताजी, फिर भी संसार तो बना है। इसने धरती और आसमान का सहारा लिया है।'

सुदर्शनजी जैसे तीखे भाव से मुसकरा दिये—'उन सभी का स्वार्थ है, यही गौरव है। यही अस्तित्व!' वह बोले—'मुझे पानी दो। मुँह सूख रहा है और देखती हो, यह आसमान का पानी बरसे ही जाता है। दरिया चढ़े जाता है। सुनता हूँ बहुत से गाँव बह गये हैं। जानवर और इन्सान अकाल-मृत्यु को प्राप्त होगये हैं। प्रकृति का ताण्डव हो रहा है। उसका गौरव राग गूँज रहा है। दम्भी इन्सान भी आज मोहताज बना है। पानी का तेज प्रवाह इन्सान की बर्बरता को बहाये लिये जाता है।'

कमला ने पिता को पानी दिया, तभी उन्होंने कहा—'अब सो जाओ, बेटी! रात काफी गयी। जाने कितनी निकल गयी।'

कमला ने कहा—'रात अधिक नहीं गयी, पिताजी।'

उसी समय द्वार का कुण्डा खड़का। कमला ने चौंक कर कहा—'कौन?'

सुदर्शनजी बोले—'कोई पड़ौसी होगा, बेटी! देख लो।'

कमला उठकर गयी। द्वार खोला। वह अपने सामने एक अपरिचित युवक को देख, अचरज के साथ बोली—'आप—'

आगन्तुक ने कहा—'जी मैं ! यही है न, सुदर्शनजी का मकान ?'

कमला ने कहा—'हां, यही । आइये, अन्दर !'

वर्षा के पानी से तर वह शहरी युवक अन्दर आया । उसने घर में प्रवेश करते ही, सुदर्शनजी के पैरों में अपना सिर झुका दिया ।

उस आगन्तुक युवक को देखते ही, जैसे अपार हर्ष से भर, गद्गद् भाव में पण्डित सुदर्शन ने कहा—'तुम'''अरे !'

आगन्तुक का नाम यदुनाथ था । वह दूर नगर से आया था । उसने बरसाती उतार दी और पिता तथा पुत्री की ओर देख, मुस्करा दिया । तदन्तर वह अपने भीगे कपड़े उतारने लगा । कमला खड़ी थी और चकित तथा सन्तुष्ट भाव में उस युवक को देख रही थी कि जिसे देख पाकर उसके पिता के मुँह पर हर्ष तथा प्रफुल्लता का भाव अनायास नाच उठा था, उन्हें जैसे नया जीवन प्राप्त हो गया था ।

दो

कुछ वर्ष पूर्व नगर के जिस स्कूल में पण्डित सुदर्शन हिन्दी अध्यापन का कार्य करते थे, उसका संचालन नगर के उद्योगपति राय जानकीदास के हाथ में था। एक अवसर पर जब राय जानकीदास स्कूल का निरीक्षण करने आये, तो अन्य अध्यापकों के समान, सुदर्शनजी उस व्यक्ति का सम्मान करने आगे नहीं बढ़े। वे अपने स्थान से नहीं उठे। उस समय वह जिस कार्य में व्यस्त थे, तो उसी तरह लगे रहे। पण्डितजी राय जानकीदास को देखकर न उत्साहित बने, न उनके पास जाने के लिए लालायित हुए। जिसका परिणाम यह हुआ कि जब निरीक्षण स्कूल से लौट गये, तो मुख्याध्यापक ने बताया कि सुदर्शनजी के प्रति राय साहब की धारणा अच्छी नहीं रही। उन्हें यह परम्परा पसन्द नहीं आई।

अपने स्वभाव के अनुरूप, सुदर्शनजी ने प्रधान अध्यापक की बात सुन ली, परन्तु अपना मत नहीं दिया। मानो प्रस्तुत प्रसंग को वह तत्वहीन समझकर टाल दिया।

किन्तु प्रधान अध्यापक ने उन्हीं को सुनाकर फिर कहा—'जीविका के हेतु सभी कुछ किया जाता है, पण्डितजी ! इस दुनिया में दिखावा सर्वोपरि है और यह तो व्यवहारिक बात थी। बोलिए, जो व्यक्ति आपके पास आकर भी सम्मान न पाये, आपसे एक शब्द भी न सुन सके, उसके प्रति यह धृष्टता न होगी ?

इतनी बात सुनी, तो सुदर्शनजी क्षुब्ध बन उठे। अप्रतिभ होकर

बोले—'महाशय, मैं अपना उत्तरदायित्व समझता हूँ। जितना जरूरी हो, उतना किसी का सम्मान करता हूँ ?'

प्रधान अध्यापक खिसिया गया—'आज आप व्यवहारवाद में फेल हो गये। दिखता है, अपने पाँण्डित के नीचे दब गये। उसने कहा—'स्कूल के संचालक का आपको भी स्वागत करना था।'

सुदर्शन पण्डित ने कहा—'यह समझना मेरा काम था। मुझे उचित नहीं लगा। मैं अपना काम कर रहा था। बच्चे पढ़ा रहा था।

इस बात से प्रधानाध्यापक के मन पर चोट लगी। उसमें तड़प पैदा हुई। किन्तु वह पण्डित सुदर्शन के उग्र स्वभाव से परिचित था, इसलिए मुँह में आई बात रोक गया।

किन्तु सुदर्शनजी ने तड़प कर कहा—'किसी के समक्ष प्रदर्शन करना मेरा काम नहीं। मेरी दृष्टि में राय जानकीदास का कोई महत्व नहीं। किसी के पास पैसा हो, यह मेरे लिए भारी बात नहीं ?'

प्रधान अध्यापक कड़ुआ घूँट पी गया। वहाँ से वह अपने कमरे में चला गया। किन्तु उसके एक अध्यापक ने संचालक के समक्ष धृष्टता प्रदर्शित की, यह काँटा उसके मन पर चुभ गया। उसकी कसक से तिलमिलाया।

यह भी संयोग की बात थी कि इस घटना के बाद जो सीधा संघर्ष पण्डित सुदर्शन और राय जानकीदास में छिड़ा, तो उससे उस स्वाभिमानी और अपनी बात के धनी सुदर्शनजी के जीवन में जिस प्रकार का झँझावात उत्पन्न हुआ, तो वह उन्हें कहीं-से-कहीं उड़ा कर ले गया। बात यह थी कि राय जानकीदास जहाँ धनिक व्यक्ति थे, वहाँ उस धन के द्वारा अपनी विलासिता का पेट भी भरते थे। फलस्वरूप वे शराबी थे, स्त्री-लोलुप थे।

राय जानकीदास के विशाल भवन में श्यामा नाम की एक नौकरानी थी। वह वृद्धा थी। संयोग की बात थी कि एक दिन वह श्यामा राय जानकीदास के क्रोध का शिकार बन गयी। उस समय राय साहब ने

शराब अधिक पी रखी थी । दोष बड़ा नहीं था, परन्तु उस नौकरानी को सजा बड़ी मिल गयी । जिस कमरे में राय साहब बैठे हुए शराब पी रहे थे, भाग्य की मारी श्यामा उधर से निकली तो शीशे का गिलास उससे टूट गया । छूटते ही राय साहब ने कहा—'कम्बख्त···'

श्यामा ने कहा—'हाँ, मालिक, मैं कम्बख्त तो हूँ ही !'

इतना सुना तो राय जानकीदास को और क्रोध आ गया । हाथ में लिया शराब का गिलास उसके मुँह पर दे मारा और चीखकर कहा—'बकवास करती है !'

किन्तु गिलास की चोट लगते ही, श्यामा तड़प गयी । उसके माथे से खून निकल आया और जहाँ-की-तहाँ बैठ गयी । वह गरीब थी और निर्बल भी थी, परन्तु उस समय जाने किस प्रेरणा को पाकर श्यामा का स्वत्व जाग उठा और उसने फूत्कार किया—'तुम्हारा नाश होगा ! देखना, भगवान तुम्हारा यह घमंड चूर-चूर करेगा !'

राय जानकीदास के लिए इतना सुनना स्वभाव के विपरीत था । क्रोधी स्वभाव, फिर शराब का नशा; कमरे की दीवार पर बेंत टँगी थी, लपककर उसे उतार लिया और क्रोधान्ध बनकर उस बेंत को श्यामा पर पटकाना शुरू कर दिया । फलस्वरूप, उस वृद्धा का चीत्कार उस महल में गूँज उठा । नौकर आ गया, मालकिन आ गयी । मार खाकर श्यामा बेहोश हो गयी । कुछ ने कहा, मर गयी । किन्तु राय जानकीदास ने चीत्कार किया—'इसे बाहर फेंक दो ! मेरे सामने से हटा दो ।'

अवसर की बात की उसी समय पण्डित सुदर्शन राय जानकीदास के पुत्र को पढ़ा रहे थे । चीत्कार सुनकर वह भी उठ आये । वह तटस्थ रहे । परन्तु जब राय जानकीदास ने उस लहू-लुहान बनी और बेसुध हुई श्यामा बुढ़िया को बाहर फेंक देने की बात कही, तो पण्डितजी आगे बढ़े और आँखों से आग उड़ेलते हुए बोले—'फेंकने की जरूरत नहीं, मैं उठाता हूँ । आप तो इस वृद्ध का आदर नहीं कर सकते, परन्तु मैं इसके चरणों में सिर झुकाता हूँ । धनिक कितना मदान्ध हो सकता है, यह

मैंने अब तक सुना था, परन्तु आज देख पाया हूँ। सचमुच, आप इन्सान नहीं, पशु हैं।'

राय जानकीदास ने क्षुब्ध बनकर कहा—'पण्डित······'

किन्तु सुदर्शन ने कहा—'मेरे हाथ मजबूत हैं। आप सरीखे व्यक्ति का गला घोंट देने की शक्ति है।'

राय जानकीदास ने सभी नौकरों को सम्बोधित किया—'खड़े हो, देखते हो!'

लेकिन पण्डित सुदर्शन का वह रूप एकाएक इतना भयानक बना कि किसी में आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। राय जानकीदास भी पत्थर बन गया। पण्डित सुदर्शन ने उस बेसुध बनी और खून से भरी बुढ़िया को कन्धे पर उठा लिया। उनके सिर के बड़े-बड़े बाल खड़े हो गये, आँखें लाल-लाल। नौकरों ने स्वतः ही उन्हें बाहर जाने का मार्ग दे दिया।

किन्तु जिस बात की कल्पना किसी को नहीं थी, पण्डित सुदर्शन के उस महल से निकलते ही वह हो गया। जिसने उस करुण और अशक्त बनी श्यामा को देखा, तो रौद्र रूप धारण किये पण्डित सुदर्शन से प्रश्न किया—'यह कैसे हुआ···किसने किया?'

पण्डित सुदर्शन कहते चले—राक्षस ने किया। राय जानकीदास ने!'

'ओह! इतना निर्भय! इतना घमण्डी!'

'वह पापी है···दुरात्मा है!'

'पैसे वाले ऐसे ही होते हैं। आसमान में उड़ते हैं। धरती के इन्सान को तिनका समझते हैं।'

'इन्सान तिनका···पत्थर! नहीं, हम इन्सान हैं। उस हैवान को मार देंगे। आओ, बढ़ो, चलो! हम उसे बता देंगे, निरीह बुढ़िया पर हाथ छोड़ने का परिणाम क्या होता है।'

बात चली, हवा में उड़ी और वह नगर के आकाश मण्डल में

छा गयी। श्यामा अस्पताल पहुंचा दी गयी। परन्तु उस इन्सानी समाज में विषैला धुआँ एक बार फैला, तो वह फैलता गया। एक विशाल भीड़ जानकीदास के मकान पर पहुँच गयी। लोगों ने पत्थरों से मकान के शीशे और दरवाजे तोड़ दिये। पुलिस आ गयी। किन्तु भीड़ राय जानकीदास को पाना चाहती थी। निश्चय ही, वह उसके टुकड़े कर देने पर तुली थी। किन्तु तभी तेज चाल से चल कर सुदर्शन पण्डित वहाँ आये और भीड़ के समक्ष जाकर ऊँचे घोष से बोले—'तुम जिस भेड़िये को मारने चले हो, वह अकेला नहीं। उसकी बड़ी शक्ति है, बड़ा गिरोह है। पागल मत बनो। लौट जाओ। घर जाओ। श्यामा अस्पताल में है। उसे सुध आ गयी है।

भीड़ ने कहा—'हम भेड़िये को मार देंगे। उसे बता देंगे कि निर्बल पर हाथ उठाने का परिणाम क्या है!'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'यहाँ एक निर्बल बुढ़िया का प्रश्न! तुमने उस शक्ति के प्रति उपेक्षा दिखायी, विद्रोह का नारा लगाया, यह भी बहुत है। तुमने इन्सान के सम्मान का महत्व समझा, यह भी ऊँची बात है। तुम्हारी आत्मा में सत्य है। अब जाओ।'

भीड़, छँटी, लौट चली। उस नगर में एक बड़ा काण्ड हो जाने वाला था कि उसकी अशुभ घड़ी सुदर्शन पण्डित के प्रयत्न से टल गयी। यह भी संयोग की बात थी कि हजारों व्यक्तियों की दृष्टि एक साथ सुदर्शन पण्डित पर पड़ गयी। उस नगर में एक ऐसा ब्राह्मण है कि जो इन्सान के सम्मान के लिये अपना त्याग कर सकता है, इसका परिचय भी लोगों को मिल गया। क्योंकि नगर का समाज जानता था कि सुदर्शनजी राय जानकीदास के नौकर हैं, उसी के पैसे से अपने परिवार की जीविका चलाते हैं। वह साधन अब नहीं रहेगा।

दिन बीत गया। दूसरा आ गया। उसके प्रातः में ही, राय जानकीदास की मिल का मैनेजर पण्डित सुदर्शन के घर आया और उसने पण्डितजी से राय साहब के पास चलने के लिये कहा। पण्डितजी

चल दिये, उस बड़े महल में पहुँच गये। वह बड़ा कमरा कि जिसमें राय साहब जानकीदास बैठे थे, विधिवत् सजा था। कमरे की छत में कीमती झाड़ फानूस टंगे थे, फर्श पर बिछा हुआ ईरानी कालीन। पण्डितजी को देखते ही राय साहब ने कहा—'आइये, महाराज ! बैठिये !' वह बोले 'कल आपने जिस रूप में अपनी वाणी का उद्‌घोष किया, वह अब भी मेरे कानों में गूँज रहा है। इस धरती पर अब भी सच्चे और निस्पृह ब्राह्मण हैं, इसका आभास मुझे कल ही मिला। विश्वास कीजिये, मुझे आप पर अभिमान है।' यह कहते हुए राय जानकीदास ने नोटों की गड्डी बढ़ायी और कहा—'इस उपलक्ष में यह पुरस्कार प्राप्त कीजिये।

उन नोटों को देखते ही, सुदर्शन पण्डित का माथा ठनक गया। आत्मा में क्षोभ भी उठ आया। तपाक से कहा—'राय साहब, एक भूल आपने कल संध्या के अँधेरे में की, तो दूसरी इस दिन के प्रकाश में। कुछ देना है, तो उस श्यामा बुढ़िया को दीजिये। मन में अपने किये पर पश्चात्ताप है, तो उसके चरण में सिर रखकर क्षमा मांगिये। गरीब होने के कारण वह मजदूरी करती है, परन्तु इंसान के नाते से वह आपकी माँ है। आपने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, अभद्र और पशुत्व का प्रदर्शन उस श्यामा के साथ किया है। वह घायल बनी है। जाकर देखिये कि अब भी अस्पताल में पड़ी सिसक रही है।

जानकीदास ने कहा—'हाँ, हाँ, मैं उससे भी क्षमा माँग लूँगा। परन्तु आपको पुरस्कृत करना क्या भूल सकूँगा। हमारे स्कूल में आप सरीखे विद्वान और स्वत्व के पुजारी हैं, इसे क्या मैं कम गौरव की बात समझूँगा।'

लेकिन पण्डित सुदर्शन ने रुपया नहीं लिया। वह खड़े हो गये और बोले—'श्यामा का अधिकार मैं न पा सकूँगा।' यह कहते हुए उन्होंने वह कमरा छोड़ दिया।

उसी समय मैनेजर ने कहा—'यह ब्राह्मण सरल नहीं, सुसाध्य नहीं।

राय जानकीदास ने दाँत पीसे और कहा—'मेरा नाम भी जानकीदास है। इस ब्राह्मण को मसल दूँगा। मेरी बिल्ली और मुझी को म्याऊँ, यह क्या मैं बर्दाश्त कर सकूँगा। तुमने थानेदार को पाँच सौ रुपया दिया, वह सब ठीक कर लेगा।'

मैनेजर ने कहा—'सुना है, डाक्टर की रिपोर्ट लेकर कुछ लोग ऊँचे अधिकारियों से मिलेंगे···उन्हीं में यह पण्डित···'

राय जानकीदास ने कहा—'सभी कुत्ते हैं, शोर करते हैं।' और उसने प्रस्तुत वार्ता को टाल देने का प्रयत्न किया।

किन्तु मैनेजर ने कहा—'यह पण्डित जिस बर्तन में खाता है, उसी में छेद करता है,—मूर्ख !'

विषादपूर्ण बनकर राय जानकीदास ने कहा—'हल्का बर्तन बजता है, उछलता है।'

लेकिन पण्डित सुदर्शन जब घर लौटे, तो एक अध्यापक वहाँ बैठा मिला। देखते ही उसने कहा—'पण्डितजी, आप व्यर्थ ही उलझ गये। अपनी परिस्थिति को भी भूल गये।'

उस समय पत्नी पास बैठी थी, सुदर्शनजी उन दोनों को देखकर बोले—'भाई, मेरा अपना मत यह है, मैंने जो कुछ किया, ईश्वरीय प्रेरणा पर किया। मेरा दुस्साहस हो सकता है, परन्तु मैंने सत्य का आश्रय लिया, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। मैं तुम्हें बता दूँ, अभी राय जानकीदास ने मुझे बुलाया, तो मैं उनका रिश्वत के रूप में मिलने वाला हजार-पाँच सौ रुपया भी छोड़ आया। यह निश्चित है, मैं अपनी आत्मा का खून नहीं करूँगा। समाज के समक्ष एक बार चेतना से प्रेरित हुआ, तो आगे भी रहूँगा।'

अध्यापक ने कहा—'पण्डितजी, जो कुछ हुआ, सुखकर नहीं हुआ।'

सुदर्शनजी बोले—'भाई, इस धरती पर यही होता है। पैसा आसुरी शक्ति है, तो मनुष्य उसका इसी प्रकार उपभोग करेगा। राक्षस बनेगा। मैं यदि उस श्यामा के लिये अपना विसर्जन भी कर पाता, तो

भी अधिक नहीं था ।

अध्यापक ने कहा—'सेठ आप पर कृपालु था। विश्वास करता था ।'

पण्डितजी ने कहा—'हाँ, हाँ, मुझे पता है परन्तु उसका कर्म जघन्य था। अमानुषीय था। मैं विवश था।'

अध्यापक ने कहा—'इस युग में ऐसा नहीं निभता।'

पण्डित सुदर्शन ने बात सुनी, तो विषाद भाव से मुसकराकर आसमान की ओर अपना मुँह उठा दिया। उसी ओर देखते हुए वह बोले—'मैं अध्यापक हूँ, तो विद्यार्थी भी हूँ। इस जीवन का अध्ययन कर रहा हूँ।'

अध्यापक कुछ कहता कि उसी समय दो-तीन व्यक्ति वहाँ आये, उनमें से एक ने पण्डित सुदर्शन को सुनाया—'देखा पण्डितजी, ये पैसे वाले कितने धूर्त होते हैं। उस बुढ़िया के लड़कों को राय जानकीदास ने कुछ चटा दिया। उन्होंने अधिकारियों के पास जाने से इन्कार कर दिया।'

पण्डित सुदर्शन उस समय स्वयं क्षुब्ध थे, कातर भी बने थे, बात सुनी, तो तुरन्त बोले—'तो मैं क्या करूँ, भाई! उनकी इच्छा!'

दूसरा बोला—'परन्तु आप···आपकी रोजी···'

पण्डित सुदर्शन ने आतुर बनकर कहा—'मुझे भगवान पर भरोसा है। मैंने कोई पाप नहीं किया।'

अध्यापक ने कहा—'पर आपने देखा तो···हाँ···'

पत्नी बोली—'अपने घर में आग लगाकर कोई नहीं सेंकता ?'

सुदर्शनजी ने सिर पकड़ लिया और कठिन स्वर में कहा—'ओह, तुम भी ऐसा कहती हो, क्यों मुझे लज्जित बनाती हो! ऐसे तो तुम मुझे पागल कर देना चाहती हो।'

आदमी लौट गये। अध्यापक भी चले गये। सुदर्शनजी ने बेंत उठा ली और मकान से बाहर निकल गये। सचमुच, वे व्यस्त थे। खिन्न

बने थे। एक ही दिन में उनके जीवन में जो मोड़ आया, उस पर वे कहाँ जायेंगे, किस किनारे जाकर लगेंगे, सहज में नहीं समझ पाये।

संध्या आ गयी। सड़क की बत्तियाँ जल गयीं। उन ार पतंगे उड़ने लगे। कुछ सड़क पर गिरने लगे और मरने लगे। उस समय सुदर्शन पण्डित को लगा कि ऐसे ही इन्सान मरता है। मरे जाता है। उसके मन में जिस प्रकार की आग धधक उठी थी, उसके प्रभाव में आसमान के तारे भी जैसे आग उगलते दीखा रहे थे। वे आसमान की छाती को जला रहे थे।

सुदर्शनजी कई घण्टे नदी तट पर बैठ कर घर की ओर लौट रहे थे। सचमुच, वे अशान्त थे। उनके कारण उनका परिवार भी विपत्ति में पड़ जाने वाला था। जीविका का प्रश्न सर्वोपरि था। परन्तु स्थिति यह थी कि उन्होंने जो कुछ किया, उसके प्रति भी वे आपने को अपराधी नहीं पा रहे थे। एक शून्य-पथ से चलते हुए पण्डित सुदर्शन घर की ओर बढ़ रहे थे, तभी एक युवक सामने पड़ा और उन्हें देखकर बोला—'पण्डितजी, कल आपने जो कुछ किया, स्तुत्य किया। बड़े साहस का परिचय दिया।'

पण्डितजी ने बात सुनी, तो उस अज्ञात युवक को देखा। जैसे समझना चाहा।

किन्तु उस युवक ने फिर कहा—'पण्डितजी, लोग आपकी इच्छाओं के दास हैं। हीन और कायर बने हैं। अपनी आत्मा को मारते हैं। नगर में चर्चा है कि आपने इन्सान का पार्ट अदा किया।' वह बोला—'धनिक वर्ग यही करता है। अमानवीय बनता है।'

साँस भर कर सुदर्शनजी ने कहा—'फिर भी लोग उसे स्वीकार करते हैं। मालिक के समक्ष झुकते हैं। उसके पैसे को महत्व देते है।'

युवक ने तेज बनकर कहा—'वे अवसरवादी हैं, समाज का शोषण करते हैं।' 7141.

साँस भरकर सुदर्शनजी बोले—'तो क्या किया जाय भाई। इस

गन्दे प्रवाह को कैसे रोका जाय !'

युवक ने कहा—'आप सरीखे निस्पृह और चेतना से युक्त पुरुष बाहर आयें, आवाज लगायें, तो सुधार हो सकता है।'

सुदर्शनजी ने सुना और उदास भाव से मुस्करा दिया। उसके मन में उस समय भी झंझावात उठा था। वह अपने परिवार के समक्ष अपराधी बन चुके थे। यह कलंक उनके मन को कील रहा था। वे घर की ओर चल दिये। वहाँ पहुँचते ही पत्नी ने उसके हाथ पर एक लिफाफा रखा। वह खोलकर पढ़ा। स्कूल की प्रबन्ध समिति ने उन्हें नौकरी से पृथक कर दिया था, वह नोटिस था।

पण्डित सुदर्शन ने कागज को फिर लिफाफे में रख दिया। घर के अन्दर अन्धकार की ओर देखा, तो लगा, उसी के अनुरूप उनके मन में अँधेरा था, सन्नाटा था।

तीन

कई वर्ष बाद, एकाएक ही, पण्डित सुदर्शन ने जब यदुनाथ को देख पाया, तो उन्हें सूझ नहीं पड़ा कि वह उस गाँव में कैसे भूल कर पहुँच गया। उसका आना आकस्मिक तो था ही, अप्रत्याशित भी था। इसलिये उस भावना से उद्‌भूत बन, बीमार और निर्बल पण्डित सुदर्शन ने यदुनाथ को पास बैठाया। वात्सल्य भाव से उसके सिर पर हाथ रखा। देखा—कभी का वह छोटा-सा बालक यदुनाथ अब जवान था, सुन्दर था और गम्भीर बना था।

यदुनाथ ने कहा—"मास्टर जी, आप सचमुच में अशक्त हैं। इतने दुर्बल हैं।"

सुदर्शन पण्डित ने इतनी बात सुनी, तो हल्का-सा मुस्करा दिया। अपना मत नहीं दिया।

यदुनाथ बोला—"मैंने आपको प्रायः याद किया। पिता जी के व्यवहार से आपको जो कष्ट हुआ, वह जब-तब मुझे याद आया, शर्म से मेरा सिर झुक गया। अभी एक दिन स्कूल के एक अध्यापक से पता चला कि आपकी पत्नी का देहावसान हो गया। इतने समय में आपको जो कष्ट उठाने पड़े, उस अध्यापक ने मुझे उनका भी परिचय दिया। सचमुच, आपके जीवन का सुन्दर भाग संघर्ष और आत्म-पीड़ा में चला गया। आपने इस जीवन में जिस योग की साधना की, उससे मैं अनभिज्ञ नहीं रहा।"

सुदर्शन ने साँस भरी—"भैया, अब सफर का अन्त आ गया।

दीये का तेल समाप्त हो गया। खेद यही रहा कि मेरी सनक ने पत्नी को असमय में विदा कर दिया। मैंने इन बच्चों को अनाथ बना दिया। पर तुम आये, यह मेरे लिए परम सन्तोष का विषय रहा। रास्ता कठिन है, वर्षा का मौसम है, सचमुच, तुमने बड़े साहस का कार्य किया। अपने इस मास्टर को आभारित किया।"

यदुनाथ बोला—"मास्टर जी, यह तो सत्य है कि आज कई वर्ष बाद आपके दर्शन कर पाया हूँ, परन्तु जो शिक्षा आपने मुझे दी, उसे क्या भूल सका हूँ। मेरे लिए आप आज भी श्रद्धास्पद हैं। आपकी पुनीत शिक्षाओं ने मुझे भावना प्रदान की है। जिसका प्रमाण यह है कि मैं यहाँ तक आने का दुस्साहस कर सका। घर से मोटर में चला था। परन्तु यह जो आपके गाँव की नदी है, इसका पुल पार करके मोटर का आगे बढ़ना कठिन हो गया। मन में आया कि लौटूँ, परन्तु आत्मा का आदेश था कि मुझे आपके पास पहुँचना चाहिए। अतएव, मैंने गाड़ी लौटा दी। ड्राईवर को यह भी नहीं बताया कि कहाँ जा रहा हूँ। एक गाँव के व्यक्ति ने रास्ता बताया और मैं पानी में से निकलता हुआ यहाँ तक आ गया। हर्ष है कि आपके दर्शन करने में सफल बन गया।"

पण्डित सुदर्शन ने पास खड़ी कमला को इंगित किया और कहा—"इस कमला को जानते हो न! तुम्हारे घर बहुत खेलती थी। तुम्हारी माता जी प्रसन्न हैं।"

यदुनाथ बोला—"जी, वे ठीक हैं। वे कभी भी आपका उल्लेख कर बैठती हैं और इस कमला को क्या मैं भूल सकूँगा। मेरी किताबें फाड़ती थी, लिखने की कापी छुपा देती थी। माता जी भी इसे याद करती हैं।"

सुदर्शन जी बोले—"तुम्हारी माता पुण्या हैं, लक्ष्मी हैं।' उन्होंने कमला की ओर देखकर कहा—'बेटी, इस यदुनाथ के लिए भोजन का प्रबन्ध करो। पहिले थोड़ी चाय दो।" वह बोले—"भाई, विदुर के

घर आये हो, तुम! यह घर अभाव भरा है......विषाद से पूर्ण! परन्तु जिस भावना को लेकर आये हो, वह बहुत ऊँची है। उसे देख कर मेरी आत्मा हर्ष से भर उठी है। लगता है, अब मुझे कोई रोग नहीं।"

यदुनाथ ने कहा—"पण्डित जी, आपने मुझे जो कुछ प्रदान किया, वह अभी तक मेरे पास है। उस सम्पत्ति ने मुझे मालामाल कर दिया। उसे चोर नहीं चुरा सकते। खूनी, डाकू उसका कत्ल नहीं कर सकते। मैं पिताजी के धन से तो धनवान नहीं बना, परन्तु आपके द्वारा प्रदत्त सम्पदा ने अवश्य ही मुझे भाग्यवान बना दिया। मैं आपका आभार जीवन भर नहीं उतार सकूँगा। उसकी समता में, आपके समक्ष भला क्या रख सकूँगा।"

सुदर्शन जी ने कहा—"यह सुनना मुझे भी अच्छा लगता है। मेरी कामना थी कि धनिक-पुत्र बन कर भी तुम सहृदय रहो। अपने समाज के प्रति सद्भाव्य रहो। सो, तुम ऐसे बने, उसी भावना पर यहाँ तक चले आये, यह अनुपम है। तुम्हारा पुनीत कर्म है।"

उसी समय कमला वहाँ से उठ चली। वह रसोई में पहुँच गयी। यदुनाथ ने अपनी अटैची खोली और उससे कपड़े निकाल कर, जब भीगे उतार कर बदल चुका, तो बोला—"अब रात आ गयी है। भोजन बनाने का कष्ट करना क्या ठीक होगा।"

कुछ लेने के लिए कमला उधर आई, तो बात सुनकर बोली—"सुना पिता जी, पूछिये तो, भूखे पेट से क्या रात कटेगी। करवटें बदलते बीत जायगी, यह रात!"

बात सुनी तो यदुनाथ हँस दिया—"पण्डित जी, यह कमला नहीं बदली। दिखता है, वैसी ही चंचल और हँसोड़..."

पण्डित जी ने कहा—"बेटा, बदलनी तो नहीं चाहिए, पर परि-स्थिति ने बदल दी। माँ मर गयी और सभी बोझ इस कमला पर डाल गयी। अभावों की दुनिया में इसकी हँसी भी लुप्त हो गयी।" वह

कमला से बोले—'बेटी, यदुबाबू भूखे हैं। दूर से चलकर आये हैं। जो कुछ तुम्हारे घर में है, ससम्मान अपने अतिथि के सामने रख देना।"

कमला लौट गयी। सुदर्शन जी बोले—"अब इस कमला पर ही घर का बोझ है। वह देखते हो, चारपाई पर सोता हुआ लड़का, वह इसका भाई है।"

यदुनाथ ने कहा—"मुझे पता है। जब वह पैदा हुआ, तो मुझे भी कुछ खाने को मिला था।" वह बोला—"अब कमला सयानी और समझदार बन गयी है। दिखता है, आपकी चिंताओं में खो चुकी है।"

बात सुनकर, सुदर्शन जी मौन रह गये। वह बाहर की ओर देखने लगे। उस समय वर्षा तेज पड़ते लगी थी। मकानों के पतलाने जोर से गिरने लगे थे।

यदुनाथ ने कहा—'मेरे पिता जी ने आपके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। आपका जीवन बिगाड़ दिया।"

आतुर भाव में सुदर्शन जी बोले—"नहीं, नहीं, उनका मुझे सदा स्नेह मिला। वह तो मेरे भाग्य का लेखा-जोखा था। वही मुझे मिलना था।" यह कहते हुए उनका मुँह गम्भीर बन गया। आँखें चढ़ गयीं। माथे में बल पड़ गये। निश्चय ही उस क्षण उन्हें दु:सह पीड़ा प्राप्त हुई। उनकी आँखों मे एक अजीब प्रकार की करुणा भी उतर आई।

यदुनाथ बोला—"पण्डित जी, मेरा मत है कि पैसा पाकर आदमी प्राय: अन्धा हो जात है। दम्भी हो जाता है। जो धनिक व्यक्ति अपने विवेक का सन्तुलन रख पाता है, वह भाग्यवान और पुण्यवान होता है।"

पण्डित सुदर्शन ने सांस भरी और कहा—"बेटा, यदुनाथ! आज के युग में पैसा ही बड़ा है—महान है। किसी एक दिन इस पृथ्वी पर बुद्धीजीवी इन्सान का साम्राज्य था, उसका महत्व समझा जाता था। मानव की अनुभूति और सदाशयता को प्रमुख स्थान प्राप्त था परन्तु आज पैसा सर्वोपरि है। तुम्हारे पिता के पास पैसा है न, तो उन्होंने अपना कारबार भी बढ़ाया, नगर में सम्मान भी प्राप्त किया। लेकिन

तुम सहज में कल्पना नहीं करोगे कि मेरी सदाशयता ने मुझे ग्रस लिया···तुम्हारे पिता के कारण मेरा जीवन बरबाद हो गया। मेरी जवानी गयी, बुढ़ापा आ गया। अब मौत के मुँह में भी जाने के लिए प्रस्तुत हो गया।''

यदुनाथ मौन था। उसने अनायास अनुभव किया कि पण्डित जी के मन में मेरे पिता जी के लिए अब भी रोष है। किन्तु वस्तुस्थिति को वह समझ रहा था। उसे स्वयं लग रहा था कि सचमुच, पण्डित जी का जीवन नष्ट हो गया—इन्सान के दम्भ और क्रूर आघात ने चूर-चूर कर दिया।

उसी समय पण्डित सुदर्शन ने कहा—'बड़े-बड़े कारखानों की मशीनें चलती हैं, तो उन कठोर पुर्जों के साथ इन्सान का मन भी लोहा बन गया है। यह तो सत्य है कि उन मशीनों से आदमी होड़ नहीं कर सकता, लेकिन उस अभिशाप से समाज यों अभिशप्त बने, घात-प्रतिघातों के नीचे दबकर आत्महीन बने, ऐसा अमानवीय कर्म दास-वृत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकेगा। फलस्वरूप, मनुष्य अस्तित्वहीन बनेगा। दम्भी और छलिया बनकर ही अपना जीवन बितायेगा।' पण्डित ने साँस भरी और बोले—'आज पैसों का चिन्तन ही मनुष्य की आस्था है अर्थ संचय ही उद्देश्य। देखते हो, इस छोटे से दीपक को, अपनी लाल-लाल लो से प्रकाश दे रहा है। परन्तु पतंगे इसी पर मरते हैं। चारों ओर से सिमट कर इस पर टूटते हैं। यही मनुष्य की परिणति है। पैसा जीवन देता है, पैसा मौत देता है। बात उपयोग करने की है। कैसी बात है कि धरती के कुछ आदमी ऐश्वर्य का जीवन बिताते हैं और शेष परमुखापेक्षी बने गिन-गिन कर दिन काटते हैं। वे दीन और याचक बने रहते हैं।'

आले में रखा दीपक प्रकाश करने के साथ स्याही का एक बड़ा गुच्छा दीवार पर बना रहा था। यदुनाथ उसी ओर देख रहा था।

पण्डित जी की बात सुनने के साथ उसके मन में उठ रहा था कि यह मनुष्य भी प्रकाश करता है, निर्माण करता है, परन्तु अपने काले कारनामों का एक बड़ा बोझ भी इस धरती पर छोड़ जाता है। बदबू फैलाता है। अमानवीय हाथों का इतिहास बनाता है। उसने पण्डित जी से कहा—'आप नगर में चलिये। वहाँ आपकी व्यवस्था हो जायेगी। आपको शान्ति मिलेगी।'

सुदर्शन जी कड़ुवे भाव से मुस्कराये—'उस नगर मे शान्ति नहीं। प्रकाश अवश्य है, परन्तु उसी के नीचे पाप का ढेर लगा है।

यदुनाथ बोला—'वह पाप यहाँ भी है। सर्वत्र है! बताइये, अमानवीय तत्व आज कहाँ नहीं है।'

विचलित बनकर, सुदर्शन जी बोले—'हाँ, यह तो है। परन्तु यहाँ तो अन्धेरा है, अशिक्षा है, गरीबी है। लेकिन नगरों में तो यह नहीं। फिर भी वहाँ आदमी अड़ रहा है, क्रूर और अहमन्य बना है। वहीं का पाप इन गाँवों में भी आया है।

यदुनाथ बोला—'मैंने कई बार सुना कि आप यहाँ आकर भी अपने मिशन से दूर नहीं हुए। आपने अनेक गाँवों में शिक्षा और जन-जागृति का कार्य किया। नगर में अब भी आपका नाम आता है। मुझे भरोसा है कि पिता जी को भी अपने किए पर दुःख हुआ होगा। अब वे बूढ़े हो गये। रोगी रहने लगे। कार-बार का बोझ मेरे ऊपर आ गया।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'मेरी हार्दिक कामना है कि तुम फलो-फूलो! तुम्हारे पिता जी भी स्वस्थ तथा आनन्दित रहें, यही मेरी अभिलाषा है।'

यदुनाथ बोला—'पण्डित जी, आप उदार हैं।'

उसी समय कमला वहाँ आई और यदुनाथ को खाने के लिए चौके में चलने को कहने लगी।

सुदर्शन जी बोले—'हाँ, बाबू, वहीं खा आओ! यहाँ तो मैं बीमार पड़ा हूँ। इस स्थान को अशुभ बना रहा हूँ।'

यदुनाथ खड़ा हो गया। वह कमला के साथ रसोई घर में पहुँच गया। कमला ने थाली में साग रखा और पराँठा। जब यदुनाथ भोजन करने बैठा, तो कमला ने सहज भाव से कहा—'आपने पढ़ा तो होगा ही, 'सुदामा के तन्दुल……'

सुनते ही, यदुनाथ जोर से हँस दिया, वह बोला—'तुम तो बहुत ऊँची बात कर सकती हो, कमला देवी! मैं समझा, अब सयानी हो गई हो। खूब पढ़-लिख गयी हो। पर समझ लो, यहाँ न भगवान कृष्ण हैं न सुदामा। ये साग पराँठे क्या सभी घरों में बनते हैं।

कमला ने कहा—'आप बड़े आदमी हैं।'

यदुनाथ खाते हुए रुक गया और बोला—'परन्तु जिस व्यक्ति के पास मैं आया हूँ, वह मुझसे बहुत बड़े हैं, विचारों में ऊँचे हैं और तुम उन्हीं की कन्या हो। मेरे लिए तुम भी अभूतपूर्व हो। पण्डित जी ने बचपन में मुझे जिस प्रकार की शिक्षा दी, उसका एक-एक बोल आज भी मेरे प्राणों में बोलता है। यदि मैं अपनी समस्त सम्पदा इनके चरणों में डाल दूँ, तब भी उऋण नहीं हो सकता।

कमला ने कहा—'इस भावना के सहारे आप यहाँ तक आये, यह हमारे लिए सुख का विषय है। नहीं तो इस दरिद्रता में और इस गाँव में कौन आता है।' कहते हुए कमला ने गरम पराँठा यदुनाथ की थाली में रखा।

यदुनाथ बोला—'मैं खा चुका।'

कमला ने कहा—'साग दिन का था। वर्षा के कारण कुछ नहीं मिल सका।

यदुनाथ बोला—'बनावटी बात न समझो तो कहूँ, बहुत दिन में खाने का आनन्द आया! मैं भूखा भी था।'

कमला ने हँसकर कहा—'मुझे पता था! मुँह उतरा था।'

यदुनाथ भी हँस दिया और बोला—'भोजन में प्राण हैं, भगवान हैं। वह बोला—'निश्चय ही, यहाँ आने का अर्थ अनुभूति के अतिरिक्त

और कुछ नहीं था। पण्डित जी के दर्शन करने थे, तुम्हें भी देखना था। तुमने तो मुझे भुला दिया होगा।'

कमला ने कहा—'जी, जिसने बचपन में मेरे कान पकड़े, कमर में घूँसे रखे, उसे क्या सहज में भुलाया जायेगा।'

यदुनाथ बोला—'ओह, तुम्हें वह भी याद है! सच बड़ी शैतान थीं, तुम!'

कमला बोली—'पर वे घूँसे मेरे लिए वरदान बनते थे। मैं रोती थी, तो माँ जी मिठाई देकर मुझे चुप करती थीं, पुचकारती थीं।

यदुनाथ बोला—'तुम्हारे लिए मैं भी कई बार पिटा था। माँ ने झिड़का था।' वह खड़ा हो गया और बोला—'वे सभी सलोनी बातें थीं, बचपन की थीं। जिनमें छल या दम्भ नहीं था, उसने कहा—'तुम्हारे पिता जी ने जो कुछ मुझे प्रदान किया, वह रुपए से नहीं तौला जा सकता। उसका बड़ा मूल्य है। वह भी एक अपूर्व सयोग था।'

कमला ने साँस भरी—'आज ऐसा कौन मानता है।'

यदुनाथ बोला—'मैं मानना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि पण्डित जी का सेवक बना रहूँ।'

कमला ने कहा—'आप बड़े गलत समय में आये। चारों ओर पानी ऊपर से पड़ती वर्षा!'

यदुनाथ बोला—'अनेक बार सोचा, पर आ नहीं सका। आजकल में ही टालता रहा, इस बात को। परन्तु जब चला, तो रुका नहीं; चला ही आया। सचमुच, मैं उचित समय पर आया। मुझे ऐसे ही समय आना था। कई जगह गड्ढों में गिरा। दो-तीन साँपों से भी बचा।'

कमला ने कहा—'आज-कल साँप निकल आते हैं। उनमें जहरीले भी होते हैं।'

यदुनाथ ने बोला—'एक साँप ने मेरी ओर देखा, तो फुफकारा। मेरे पास पिस्तौल था, वह निकाल लिया। लेकिन साँप आगे नहीं बढ़ा,

अपनी जगह बैठा रहा। मैं अभी निकल आया।'

कमला बोली—'अच्छा हुआ, भगवान की कृपा थी। यह ही क्या भरोसा कि आप गोली चलाते और साँप मर जाता। वह चुटीला बन कर पीछा किया भी कर सकता था।'

यदुनाथ ने कहा—'साँप जहरीला था। काला था। दो गज से कम लम्बा नहीं था। बलिष्ठ और जवान था। जब उसने मेरी ओर देखा, तो लगा कि जैसे उसकी आँखों में मशाल सरीखा प्रकाश जल रहा था।'

कमला ने कहा—'आपने खाया कम। भोजन अच्छा नहीं लगा।'

यदुनाथ बोला—'एक पराँठा अधिक खाया। स्वदिष्ट लगा। मुझे आज ही भूख लगने का आभास मिला।'

कमला ने हँसकर कहा—'शहर वाले दिनभर खाते हैं। गरीब को जब मिलता है, तभी उसका पेट भरता है। वह भूख की पीड़ा पहचानता है।'

यदुनाथ ने कहा—'आज खाना न मिलता, तो रात का सोना भी हराम बन जाता। भूखे रहते क्या चैन मिलता।'

बात सुनी, तो कमला भी हँस पड़ी। वह बोली—'मैंने गलती की। आपको जिन्दगी का एक बड़ा अनुभव करने से वंचित न रख सकी।'

यदुनाथ ने बात सुनी, तो स्वयं भी खिला-पिला कर हँस दिया।

तत्क्षण ही कमला ने धीर स्वर में कहा—'मनुष्य के अनुभव सरल नहीं होते। प्रायः कड़ुवे होते हैं। मेरे पिता जी ने वही तो प्राप्त किये हैं। जब मेरी माँ मरी, तो कफन के लिए भी घर में पैसे नहीं थे। उससे दो दिन पूर्व एक जगह से रुपये आये तो वे पिता जी ने एक अन्य बुढ़िया के मरने पर व्यय कर दिये। उन रुपयों से उसके लिए कफन आया। लेकिन जब माँ मरी, तो वह धोती से लपेट कर जला दी गयी।' वह बोली—'मेरी माँ ने पिता जी से कभी घर के अभाव की शिकायत नहीं की। पिता जी के समान वह भी हृदय की

उदार और महान थीं।'

यदुनाथ बोला—'यह मुझे पता है। तुम्हारी माँ ने पण्डित जी को सदा प्रेरणा प्रदान की। वह महान नारी थीं।'

उस समय वर्षा बन्द हो चुकी थी। बादल छाये हुए थे। बिजली चमक रही थी। यदुनाथ ने उसी ओर देखा। वह अपना मुँह ऊपर उठाते हुए बोला—'कमलादेवी, इस धरती पर आकर सभी अपना लेखा-जोखा चुकाते हैं। अपना कर्म सम्पादित करते हैं। पर जो दूसरों के लिए कुछ करते हैं, वे महान हैं, पुण्य तीर्थ हैं। पण्डित जी ने नगर में और यहाँ पर जिस भावना और त्याग का पथ प्रशस्त किया, वह वन्दनीय है। मैं तुम्हारे परिवार में अपराधी के रूप में आया हूँ। मैं पुत्र बनकर भी अपने पिता को दोषी पाता हूँ, मनुष्यता का अपराधी। तुम भूली न होगी, पण्डित जी ने मुझे किताबों से धर्म और समाज की शिक्षा तो दी, परन्तु व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान किया। बचपन में किन-किन स्थानों पर पण्डित जी के साथ गया। मुझे पता है, पिता जी इसे अशुभ मानते थे। माँ भी पसन्द नहीं करती थी। एक बार जब एक चमार के यहाँ पण्डित जी मुझे ले गये, तो लौटने पर मुझे स्नान कराया गया था। और पण्डित जी उस चमार रोगी की मरहम-पट्टी करने नित्य जाते थे। नगर के जाने किस-किस अन्धे और गन्दे मुहल्लों में पण्डित जी मुझे साथ ले गये थे। वहीं जाकर कहते थे, यह है, मानव की पीड़ा, मानव का अभिशाप और मानव का शिवालय, जहाँ शिव और सत्य का दर्शन होता है!'

कमला ने साँस भरकर कहा—'यदुबाबू, आप समाज के धनिक और भाग्यवान पुरुष हैं। सम्माननीय हैं। किन्तु पिता जी अपने जीवन के अन्धेरे में जिस जनार्दन की पूजा करते हैं, वह अलौकिक है। पिताजी के कारण सदा ही द्रविल बने रहते हैं।'

यदुनाथ बोला—'मैं पण्डित जी को शहर चलने के लिए कहूँगा। तुम्हारा भाई वहीं पढ़ेगा। तुम चाहोगी, तो तुम्हारा अध्ययन भी आगे

चल सकेगा।   कहूँ, मैंने तुम्हारे समान शिष्ट, सुसभ्य
कमला ने कहा—'मेरे ऊपर इसीं देख पाया। सौन्दर्य की क्या परि-
पिता जी की चिन्ता है।'   परन्तु इतना जानता हूँ कि जिस
यदुनाथ बोला—'यह शुभ कार्य है यहं नहीं, वह निष्क्रीय है।'
की समाज को आवश्यकता है।' यह कहते हुए मैं आप?'
पहुँचा।

देखते ही, पण्डित जी बोले—'क्यों भाई, पेट भारा?

यदुनाथ बोला—'जी, खूब भरा। अधिक खा गया।'

उसी समय कमला वहाँ पहुँची। बोली—'पिता जी, सीतफल का साग था जिसे यदुबाबू नहीं खाते होंगे। वही यहाँ खाना पड़ा। इस गाँव में यही सुप्राप्य है।' यह कहते हुए कमला हँस पड़ी। किन्तु यदुनाथ हँसा नहीं; वह कमला की बात में खो गया। उसे लगा कि यह कमला योग्य पिता की योग्य सन्तान है,—इस घर का प्रकाश। उसने कहा, यह कमला जिस घर भी जायेगी, वहाँ उजेला हो जायेगा, सरस अनुभूति का राज्य!

उदार और महान थीं।'

यदुनाथ बोला—'यह मुझे पता है'

सदा प्रेरणा प्रदान की। वह महान

उस समय वर्षा बन्द हो चुकी

चमक रही थी। यदुनाथ ने उस

उठाते हुए बोला—'कमलादेव

लेखा-जोखा चुकाते हैं।

चार

लेकिन उस रात के बाद जब दूसरा दिन आया, तो नगर से दूर आकर भी, यदुनाथ को लगा कि उसने उस गाँव में आकर कोई भूल नहीं की; अपितु संयोग से एक सुन्दर अवसर पा गया। अगले दिन उसे लौटना था, परन्तु पिता और पुत्री के आग्रह पर रुक जाना पड़ा। रात में ही वर्षा बन्द हो चुकी थी, प्रातः होने पर सूरज निकल आया। सभी ओर का दृश्य सुन्दर बना था। किसान अपने हल-बैल लेकर खेतों की तरफ जाने लगे थे। पेड़ों पर पक्षी चहचहा रहे थे। निःसन्देह मनुष्य के लिए वह दृश्य अपूर्व था। कहीं कोयल कूक रही थीं, कहीं पक्षी कलरव कर रहे थे। गाँव के बाहर बागों में मोर बोल रहे थे और नाच रहे थे। कई दिन के बाद वर्षा गयी, तो इन्सान के समान, पक्षी भी हर्षोन्मत्त हो उठे थे। गायें और उनके बछड़े रँभा रहे थे।

प्रकृति के उस सोपान को पाकर, एकाएक यदुनाथ के मुँह से निकला—'अपूर्व ?'

संयोग से उसी समय कमला वहाँ आ गयी। सुनते ही पूछ बैठी—'क्या !'

यदुनाथ ने कहा—'यह प्रकृति···यह तुम्हारा गाँव !'

कमला बात सुन कर सहज भाव से मुस्करा दी। उसकी श्याम रंग की पलकें खिल गयीं। उसी अवस्था में बोली—'हाँ सत्य यही है। इसमें दो मत नहीं। गाँव में सादगी है, प्रकृति का खुला रूप है।'

यदुनाथ ने कहा—'सादगी ही जीवन का पवित्रतम सोपान है,

कमलादेवी ! बुरा न मानो तो कहूँ, मैंने तुम्हारे समान शिष्ट, सुसभ्य और स्वस्थ लड़की को शहर में नहीं देख पाया। सौन्दर्य की क्या परिभाषा है, यह तो मैं अभी समझा नहीं परन्तु इतना जानता हूँ कि जिस नारी में आकर्षण नहीं, प्रेरणा या चेतना नहीं, वह निष्क्रीय है।'

हँसकर कमला ने कहा—'कविता करते हैं आप ?'

किन्तु यदुनाथ तो भावना में भरा था, कहता चला—'मैं, कमलादेवी यही सत्य है। मैं जिसकी कल्पना नहीं कर पाता, वही तुम हो ! नितान्त रस, अनुभूति से पूर्ण; पण्डित जी के जीवन में जो सत्य है, शिव और सुन्दर भाव है, उसे तुम अपने मानस में उतार सकी हो !'

एकाएक चँचल बनकर कमला ने कहा—'मैंने अपनी प्रशंसा तो सुन ली, पर यह बताइये, आप इस प्रभात में क्या लेंगे ? दूध या चाय ?'

यदुनाथ बोला—'मैं कुछ भी ले लूँगा।'

कमला ने कहा—'पिता जी चाय लेते हैं। चलिये, कमरे में बैठिये।' वह बोला—'मुझे पिता जी ने अनेक बार बताया है कि आप अपने पिता पर नहीं गये, माँ पर गये हैं। बड़े भावुक और चिन्तनशील हैं आप ! नगर से एक मास्टर कई बार आये हैं। वे भी आपका वर्णन कर गये हैं।'

यदुनाथ बोला—'कमला जी, नहीं जानता मैं क्या हूँ। पर यह सत्य है, यहाँ आकर मैं अपने को क्षुद्र मानता हूँ। पण्डित जी के समक्ष तो मैं तिनका हूँ। और-तो-और, मैं तुम्हें भी अपने से ऊँची और भाग्यवान मानता हूँ।'

कमला ने अपने फेनिल सरीखे दाँतों से हँस दिया। उसकी सुन्दर आँखें शरमा गयीं और वे बरबस ही झुक गयीं। तभी यदुनाथ पण्डित जी के कमरे की ओर बढ़ गया। वहाँ जाकर देखा कि सुदर्शन जी उसकी प्रतीक्षा में हैं। उनका पुत्र रजनीश यदुनाथ की अटेची को देख रहा है और पिता से प्रश्न कर रहा है, यह किसकी है और पण्डित जी उसके

मालिक का नाम बता रहे हैं। यदुनाथ को देख उन्होंने कहा—'यह हैं, इस अटैची के मालिक। नमस्ते करो इन्हें।'

रजनीश ने दोनों हाथ जोड़ दिये।

यदुनाथ ने कहा—'वाह, तुम भी अब मुझे नहीं पहचानते। चलो, आज नये सिरे से जान-पहचान करेंगे। दोस्त बनेंगे।'

उसी समय कमला ने वहाँ हलुवा लाकर रखा।

हलुवा देखकर रजनीश बोला—'जीजी, मैं!'

कमला ने हँसकर कहा—'हाँ, तू भी!' और उसने दूसरी तश्तरी का हलुवा उसके सामने रख दिया।

यदुनाथ खाने लगा। जब वह दूध और हलुवा खा-पी चुका, तो रजनीश से बोला—'आओ, दोस्त! थोड़ा घूम आयें। जगंल देख आयें। बोलो, चलोगे।'

रजनीश ने तपाक से कहा—'हाँ, क्यों नहीं चलूँगा।'

पण्डित जी ने कहा—'ये बड़े भाई साहब हैं।'

रजनीश बोला—'अच्छा, अब भाई साहब कहूँगा।'

सुनकर, कमला और यदुनाथ ने हँस दिया। जब दोनों चलने लगे, तो कमला ने यदुनाथ को टँकोरा—'दूर न जाइयेगा। धूप तेज पड़ेगी। रास्ते में पानी भी होगा। जरा देखकर, जगंल है, जहरीले जानवरों का डर है।'

यदुनाथ बोला—'चिन्ता न करो, मैं ईश्वरवादी हूँ, भाग्यवादी किसी के काटने से मौत आयेगी, तो क्या मुझसे बचा जा सकेगा। मौत का परवाना वापिस नहीं जायेगा।'

बात सुनी, तो कमला ने होठों से हँसा आँखों से मुस्कया दिया।

किन्तु पण्डित जी ने कहा—'भैया, सावधानी रखना भी आवश्यक है। तुम्हारे जीवन का मूल्य है।'

यदुनाथ बोला—'पण्डित जी, सभी के जीवन का मूल्य है। कोई मरता है, तो उसका अभाव किसी-न-किसी रूप में पूरा होता है।' उसने

रजनीश का हाथ पकड़ लिया और चल दिया ।

जब वे दोनों मकान से बाहर निकल गये, तो तभी, पण्डित जी ने कहा---'देखा बेटी, कितना अन्तर है, बाप-बेटे में !' उन्होंने तकिये के नीचे से रुपये निकाले और कमला की ओर बढ़ा कर कहा---'इस यदुनाथ ने ये पाँच सौ रुपये दिये हैं । मैं तो नहीं ले रहा था, परन्तु वह नहीं माना ।

कमला ने कहा---'वह अतिथि हैं, पिता जी ! नहीं लेने थे ।'

पण्डित सुदर्शन बोले---'बेटी इस यदुनाथ से मेरा गहरा सम्बन्ध है । तुमसे तो मैंने कई बार कहा, कि रजनीश तो देर में पैदा हुआ, पर मैं जाने कब से इस यदुनाथ में ही अपना रूप देखने लगा था । इसलिये मैं इसे माँ-बाप की आँख बचाकर, निर्धन और पीड़ितों के मोहल्लों में ले जाता था । मैं चाहता था कि इसकी आत्मा में तेज आये । नन्हें बालक के दिल पर अमीरी का धुआँ न छाये, गरीबी और इन्सान की पीड़ा का प्रभाव अपना स्थान बना पाये । जो आज देखता हूँ, मैं अपने उस कर्म में सफल हुआ । यदुनाथ मेरे अनुकूल बना ।

कमला ने कहा---'पिता जी ये यदु बाबू सचमुच में ऊँचे हैं, सरल हैं, इनमें बनावटीपन कहाँ है ।

उस समय यदुनाथ जंगल में एक बाग के पास पहुँच गया था । पेड़ों पर अनेक प्रकार के पक्षी कलरव गान कर रहे थे । जब उसने एक पेड़ पर दृष्टि डाली तो तोते सैकड़ों की संख्या में उस पेड़ पर बैठे थे । रजनीश स्वभाव का नटखट था । वह बार-बार यदुनाथ से प्रश्न कर रहा था । इतनी देर में वह उसे 'भाई साहब' कहने लगा था । रास्ते में यदुनाथ ने उससे पूछा था, तुम्हारी जीजी तुम्हें मारती हैं ? तो तभी, रजनीश ने कहा, जीजी मारती तो नहीं पर डाट बताती है । जब मैं रोने लगता हूँ, तो स्वयं भी रो पड़ती है । उसी प्रसंग में उसने बताया, जब मैं खा चुकता हूँ, तो जीजी खाती है । जब मैं सोता हूँ, तो वह सोती है ।

इस प्रकार उस बालक रजनीश की वाणी एक बार खुली, तो खुलती गयी, रुकी नहीं। सरपट दौड़ती चली, वह दिन में क्या-क्या खेल खेलता है, क्या खाता-पीता है और गाँव में कौन-कौन बालक उसका दोस्त बना है, ये सभी बातें वह बिना पूछे बताता चला। किन्तु उसी समय यदुनाथ के मन आ रहा था, यह कमला अपनी माँ पर गयी है, वैसी ही सौम्य और उदार। रात जब वह आया, तो कमला मैली धोती पहिने हुए थी। उसके सिर के बाल भी सलीके से नहीं थे। परन्तु प्रातः जब उसने देखा, तो वह साफ चौड़ी किनारी की धोती पहिने थी। बाल भी कढ़े थे। रजनीश ने बातों-बातों में यह भी बताया कि हमारे घर में पैसा कम आता है। कभी-कभी जीजी को बिना खाये ही सो जाना पड़ता है। उसने यह भी बताया कि जीजी बहुत काम करती है। प्रातः उठते ही घर साफ करती है, फिर कुएँ से पानी भर कर लाती है। स्वयं स्नान करती है, फिर भगवान का भजन करती है। जीजी रामायण और भागवत पढ़ती है।

बाग के पास से चलकर, यदुनाथ दरिया किनारे पहुँच गया। उस समय दरिया ठाठें मार रहा था। पानी तेजी के साथ बहा जा रहा था। जिस जगह यदुनाथ खड़ा था, तो वहीं पर बार-बार भँवर पड़ता, पानी सायं-सायं करता। कभी-कभी कछुवे तथा अन्य जानवर भी पानी से बाहर आते और शूँ-शूँ करने के साथ फिर पानी में गोता मार जाते। तभी यदुनाथ के मन में प्रश्न उठा, अजीब जीवन है, यह ! इस दरिया के समान ही गहरा ! इतना ही कठोर। उसी समय रजनीश ने बताया कि इसी घाट पर एक आदमी डूब गया था। एक आदमी का कटा हुआ धड़, यहाँ बहता हुआ आ गया था। वह बोला, किसी ने मार कर फेंक दिया होगा। यदुनाथ ने इतना सुना, तो एकाएक ही गम्भीर बन गया। वह गहरी दृष्टि से दरिया को देखने लगा। उसने पाया कि यह पानी आदमी को जीवन देता है, वही मौत। इस दरिया के पास भी मौत है···काल है ! इस प्रकार उसका मन कोलाहल से

भर गया। बरबस ही, उसमें ऐसी उमस पैदा हुई कि जैसे वह रो पड़ेगा, और निश्चय ही, उस भावुक और सहृदय युवक के मन में ऐसा जहरीला धुआँ छुटने लगा कि जिससे उसके प्राणों में भारीपन आ गया। उस अवस्था में ही, उसने कहा, आदमी सभी जगह मरता है··· यह दरिया भी मारता है···इन्सान-ही-इन्सान का वध करता है। आदमी धार्मिक है, भावनावादी है, परन्तु फिर भी अपने स्वार्थ और स्वत्व को प्रश्रय देता है···आदमी के खून और माँ से खिलवाड़ करता है, यह आदमी ?

संयोग की बात कि उसी समय कुछ कपड़े लिए हुए एक पड़ोसिन के साथ कमला वहाँ आयी। उसे देखते ही रजनीश चिल्ला पड़ा—'जीजी !'

पास आकर कमला ने कहा—'इतना क्यों चीखता है !'

यदुनाथ बोला—'बच्चा अपनों को देखकर प्रसन्न होता है।'

कमला ने कहा—'आप क्या गैर हैं !'

यदुनाथ ने कहा—'मैं अभी गैर हूँ, इस रजनीश के लिये। इसके अनुरूप कहाँ घुला-मिला हूँ। वैसे यह समझ गया, यह हजरत बातूनी बहुत हैं।'

कमला ने कहा—'बहुत बोलता, पूरा शैतान है।'

यदुनाथ बोला—'तो ये कपड़े, धोये जायेंगे। इतने धुलेंगे ?'

कमला बोली—'कई दिन के पड़े थे। सड़ रहे थे। आज अवसर मिला, सूरज निकला।'

यदुनाथ ने दरिया की ओर मुँह उठा दिया और कहा—'तुम बहुत परिश्रम करती हो। अपनी माँ का घर सँभाल सकी हो।'

कमला ने कपड़े किनारे पर रख दिये और कहा—'परिश्रमी बनना और इस शरीर से काम लेना अच्छा है। पिता जी तो कहते हैं कि अभाव आदमी को जहाँ मौत देता है, वहाँ जीवन भी प्रदान करता है। पैसे वाला जीवन से दूर हो जाता है। प्रकृति से दूर होता है। वह

आलसी और प्रमादी बन जाता है। नौकरों पर अपने को डाल देता है। वह किनारे बैठ गयी। कपड़ों की गठिया खोल ली। उन पर साबुन लगाने लगी। उसी अवस्था में वह बोली—'आपको भोजन समय पर मिलेगा।'

यदुनाथ बोला—'मेरी चिन्ता न करो! मैं इस जंगल की बहार देख रहा हूँ। दरिया की ये लहरें भी अभूतपूर्व पाता हूँ। ऐसा क्या कभी देख सका हूँ।

कमला मुस्करायी—'यह शहरी जीवन से दूर है। अनोखा है। पर जब पेट में भूख होगी, तो यह सुहावना दृश्य भी मोहक नहीं लगेगा।'

यदुनाथ पास के पत्थर पर बैठ गया। रजनीश खेलता हुआ दूर चला गया। कमला के साथ जो दूसरी नारी थी, वह भी कपड़े धोने लगी। तभी यदुनाथ बोला—'कहो, तो मैं हाथ बटाऊँ। कपड़ों में साबुन लगाऊँ। मन तो यह भी करता है कि इस दरिया में छलांग लगाऊँ और तैर कर दूर निकल जाऊँ।'

कमला हँसी! वह तुरन्त बोली—'भगवान के लिए ऐसा न सोचिये। दरिया गहरा है। चढ़ा है, उसने कहा—'आपने तो कभी कपड़ा धोया नहीं होगा। कभी अपना रुमाल या बनियान भी साफ नहीं किया होगा।' वह बोली—'तभी तो मैं कहती हूँ, पैसे वाला वास्तविकता से दूर हो जाता है। वह क्या जीवन के छोटे कामों को समझ पाता है।'

यदुनाथ दरिया के दूसरे किनारे की ओर देखता हुआ बोला—'मैं इतना मानता हूँ।'

और क्या! यह भी मानते हो कि गरीब के पास ·हृदय होता है, उसमें भावनाओं का समूह होता है।'

आतुर बनकर, यदुनाथ बोला—'हाँ, कमलादेवी, मैं यह भी स्वीकार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि वह आँखों में आँसू और हृदय में टीस लेकर

भी, उदार होता है। वह धर्म और संस्कृति को समझता है।'

उसी समय पड़ोसिन पास आकर बोली—'कमला, ये है तुम्हारे मेहमान, शहर वाले !'

कमला ने कहा—हाँ, चाची ! ये हमारे मेहमान हैं।' उसने यदुनाथ की ओर देखा और हँस दिया।

चाची ने कहा—'बड़े, आदमी हैं, बड़ी बातें करते है।'

यदुनाथ बोला—'जी, मैं छोटा आदमी हूँ। पैसा पाकर ही क्या बड़ा बना जाता है।'

चाची ने साँस भरकर कहा—'बाबू, इस धरती पर बड़ा वही है, जिसके पास पैसा है।'

यदुनाथ बोला—'नहीं, नहीं, वह छोटा है। दूसरों को ठगता है। बड़े आदमी ऐसे होते हैं, जैसे पण्डित जी, इस कमला के पिता !'

चाची ने कहा-—'बाबू वह तो देवता हैं। देना जानते है, लेना नहीं। गरीबी को उन्होंने खुद अपने पास बुलाया है।'

कमला बोली—'यदुबाबू, अब आप घर चलिये ! धूप तेज है, मैं अभी आती हूँ। देखिये तो रजनीश कहाँ पहुँच गया। इसने मुझे परेशान कर दिया।'

यदुनाथ खड़ा हो गया और बोला—'तुम उसे डाटती हो और फिर स्वयं रोती हो।'

कमला ने सुना और आँखों से हँस दिया।

यदुनाथ बोला—'वह अभी बच्चा है। उसका खेलने-कूदने का मौसम है।' उसने रजनीश को पुकारा और लौटने को उद्यत हुआ।

पास आकर रजनीश ने कहा—'जीजी, भूख लगी है।'

कमला ने आलोड़ित बनकर कहा—'हाँ, हाँ, मैं अभी आती हूँ। चूल्हे पर दाल चढ़ा आई हूँ। आटा गूँथ कर रख आई हूँ। जाकर देखना दाल न जल जाय। चूल्हे की आग न बुझे।'

दोनों लौट चले, यदुनाथ को देखकर सुदर्शन जी बोले—'कहाँ गए

थे ? कहीं दूर ?'

रजनीश ने कहा—'पिता जी जंगल में, नदी पर ।'

सुदर्शन जी बोले—'नदी पर कमला भी गई, मिली होगी ।'

यदुनाथ बोला—'जी, मिली थी ।'

सुदर्शन जी ने कहा—'बिटिया बहुत काम करती है । सुबह से रात तक कोल्हू के बैल की तरह पिलती है । उसे चैन नहीं । उसकी माँ क्या गई बेचारी की पढ़ाई भी रुक गई । इस वर्ष संस्कृत में शास्त्री की परीक्षा देती ।'

यदुनाथ बोला—'तो कमला संस्कृत पढ़ी है ।

सुदर्शन जी ने जैसे गौरवान्वित बनकर कहा—'मेरी बेटी हिन्दी की कई परीक्षाएँ दे चुकी है । अब शास्त्री का अन्तिम खण्ड दे रही थी, मैं उठ जाऊँ, तो फिर तैयारी करेगी ।'

यदुनाथ बोला—'कमला योग्य है । आपने उसे तपाकर कुन्दन बनाया है ।

सुदर्शन जी बोले—'भाई मेरी यही सम्पदा है । अब मुझे कमला के विवाह की भी चिन्ता है । कमला की माँ इसी चिन्ता को लिए चली गई । उसकी इच्छा थी कि लड़का भले ही धनवान न हो, परन्तु सुसंस्कृत अवश्य हो । मैं कमला को योग्य पात्र के हाथों सौंपना पसन्द करूँगा । अपने जीवन की इस आकांक्षा को अवश्य पूरी करूँगा ।'

यदुनाथ बोला—'आपकी यह भावना ऊँची है । भगवान सहायक होगा ।'

सुदर्शन जी ने साँस भरा और अपना मुँह बाहर नीले आकाश की ओर उठा दिया ।

उसी समय गाँव के दो-तीन व्यक्ति वहाँ आये । उनमें एक गाँव के चौधरी थे । उन्होंने आते ही पूछा—'पण्डित जी, अब कैसी तबियत है, आपकी ? मैं तो इच्छा करके भी नहीं आ सका । ऐसी बारिश पड़ी कि घर से निकलना कठिन हो गया । गलिहारे में पानी और कीचड़

हो गया ।'

पण्डित जी बोले—'आज कुछ ठीक हूँ ! भूख भी अनुभव कर रहा हूँ ।' वह हँसे—'भरोसा रखिए, मैं अभी नहीं मरूँगा ।'

चौधरी ने कहा—'मरें आपके दुश्मन ! गाँव में आप एक तो आदमी हैं जिनके पास सभी के लिए करुणा और दया है । नहीं तो जानवर बन गये हैं लोग ! आपस में लड़ते हैं, वैर-विरोध रखते हैं ।'

पण्डित जी ने कहा—'चौधरी जी, वास्तव में आदमी भी पशु है । इतना शिक्षित और सुसभ्य बनकर भी, आदमी के मन का पशुत्व नहीं गया । स्वार्थ जब बोलता है, तो आदमी किसी भी हिंसक जानवर से कम खतरनाक नहीं रहता ।' यह भाव एक व्यक्ति में है, समूहों में है, राज्यों और देशों में है । आदि युग का मानव आज भी जीवित है, बोलता है ।'

चौधरी ने कहा—'आप ठीक कहते हैं, पण्डित जी ! अवस्था यही है । आदमी जहरीला फोड़ा है । काटना और मारना जानता है ।'

साथ आये व्यक्ति ने कहा—'पण्डित जी, एक बार आपने कहा था कि गाँव में शिक्षा नहीं, पर अब तो यहाँ पढ़े-लिखे हैं, लेकिन लगता है कि वही लोग इन्सानियत की कब्र खोद रहे हैं । मुकदमेबाजी करते हैं, गाँव में विष फैलाते हैं ।'

पण्डित जी ने कठिनाई के साथ कहा—'भाई रामपत, उस पढ़ने से क्या, जो विचार न बदले, संस्कारों में परिवर्तन न करे । पढ़ाई का अर्थ यह नहीं कि अक्षरज्ञान हो ।'

उसी समय चौधरी ने यदुनाथ को लक्ष्य किया । उसने कहा—'पण्डित जी, मैं आपके पास आने के लिए चिन्तित था । मुझे आपसे कहना था कि क्या हम गैर हैं कि जो मन की बात हमें नहीं बताते । आप बीमार हैं, तो दवाई इसलिए नहीं लेते कि पैसे का अभाव है । यह तो इस गाँव के लिए शर्म की बात है । गाँव जानता है कि आप इतने उदार हैं कि दूसरों को शरीर के कपड़े, तक दिये···पेट का

अन्न···।'

आतुर बनकर सुदर्शन जी बोले—'चौधरी, ये साधारण बातें हैं। मेरा यही कर्तव्य है। मैं आदमियों में बसा हूँ। भगवान और भावना को मानने वाला सभी में अपना स्वरूप देख सकता है।'

चौधरी ने कहा—'चेता चमार दो मन गेहूँ ला रहा है, उन्हें रखने की कृपा करें। हमें पता है, आपने इस गाँव को अपना सभी कुछ दिया है। गाँव लज्जित है कि आपने अपनी पत्नी की अर्थी पर···।'

पण्डित जी फिर पीड़ित बनकर बोले—'भाई, मैं ऐसा अनुभव नहीं करता। पेट हलुवा-पूरी से भी भरता है और सूखी रोटी से भी। छप्पर के मकान में भी जीवन बीतता है और महलों में भी। मरने वाले के ऊपर जरीदार चादर डालो या साधारण कपड़ा, बात एक है। ऊपर मत देखो, नीचे की ओर देखो। समाज पीड़ित है, अन्धेरे में पड़ा है। इन्सान सिसक रहा है। बे मौत मर रहा है। इस धरती पर सभी दया के पात्र हैं।'

चौधरी ने कहा—'हमें भी आपकी दया चाहिए। आज मैं यही कहने आया हूँ। मैं शर्मिन्दा हूँ!' तभी उसने प्रश्न किया—'इन बाबू की तारीफ?'

सुदर्शन जी बोले—'ये शहर से आये हैं। आपके पिता कई कारखानों के स्वामी हैं। आपके ही स्कूल में मैं अध्यापक था। उस समय इन्हें भी पढ़ाने का मुझे अवसर मिला था। यह भी भावना की बात है कि ये बाबू मुझसे मिलने आ गये। कल रात आये बारिश में!

चौधरी ने कहा—'वाह बाबू! हर्ष की बात है कि आप पण्डित जी से पढ़े हैं। बड़ा अच्छा किया कि जो यहाँ तक आये।

उसी समय चेता चमार गेहूँ लेकर आया! उसने गठरी मकान के चौक में रख दी। बाद में पण्डित जी के समक्ष आकर बोला—'पालागन महाराज!'

पण्डित जी ने कहा—'खुश रहो! अच्छे हो, चेतराम!'

चौधरी ने कहा—'महाराज, आपकी कृपा है।'

चौधरी ने कहा—''चेता घर जा। भैंस का दूध आ गया होगा। लल्लू से कहना, वह सभी पण्डित जी के यहाँ भिजवा दे। शहर से ये बाबू आये हैं, गाँव के दूध की खीर खायेंगे।'

यदुनाथ बोला—'जी, कष्ट न कीजिये।'

चौधरी ने कहा—'बाबू, इसमें कष्ट क्या है!' उसने यदुनाथ से आग्रह किया कि यह तो अपना दूध है। गाँव वाले दूध और पूत की कीमत जानते हैं। हम तो पण्डित जी के दास हैं।

पण्डित जी बोले—'चौधरी तुम आयु में बड़े हो।'

चौधरी मुस्कराये—'बैल भी बड़ा होता है, पण्डित जी! फिर भी वह सदा किसान के डण्डे खाता है। हम आपके समक्ष बच्चे हैं।'

उसी समय कमला नदी से लौट आई। उसके मुँह पर पसीने थे। देखते ही, चौधरी ने कहा—'बिटिया रानी···'

कमला ने कहा—'हाँ, ताऊ जी।'

चौधरी बोला—'तू बहुत दिन से घर नहीं गयी। तेरी ताई शिकायत करती थी। याद करती थी। कहती थी, कमला बिटिया जब आती है, तो बहुओं को, बुढ़ियों को दो-चार ज्ञान-ध्यान की बातें बता जाती है। शऊर से रहने का सलीका भी सिखा जाती है।'

कमला हँस पड़ी—'तुम तो मेरी प्रशंसा के पुल बाँधते हो, ताऊ जी! बच्चों की अधिक बड़ाई नहीं किया करते। वे फिर घमण्डी बन जाते हैं।'

चौधरी ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरा और मुस्करा दिया—'पर जब बच्चों को बड़ा मान लिया जाय, तो इसमें आपत्ति क्या है? छोटे ऊँची और काम की बात कहें, तो उन्हें गुरु स्वीकार करना पड़ेगा। और तू तो सयानी और समझदार बिटिया ठहरी!

सुदर्शन जी ने कहा—चौधरी, तुम्हारा आशीष है।

चौधरी ने कहा—'भगवान ऐसा ही न्याय करता है। किसी को धन देता है, तो मन और बुद्धि नहीं देता और जिसके पास सन्तान रूपी

सम्पत्ति हो, बुद्धि हो, उसे धन नहीं देता।'

सुदर्शन जी बोले—'दोनों के रास्ते जुदा हैं।'

चौधरी ने कहा—'आपसी बैर है।'

उसी समय रजनीश बाहर से आया। वह कमला की धोती पकड़ कर बोला, 'जीजी, भूख लगी है।'

तुरन्त ही व्यस्त बन कर कमला बोली—'बस, अब बनाती हूँ, रोटी!'

चौधरी ने कहा—'दूध आ रहा है, खीर बनाना बेटी। अपने मेह-मान को खिलाना।'

कमला ने बात सुन ली और सहज भाव से घर में चली गई। सीधी रसोई घर में जाकर चूल्हे पर रखी दाल देखने लगी। पानी जल गया था, आग बुझ चुकी थी। किन्तु उसके मन में बात थी कि जिस यदुनाथ को लोग मेहमान समझते हैं, उससे तो उसका जीवन खेला है और इसी लिये वह जाने कितनी बार उसके स्मृति-पट पर आकर खड़ा हो चुका है···यह सरस और सुहावना यदुनाथ!

पांच

अगले दिन यदुनाथ गाँव से लौट गया। जब वह नगर जाने के लिए प्रस्तुत हुआ, तो उसने अपनी यह इच्छा पुनः व्यक्त की कि पण्डित जी गाँव छोड़ दें। परन्तु उस समय सुदर्शन जी इसके लिए सहमत नहीं हुए। उनका निजी मत था कि गाँव में आत्मीयता है, भाईचारा है, नगर में पैसा है, दिखावा है, आडम्बर है और अशांति है।

यदुनाथ बोला—'गाँव में पैसा नहीं, काम-धन्धा नहीं।'

पण्डित जी ने कहा—"इसीलिए यहाँ खर्चा भी कम है। यहाँ बाजार नहीं, कोई सजी हुई दूकान नहीं।"

हँसकर यदुनाथ ने कहा—"पण्डित जी फिर भी पैसे का महत्व है। उसकी यहाँ भी आवश्यकता है।"

पण्डित जी ने साँस भरकर कहा—"हाँ, यह तो है। विषम समस्या है।"

लेकिन चलने से पूर्व, यदुनाथ घर में जाकर कमला के समक्ष खड़ा हुआ, तो उस समय वह घर की सफाई में लगी थी। यदुनाथ को जाने के लिए प्रस्तुत देख, वह जैसे खो गई। उसे लगा कि उसके हृदयाकाश पर एक सुन्दर पंछी उड़कर आया और पकड़ने से पूर्व ही, वह उसकी पहुँच से दूर होने लगा।

यदुनाथ बोला—जितना समय यहाँ बीता, वह मधुर और सरस लगा। मुझे अपना बचपन याद आ गया। सोचता हूँ, वहीं बचपन फिर

मिल जाता, तो तुम्हारे साथ खेल पाता। उसने कहा—'पत्र देना, पण्डित जी के समाचार लिखना। समय मिला, तो मैं फिर कभी आऊँगा।"

उस समय बरबस ही कमला इतनी भारी बनी, कि रामा-राम भी बोल नहीं सकी। वह खड़ी पलकों से यदुनाथ को निहारती रही।

यदुनाथ बोला—"मैं तुम्हें याद रखूँगा। इतना ही कह सकता हूँ कि कभी हम साथ खेले, साथ लड़े और मिले; इसलिए जीवन के उन क्षणों को और भी याद रखें, तो आत्मानुभूति का ऐसा भाव अवश्य ही हम अपने हृदय में डोलता पायेंगे।"

कमला ने कहा—बाबू, तुम जाते हो, तो जाओ! इतनी ही बात मेरी है कि इस घर के प्राणियों को याद रखोगे। यह तो जानते हो, दुनिया किस तराजू पर तुलती है। वहाँ हमारी समता नहीं। जब भावनावश एक बार आये हो, इस गाँव का रास्ता देख सके हो, तो फिर भी भूले-भटके आ सकते हो।

यदुनाथ स्वयं भावुक बन गया। उसने कहा—"मैं अवश्य आऊँगा। यदि कुछ और न समझो, तो इतना कहूँगा, जहाँ तुम हो, वहाँ आना मैं अपने जीवन का श्रेष्ठ सुख मानूँगा।"

एकाएक कमला ने कहा—"काश!"

यदुनाथ बोला—"मैं व्यवसायी का पुत्र तो हूँ, परन्तु मुझ पर पण्डित जी का प्रभाव है। इसलिए, तुम कुछ कहोगी, तो उसे सम्भाल न सकूँगा। अब विदा लूँगा।" वह लौट चला। पण्डित जी के चरण छूकर गाँव से चला गया।

जब यदुनाथ उस घर से दूर हो गया, तो तभी, पण्डित जी ने कमला को सुनाया कि अजीब बात है, बाप इतना क्रूर और मदान्ध, परन्तु पुत्र नितान्त उदार, सरल और सुबोध।

कमला ने कहा—"संस्कारों की बात है, पिता जी!"

सुदर्शन जी बोले—"यदुनाथ उदार तो है ही, उन्नतिशील भी

है। भाग्यवान है। मेरी कामना है कि भगवान इस युवक को यशस्वी बनाये।"

उस दिन सुदर्शन जी स्वस्थ मन थे, शरीर में कमजोरी थी, बुखार नहीं था। इसलिए वे अपने बिस्तर पर बैठे हुए तकिये का सहारा लिये कमरे के बाहर देख रहे थे, उनकी दृष्टि उस पेड़ पर गयी कि जो उनके मकान के बाहर खड़ा था। वह पेड़ उनकी आयु से भी पुराना था। उसके साये में उनका बचपन बीता था। उस पेड़ पर सदा ही सैकड़ों पक्षी बैठे रहते। वहाँ शोर ही होता रहता। कभी-कभी जब पक्षी आपस में लड़ते, तो वह कोलाहल अधिक बढ़ जाता। पड़ौसियों का ध्यान आकर्षित करता। फलस्वरूप, उस समय भी वहाँ पर पक्षी बोल रहे थे। उनमें से अनेकों अपने-अपने घोंसलों में से मुँह निकाल कर इधर-उधर देख रहे थे। उन पक्षियों के बच्चे भी दिखायी देते। उनके माँ-बाप अपने शिशुओं की किस प्रकार सार-सम्भाल करते, उनकी चोंचों में जहाँ-तहाँ से चुग्गा लाकर देते, ये सभी प्रक्रियाएँ पण्डित जी अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े देखते थे। उस अवस्था में कुछ पक्षी उसके विशेष परिचित बन गये थे। एक गुरसल और तोते का जोड़ा उनके लिए विशेष आकर्षण के पात्र थे। जब भी उन जोड़ों में से कोई न दिखाई देता, तो पण्डित जी आतुर बन जाते और अपने-आप शंका करते, कहीं किसी ने मार तो नहीं दिया, उस तोते को···गुरसल को···मानो इन्सानों की दुनिया से पण्डित जी को उस पक्षियों की दुनियाँ में अधिक सुख दिखाई देता। उनमें सरलता और सजगता लगती। जैसे उनमें विषाद नहीं, सद्भाव की दुर्गन्ध नहीं। इसलिए ये पक्षी और उनके बच्चे अतीव सरल और परम लगते थे। किन्तु उस समय जब पण्डित जी उस पेड़ की ओर संलग्नता से देख रहे थे, तो तभी, एक बड़ा पक्षी वहाँ आ गया और अपने पंजों में कबूतर के एक बच्चे को दबाकर ले गया। वह बच्चा चिल्लाया। उसकी करुण पुकार को सुन, उस पेड़ पर जैसे कोहराम मच गया। पण्डित जी का हृदय भी सन्न रह गया। उनकी छाती पर

जैसे किसी ने एकाएक घूँसा मार दिया। वे तड़प उठे। उस समय जब कमला वहाँ आयी, तो वे उसे करुण भाव से देख कर बोले—'बेटी, मन नहीं लगता। अब मुझे कहीं भी शांति का आभास नहीं मिलता। इस अखिल ब्रह्माण्ड में कहीं भी किसी के लिए सुरक्षा का स्थान नहीं दिखाई देता। देखो तो, अभी बाज आया और पेड़ पर बसेरा लिये कबूतर के बच्चे को उठा कर ले गया। मैं समझता था, ये पक्षी इन्सान से अधिक सुरक्षित हैं परन्तु इनका भी इस धरती और आकाश के नीचे कोई ऐसा स्थान नहीं कि जहाँ चैन पायें, जीवन पा जायें।"

कमला ने कहा—"पिता जी, यह जीव-जगत है। यहाँ यही होता है। सभी एक-दूसरे के दुश्मन हैं। अपनी क्षुधा-निवृत्ति के हेतु जीव ही जीव का भक्षण करता है···इन्सान भी इसी कृत्य का प्रदर्शन करता है।

पण्डित जी ने कहा—"हाँ, बेटी। अवस्था यही है। यहाँ सभी चोर और डाकू हैं। अपने स्वार्थ का पेट भरने के लिए इसी प्रकार के निर्मम व्यापार किये जाते हैं।"

कमला ने कहा—"धरती के इन्सान के समान, इस पेड़ पर भी यही होता है। नित्य होता है।"

पण्डित सुदर्शन मौन रह गये। सचमुच उस समय उन्हें अतीव वेदना मिली। जैसे उनके परिवार का ही कोई सदस्य काल का ग्रास बन गया। क्योंकि बीमारी की अवस्था में, जब उनके पास कोई न होता, तो वह पेड़ के पक्षियों को देख कर अपना समय बिताते, उन पक्षियों के प्रेम व्यापार और झगड़े देख कर वह अपना मनोरंजन करते। उस अवस्था में ही, वह पेड़ की ओर देखकर बोले—"इस भौतिक जगत में, मनुष्य ने अपनी इच्छा पूर्ति के हेतु अनेक अविष्कार किये हैं। उनमें से कुछ जिह्वा की तृप्ति भी करते हैं, कुछ आँखों की, कुछ शरीर की अन्य चंचल इन्द्रियों की।" उन्होंने कमला की ओर देखा और नितांत करुणार्द्र बन कर कहा—"परन्तु इस भौतिकवाद में डूबा हुआ मनुष्य

कुछ पा नहीं सका है । जो कुछ पाया है, वह झूठा है, थोथा और निर्बल है । मनुष्य ने अपनी इच्छाएँ बढ़ा ली है, मन को शांति नहीं दी । इस अवस्था में वह प्राप्त भी नहीं की जा सकती ।''

कमला ने कहा—''पिता जी युग बदला है, तो पुरानी परम्पराएँ भी बदल चुकी हैं । मनुष्य अपनी इच्छा का दास बना है ।''

सुदर्शन जी और अधिक व्यग्र बन गये । वह बोले—''खेद की बात तो यह है कि मनुष्य ही मनुष्य का शत्रु है । चोर है, डाकू है । कहने को विश्व है, भ्रातृत्व की भावना है, परन्तु व्यवहार मे उसका मूल्य क्या है ।''

कमला ने कहा—''यदु बाबू कहते थे कि उनके नगर की आबादी पचास लाख है । फिर भी इतने बड़े कुटुम्ब में मतैक्यता नहीं, आत्मीयता नहीं । वहाँ का समाज धर्म और सम्प्रदायों में बँटा है । यद्यपि सभी का पोषण एक-दूसरे पर निर्भर है । परन्तु मनुष्य के कुटुम्ब की परम्परा का वहाँ नामोनिशान नहीं ।''

सुदर्शन जी बोले—'इस युग का यही अभिशाप है । सभी देशों में बड़े-बड़े, नगर आबाद हो रहे है, रोजगार वहाँ है, तो गाँव और कस्बों का आदमी सिमट कर वहाँ पहुँचता है । वहाँ कारखाने खोलता है, बड़ी-बड़ी इमारतें बनाता है । इसीलिये नगर जगमगाते हैं, चहकते हैं, आज के विज्ञान का प्रदर्शन और विकास वहीं पर हुआ है । लेकिन जितना जड़ और पत्थर बना आदमी यहाँ पर है, ऐसा अन्यत्र नहीं । सुसमय और सजा हुआ इन्सान कालकूट बना है । वहाँ आदमी ही आदमी का शोषण करता है ।'

कमला ने कहा—'यदु बाबू यह भी कहते थे यदि उन्हें अपना व्यवसाय न देखना होता, तो यहाँ और रहते । कहते थे, नगर में कोलाहल है, अशान्ति है । सभी ओर प्राण लेने वाला जहरीला धुआँ फैला है । उनके मत से गाँव में शांति है । खुली वायु है । यहाँ प्रकृति का विराट रूप दिखाई देता है ।' वह हँसकर बोली, 'उन्होंने तो बताया

कि मैंने कदाचित ही चन्द्रमा का प्रकाश देखा हो, चाँदनी का महत्व समझा हो।'

पण्डित जी बोले—'यह तो सत्य है। नगरवासी चन्द्रमा का प्रकाश नहीं देख पाते। वे विद्युत के प्रकाश में रहते हैं, उसी में सोते हैं, उसी में जागते हैं।' उन्होंने कहा—'नगर में मशीनें चलती हैं, तो इन्सान उस लोह मानव से होड़ लगाता है। ऐसा करने के लिए बेचारा इन्सान विवश किया जाता है। फलस्वरूप वह असमय ही मौत के मुँह में चला जाता है।'

विभिन्न भाव में कमला ने कहा—"आज मनुष्य का मूल्य सोने-चाँदी से आँका जाता है। कौन मनुष्य कितना उपार्जित करता है, इसी को समाज देखता है।' इतना कहते हुए वह मौन रह गए कुछ देर बाद ही फिर बोले—"कमला बेटी, इस युग में कोई पैसे का त्याग करता है, जीवन-दान! धरती पर ऐसे भी लोग हैं, जो यह त्याग करते हैं। इस धरती की कोख सूनी नहीं है। समय-समय पर अमूल्य रत्न विश्व को प्रदान करती है।"

कमला ने कहा—"पिता जी, पैसा समाज की वस्तु है। समाज में ही उर्पाजित किया जाता है।'

सुदर्शन जी बोले—'निश्चय ही! यही सत्य है।'

कमला ने कहा—'तो फिर समाज की वस्तु उसके काम क्यों न आये। जब व्यक्ति देश और धर्म के लिए जीवन तक दान करते हैं, अपना समर्पण करते हैं, फाँसी के तख्ते पर चढ़ते हैं, तो फिर इतना भी नहीं! लोग पैसे को महत्व देते हैं। समाज के पेट पर लात मारते हैं। इन्सानियत की लाश पर सोने के महल खड़े करते हैं।'

पण्डित जी के मुँह पर उस समय हर्ष आया। उन्होंने गद्-गद् बन कर कहा—'यदुनाथ कह गया है कि कमला के विवाह का समस्त व्यय-भार वह वहन करेगा। जो बात तुम कहती हो, यही वह कहता था।'

कमला ने हँसकर कहा—'तो आश्चर्य क्या! एक शिष्य है, एक

पुत्री !'

सुदर्शन जी बोले—'बेटी, वह व्यवसायी का पुत्र है। साँप का बच्चा है। मैंने बचपन में उसे जो धर्म की शिक्षा दी, तो यह आवश्यक नहीं कि वह उसे हृदयंगम करे। उस पर चले। पर मुझे लगता है कि वह अभी अपने पिता के सदृश्य नहीं।'' उन्होंने कहा—बिटिया, यह तो सत्य है कि धरती पर सभी प्रकार के प्राणी हैं। परन्तु जहाँ कहीं ऊँची भावना और अनुभूति दिखाई देती है, वहाँ तो मस्तक झुका देने को मन करता है। जहाँ वह चरण पड़े, वहाँ की धरती को भी प्रणाम करना, उस रज को माथे से लगाना सुखद विषय बन जाता है। यह धरती वीर प्रसूता है। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा और मुहम्मद सरीखे युग-पुरुषों की जननी है। इस धरती का हृदय विशाल है। यहाँ पर सभी कुछ देखा जा सकता है।''

कमला ने कहा—''पिता जी, पाप अधिक है।''

पण्डित जी चंचल बन गये और बोले—'हाँ, हाँ, यह तो है। पर जो पुण्य होता है, इन्सान का बलिदान होता है, उसे क्या भुलाया जायेगा। इस धरती को जाने कितनी बार इन्सान के रक्त से स्नान कराया गया है। धरती माँ की माँग में इन्सान का रक्त भरा है। मत भूलो बेटी, इन्सान की प्रगति का इतिहास उसके बलिदान का इतिहास है। सत्य को अमर और यशस्वी बनाने के लिए इस मनुष्य ने पहाड़ों को खोदा है, समुद्र का मन्थन किया है। बुद्धीजीवी और श्रमजीवी इन्सान कैंची की वे दो फलकें हैं कि जिन्होंने सुन्दर और सजीला संसार बनाने के लिए अन्धेरे की चादर के टुकड़े कर दिये, चारों ओर प्रकाश फैला दिया। इन्सान इसीलिए तेज-पुंज है, अमर है। मानव का सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूप इसी प्रकार प्रगट हुआ है। प्रत्येक देश का कर्म और संस्कृति का इतिहास उसके बलिदानों का इतिहास है।''

किन्तु इतना कहने के बाद ही, सुदर्शन जी के मन में फिर धुआँ घुट गया। जैसे उनका मन चीख उठा। उन्होंने तड़प कर कहा—

"बिटिया, खेद का विषय तो यह है कि इस देश में इतने त्याग होने पर भी और आत्म-बलिदानों के अम्बार लग कर भी, यहाँ का समाज विवेक-हीन रहा, अनैतिक रहा, अदूरदर्शी रहा। इस धरती पर स्वार्थ सदा बोलता रहा। आज भी हम राजनैतिक स्वतन्त्रता भले ही प्राप्त कर सके हों, परन्तु मनुष्य की जो चिर-दास वृत्ति है, उसे दूर नहीं कर सके। देश इतने बड़े प्रकाश को पाकर भी, अन्धेरे में भटक रहा है।'

कमला ने साँस भरी और कहा—'पिता जी, हमारा नैतिक बल नहीं रहा। आत्मानुभूति का भाव भी स्वार्थ के धुएँ में लुप्त हो गया।'

सुदर्शन जी बोले—'इसका कारण है दम्भ और छल। हम लुटेरे हैं। दृष्टिकोण सीमित हैं। 'पर' की भावना को छोड़ 'स्व' में लिप्त हो चुके हैं। धन-संचय की अभिलाषा हमारे मन और मस्तिष्क पर छा गई। यही गुरुतर अपराध है, आज के इन्सान का।'

कमला ने कहा—धन का संचय तो आदमी पहले भी करता था। परन्तु तब उदार था। उसे समाज की वस्तु मानता था।

पण्डितजी अतिशय गम्भीर बने थे। बोले—'हाँ, बेटी ! परन्तु तब मनुष्य जिन्दगी के इतने खानों में नहीं बँटा था। जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्रचुर और सस्ती थीं। पैसे की आवश्यकता कम थी। तब न वस्तुओं से बाजार जाते थे, न व्यक्ति की इच्छाएँ ! आज दोनों हैं। आदमी अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए सभी कुछ कर उठाता है। चोरी और खून करना साधारण बात मानता है। फलतः पहले समय में मनुष्य के मन की रचना भौतिक तत्वों पर अवलम्बित नहीं थी।'

किन्तु कमला ने कहा—'पिताजी, संसार का इतिहास बताता है कि सहस्रों वर्ष पूर्व भी मनुष्य दास रहा···जानवर के सदृश उसका क्रय-विक्रय होता रहा। जो राव-राजा सोने-चाँदी के थालों में छत्तीस प्रकार के भोजन करते थे, बहुमूल्य वस्त्र धारण करते, विशाल भवनों का निर्माण कराते, इसके लिए तब भी, इन्सान को दास बनाया जाता। रोम के शासन अपराधी कैदियों को खूँखार जानवरों से लड़ाते और

उनकी मौत देखकर अपना मनोरंजन करते थे। सच ही, इस प्रकार तो मनुष्य सदा जंगली रहा, भेड़िया बना रहा। बर्बर रहा।'

मानो कठिन स्वर में पण्डित सुदर्शन ने कहा—'हाँ, बेटी !'

साँस भरकर कमला ने कहा—'वही समाज आज है। वही तत्व हैं। ऐसे में कैसे शाँति उपलब्ध होगी। सभी के दाँतों में विष भरा है। बिच्छू का स्वभाव ही डँक मारना है, तो आदमी भी डँक मारता है।

उसी समय शतीश बाहर से खेल-कूद कर घर में आया। जब गया था, तो कमला ने उसे साफ कपड़े पहना दिये थे। परन्तु लौटा, तो सभी कपड़े गन्दे थे—'धूल भरे थे। उसे देखते ही कमला बोली—'अरे, गन्दे। भंगी !'

किन्तु रजनीश ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने कमला की गोद में अपना मुँह घुमा दिया और कहा—जीजी, भूख लगी है।'

कमला ने कहा—'जा, खा ले। चूल्हे पर तश्तरी से ढँकी दाल रखी है और कटोरदान में रोटी।'

किन्तु रजनीश को रोटी की भूख नहीं थी, पैसा पाने की भूख थी। इसलिए उसने बिना मुँह उठाये कहा 'जीजी, पैसा दो।'

कमला कहा—'रे, पैसा क्या करेगा ! क्या यहाँ बाजार लगा है। तू चटोरा हो गया है। बहुत पैसा खराब करता है।' उसने पिताजी की ओर देखकर कहा—'यदु बाबू ने कल इसे जाने कितने पैसे दिये, पर यह सभी बनिये की दुकान पर दे आया। वहाँ से चने-मूँगफली और तिलसकरी खरीद लाया। खुद खायीं और दूसरे बच्चों को खिलायीं।'

सुदर्शनजी हँस दिये—'बेटी तुम्हारा भैया उदार भी बनता है।' यह कहते हुए उसने अपनी धोती के पल्ले से एक आना खोला और रजनीश को देते हुए कहा—दो पैसे लौटाना। तू अब चटोरा हो गया है। देख, जल्दी लौटना। शाम आ गयी है, घर में बैठना।'

पैसे पाते ही रजनीश भाग पड़ा। बाहर चला गया।

सुदर्शनजी बोले—'अब बताओ, इस बालक को किसने पैसे की

महत्ता बता दी । मैं कहता हूँ, यह अजीब संसार है । जिन्दगी भी एक खेल है कि जिसे पाकर आदमी खेलता है और चला जाता है । माया के घरोंदे में बैठा इन्सान उसी में खो जाता है ।'

कमला ने कहा—'पिताजी, जिन्दगी यदि एक खेल ही रहता, तो सुखकर था । पर यह तो समस्या है, दुःसह है । विषमतर बनती जा रही है ।'

सुदर्शन जी बोले—'बेटी, यही मर्म है, इस जिन्दगी का ! इसको बोझीला या हल्का बनाना भी इंसान का काम है । अफसोस यह है कि आदमी अपनी बुद्धि का उपयोग नाश के लिए करता है, जीवन पाने के लिए नहीं ?'

कमला बोली—'तभी तो ऐसे शस्त्र बन रहे हैं कि विश्व का नाश हो ।'

आतुर बनकर पण्डितजी ने कहा—'हाँ, यही । ऐसे तो संसार अधिक नहीं चलेगा । मर जायगा । प्रतिस्पर्धा की होड़ लगी है—'शस्त्रों की होड़ !'

कमला बोली—'सभी कहते हैं कि एक और विश्वयुद्ध होगा ।'

पण्डित विषक्ति भाव से मुस्करा दिये और बोले—'युद्ध सभी भयानक होते हैं, बेटी ! इंसान का नाश करते हैं । जब समाज प्रतिक्रियावादी शक्तियों से घिर जाता है, तो यही होता है । मनुष्य धर्म की मान्यता छोड़ चुका है ।'

उसी समय कमला उठी और अन्दर घर की ओर बढ़ गयी ।

छः

यदुनाथ के पिता राय जानकीदास सफल व्यक्ति थे। अपने बुद्धि कौशल से उन्होंने न केवल विपुल धन उपार्जित किया, अपितु समाज में सम्मान भी प्राप्त किया। किन्तु जिन व्यक्तियों की दृष्टि में उस व्यक्ति का सम्मान नहीं था, उनमें पण्डित सुदर्शन का स्थान सर्वोपरि था। पण्डित जी को पता था कि उस धनिक व्यक्ति का विकास किस प्रकार हुआ। अपने कारबार का दिवाला निकालकर राय जानकीदास ने जिस तरह समाज का पैसा छुपाया और फिर दूसरे नाम से कारबार किया, इतना पण्डित जी को पूर्ण ज्ञान था। वह यह भी जानते थे कि दुकान का दिवाला निकाल कर राय जानकीदास ने समाज की अनेक विधवाओं और मध्यम वर्गीय व्यक्तियों के पेट पर लात मारी थी। उनका सभी रुपया हड़प लिया था। एक व्यक्ति ने तो इसी दुःख से पीड़ित बनकर आत्म-हत्या कर ली थी। फर्म में जमा उसका दस हजार रुपया मारा गया था। एक विधवा की अवस्था यह थी कि उसकी लड़की विवाह योग्य थी, जब जानकीदास ने दिवाले की घोषणा की, तो उस व्यथा को न सहकर वह विधवा बैठी-की-बैठी मर गयी। उसने पुत्री के विवाह के लिए पाँच हजार रुपया उस दुकान में जमा किया था। वह उसने मजदूरी करके और दिवगन्त पति की वंचित पूँजी से निकालकर उस विश्वसनीय स्थान पर रखा था। वहाँ अधिक सूद मिलने का लालच भी उसे दिया गया था।

इस प्रकार मानवता के शत्रु और समाज विरोधी तत्वों से निर्मित

हुए राय जानकीदास को जब पण्डितजी 'धर्मावतार' और 'जाति रत्न' की उपाधि से अलंकृत बना देख सके, तो तब उन्हें लगा कि पैसा ऐसे ही प्राप्त किया जाता है । इन्सान की लाश पर चढ़ कर जमा किया जाता है ! पण्डित सुदर्शन को यह देखकर भी अचरज नहीं हुआ कि समाज का पैसा लूटकर, डाकू की तरह छीनकर जब राय जानकीदास स्कूल के संचालक बने, तो लगा कि जैसे वह एक तमाशा था, समाज को मूर्ख बनाने का प्रयत्न किया गया था । क्योंकि जो पैसा उस स्कूल में लगा, जानकीदास का उसमें कुछ नहीं था, फिर भी वह मालिक थे, शिक्षा-प्रसार के अग्रणी थे । इसी प्रकार अन्य धार्मिक संस्थाओं को उनकी ओर से जो रुपया दिया जाता, वह उनके नाम से जरूर होता, परन्तु वह पैसा समाज का था, व्यवसायी नियम के अनुसार धर्मादा फण्ड में जो पैसा कटता, उसी में से कुछ देकर राय जानकीदास ने अपना मुँह समाज में ऊँचा करने का प्रयत्न किया था । एक तरफ वह धर्म का नाम लेते और दूसरी ओर से कार्य करते, जो समाज विरोधी और धर्म विरोधी होते, फलस्वरूप, पण्डित सुदर्शन की दृष्टि में राय जानकीदास कभी भी क्षम्य नहीं थे । वह इनसानियत के शत्रु थे, लेकिन चूँकि उसके पास पैसा था, इसलिए समाज से सम्मान प्राप्त करने में वह व्यक्ति अग्रणी था । कानून और शासक को भी उसके प्रभाव से वंचित नहीं था । उसकी कृपा का चाहक था । मानो यही चिर-पुरातन से चला आया सत्य था । यही सुलभ और सार्थक था ।

किन्तु इसके विपरीत पण्डित सुदर्शन ने जिस प्रकार की प्रतिक्रिया अपने जीवन पर उतरती पायी, तो उससे उन्होंने समझा कि गन्दे पानी का पतनाला ऊपर से गिरता है, नीचे से नहीं । समाज में फैली सड़ाँद, कोढ़ के समान रोग इन पूँजीपतियों ने फैलाया है । इन्हीं से धर्म और सम्प्रदायों का अस्तित्व टिका है और प्रभावित बना है । एक धनिक मानवता-धर्म और संस्कृति का नारा लगाता है, परन्तु व्यवहार में वह उसे नहीं मानता । शराब के समान, कुछ क्षण के लिए वह नशा करता

है और फिर भूल जाता है कि वह जिस धरती पर टिका है, वहाँ वह अकेला नहीं, असंख्य जीवों का परिवार बसा है। उनके पास भी हृदय है, भावना है। धनपति केवल आपने संसार की कल्पना करता है, इसलिए वह स्वार्थन्ध बनकर शोषण की परम्पराओं को स्वीकार कर पाता है। हाड़-माँस का पिण्ड वज्र के समान कठोर और ठोस बना है। अतएव, पण्डित सुदर्शन देखते कि इन्सान का समाज अविवेक और नैतिक पतन के गह्वर में पड़ा है। वह कोढ़ का रोगी बना है। समाज के शरीर से पीप चू रहा है। वह सड़ रहा है। यह देख, सुदर्शन जी का मानस तड़प जाता। हाहाकार करता। ऐसी अवस्था में उनका मन ग्लान्ति से भर जाता। राय जानकीदास द्वारा उन्हें जिस प्रकार अपमानित किया गया और आपदाओं के अन्धेरे में फेंक दिया गया, उससे लगा कि समूचे समाज की यही अवस्था थी। मानों अब सभी पीड़ित हैं। निरीह बने हैं। फलस्वरूप, घायल बन गया। अवस्था यह हुई कि जिसके पास सम्पदा होती, वह उन्हें चोर और डाकू से नीचे नहीं लगा। क्योंकि उनका मत था, पैसा श्रम से नहीं आता, झूठ और कपट से आता है। श्रम से उपार्जित धन संचित नहीं किया जा सकता, वह अभाव मात्र का पोषण करता है।

परन्तु राय जानकीदास द्वारा पण्डित सुदर्शन को जिस प्रकार की यातना दी गयी, उन्हें नौकरी से पृथक करके अभावों के समक्ष झुकने को विवश किया गया, लेकिन, इतना उस उद्योगपति ने देखा कि वह उस ब्राह्मण को याचक नहीं बना सका। उसकी दृष्टि में पैसे का महत्व था। उसे भरोसा था कि पंडित एक दिन उसके पास आयेगा, अपने किये पर पछतायेगा परन्तु जब वह नहीं आया, अपितु शहर छोड़कर चला गया, तो तब, राय जानकीदास का माथा ठनका। उसे लगा कि सच, ब्राह्मण हठीला था, अपनी आन का पक्का था। फलस्वरूप, राय जानकीदास को, जैसे जीवन में एक पाठ मिला, नया अनुभव प्राप्त हुआ। पंडित सुदर्शन ने इन्सानियत और त्याग की नयी सीख दी।

उसने अपने कर्म और वाणी से स्पष्ट बताया कि पैसा तुच्छ है, मनुष्यता बड़ी है। जीवन का अभाव किसी प्रकार भी पूरा किया जा सकता है।

स्कूल की नौकरी से छूटकर पंडित सुदर्शन एकाएक ही गाँव नहीं लौटे, देर तक नगर में रहे। राय जानकीदास पैसे के सहारे समाज के सम्माननीय व्यक्ति बने, परन्तु पंडित सुदर्शन सेवा और त्याग के सम्बल पर टिके थे। इसी आधार पर वह नगर में सम्मान पाते थे।

संयोग से उसी समय प्रान्त की विधान सभा का चुनाव आया। राय जानकीदास देर से उस समय की प्रतीक्षा में थे। नगर में प्रतिष्ठा थी, पास में पैसा था, इसलिये उस चुनाव में जीतने के लिये सन्देह का स्थान नहीं था। कुछ और लोग भी खड़े हुए। परन्तु जो विशेष उल्लेख-नीय बात थी, वह यह कि नगर की एक विशेष पार्टी ने पंडित सुदर्शन का नाम भेज दिया। यद्यपि, स्वयं सुदर्शन जी इसके लिये प्रस्तुत नहीं थे, उन्हें यह भी भरोसा नहीं था कि धारा सभाओं में जाकर जनता की सेवा की जा सकती है। फिर भी उनकी स्वीकृति प्राप्त की गयी। उनके पास पैसा नहीं था, इसलिये खर्च करने का प्रश्न नहीं था। लेकिन राय जानकीदास के पास तो पैसा था, उन्हें पंडित सुदर्शन का सामना करना था। मच्छड़ और हाथी का युद्ध था। थैलियों का मुँह खोल दिया गया, रुपया लुटने लगा। क्योंकि राय जानकीदास को इस बात का पता था कि वोट पैसे से प्राप्त होता है। जब सभी वर्गों में धन की प्रधानता है, तो चुनाव के लिये भी उसकी उपयोगिता होनी चाहिए, फलस्वरूप, धन का दरिया बहाया गया, उन्हें विश्वास था कि सुदर्शन पंडित चुटकी में मसल दिया जायगा। हाथी जब चलता है, तो अपने पैरों के नीचे अनेक प्रकार के जानवरों को मसल देता है। अपनी सूँड से वह चींटी और मच्छड़ों को भी उड़ा देता है। सुदर्शन पंडित उनके टुकड़ों पर पला, तो आज चुनाव लड़ने के लिये मैदान में उतरा है··· मूर्ख! जमीन में रेंगने वाला पहाड़ को लाँघने की बात सोचता है। किन्तु चुनाव के उस दौर में राय जानकीदास यह भूल गये कि जब

चींटी अवसर पाती है, तो हाथी के प्राण ले सकती है ।

फिर भी, यह आश्चर्य का विषय था कि राय जानकीदास और उनके समर्थकों के समान, चुनाव की किसी सभा में पंडित सुदर्शन ने किसी के व्यक्तिगत जीवन पर कुछ नहीं कहा, यद्यपि एक सभा में उनसे कहा गया कि राय जानकीदास आपके विरोध में बहुत कुछ कहता है, आप भी कुछ कहिये, तो तब, उस सभा में पंडित सुदर्शन ने कहा—भाई, इस कहने-सुनने की कोई सीमा नहीं है । आदमी ईर्षालु है, हीन और कायर है । इस सत्य को मैं कैसे घुमाऊँ कि राय जानकीदास समर्थ हैं, उनके पास पैसा है । मैं विपिन्न हूँ । परन्तु मैं इसी आधार पर आपसे वोट पाने की प्रार्थना करूँ, यह मुझे शोभनीय नहीं लगता । वोट आपका है, आपका अधिकार है, उसका उपयोग करने के लिये आप स्वतन्त्र हैं ।'

उसी प्रसंग में, पंडित सुदर्शन ने कहा—'देर से, कदाचित इस इन्सान के आरम्भिक काल से ही, मनुष्य स्वार्थ जटिल रहा है । सेवा और धर्म का नारा भी इसी हेतु लगाता है, मैं सोच नहीं पाता कि ऐसे लोग जब अपने दैनिक जीवन में इन्सान के साथ न्याय नहीं कर पाते, तो सेवा और त्याग के नाम पर क्या करेंगे । यह कृष्ण और राम का देश, जहाँ गंगा सरीखी पवित्र धारा बहती है, मैं देखता हूँ, वहाँ पाप और अन्याय का दरिया भी ठाटें मार रहा है । समाज उसी में डूब रहा है और यह केवल इसलिये कि देश का उच्च वर्ग लोलुप है, मदान्ध है । राय जानकीदास इस चुनाव में सफल बनें, यह मेरी कामना है । परन्तु उससे पूर्व मेरी यह भी मान्यता है कि वह अपनी तिजोरी भले ही जनता के लिये न खोलें, लेकिन हृदय के द्वार अवश्य खोल दें । सचमुच, मैं पहिला व्यक्ति हूँगा कि उस दिन राय जानकीदास के पैर छू लूँगा । व्यक्ति सच्चा बने, ईमानदार बने, सभी के समान मेरी भी यह आकांक्षा है । किन्तु जो भेड़िया गाय की खाल ओढ़ कर देश को धोखा देता है, ठगता है और अवसर पाते ही शोषण करता है, उसे मैं क्या कह सकूँगा ।

खेद है, आज देश में ऐसे ही व्यक्तियों का बाहुल्य है। पैसा और पूँजी की देश को आवश्यकता है, परन्तु वह कुछ व्यक्तियों की तिजोरियों में बन्द रहे, कुछ इन्सानों का जीवन सजाती रहे, मैं इसी को देश के साथ अपघात और पाप मानता हूँ।

पंडितजी ने कहा—'मैं सोच नहीं पाता कि ये धनपति शासक-वर्ग के पास किसलिये जाना चाहते हैं। उन धारा सभाओं में जाकर ये लोग क्या करेंगे। ये वहाँ जाकर दो-चार कारखाने खोलने की और सुविधा पा जायें, यह तो समझ में आता है, परन्तु पैसे का चिन्तन करने वाला, धारा सभा में बैठकर समाज की दीनता और विवशता का चिन्तन करेगा, मैं नहीं सोच पाता।

इस प्रकार चुनाव का संघर्ष चल रहा था। पंडित सुदर्शन और राय जानकीदास की सीधी टक्कर थी, एक तरफ पैसा था, खुशामदी लोगों का समूह था। परन्तु दूसरी ओर निश्छल और निस्पृह कार्यकर्ताओं का दल था। जिसके समक्ष एक विचार था, लक्ष्य था। आश्चर्य कि वे कार्यकर्ता केवल अपना श्रम देते, अपितु अपनी शक्ति के अनुरूप पैसा भी समर्पित करते, स्थिति यह थी कि पंडित सुदर्शन चुनाव-सभा में बोलते भी सकुचाते थे। वे साथियों से कहते, मैं अपनी प्रख्याति नहीं पसन्द करता। उसे महत्व नहीं देते। इसका परिणाम यह होता कि प्रायः किसी भी चुनाव-सभा में ले जाने के लिये पंडितजी को तलाश करना पड़ता, क्योंकि वह छुपते थे। यह भी होता कि कभी भी अवसर पाकर घर से दूर नदी के किनारे जा बैठते। वैसे वे स्वभाव के उग्र थे, परन्तु अपने चुनाव के लिए, अपने लिये किसी से वोट देने के लिये कहें, यह उन्हें उचित नहीं लगता था और दूसरी ओर राय जानकीदास ने घर-घर जाकर हाथ जोड़े, वोट देने की प्रार्थना की। उस अवसर पर अनेक स्थानों पर रुपया भी वितरित किया गया।

फलस्वरूप, चुनाव सम्पन्न हुआ। परिणाम निकला, राय जानकी दास कई हजार वोटों से हार गये। पण्डित सुदर्शन जीत गये।

राय जानकीदास के मन पर इस घटना से गहरा आघात पहुँचा। उनका एक लाख रुपया खर्च हुआ। चुनाव परिणाम के बाद ही, वह बिस्तर पर पड़ गये। जैसे कमर टूट गयी। वे बीमार पड़ गये। एक मास तक घर से नहीं निकले। उस चोट से वे इतने घायल बने कि तड़प उठे ? तभी लोगों ने उन्हें सुनाया, यह हार घर से हुई, बाहर से नहीं, हमारे साथियों ने ही धोखा दिया। रुपया खाया और वोट सुदर्शन पण्डित को दिया। लोगों ने कहा, हमारा समाज मूर्ख है, जिसके पास पैसा हो, तो उसके प्रति ईर्षा रखना लोगों का स्वभाव बन गया है। इस देश में सभी चोर हैं, डाकू हैं। लुटेरे हैं। ऐसे लोग ही समाज में दरार डालते हैं। विद्रोह की आग भड़काते हैं। पण्डित सुदर्शन के पास पैसा नहीं, तो आज धनिकों का विरोध करते हैं। ऐसे लोगों से प्रेरणा पाकर ही, खून, डाके और चोरी के आये दिन अमानवीय कृत्य होते हैं। ये देश के नेता समाज को रसातल में ले जाते हैं। यही लोग देश को भूखा और नंगा बना देने की बात कहते हैं। सुधारवादी लोग हाथों की पाँचों उँगलियों समान बना देना चाहते हैं···मूर्खता की बात करते हैं!

किन्तु इस प्रकार की भर्त्सना करने वाले व्यक्ति भले ही राय जानकीदास के जख्मों पर फाहा रखते, परन्तु उससे उन्हें चैन नहीं मिलता था। मन को शाँति नहीं। क्योंकि उन्होंने ऐसे व्यक्ति से हार खायी कि जो उनकी निगाह में छोटा था, तिनके के समान था। धनिकों का वह समूह कि जो राय जानकीदास के पास आकर बैठता, निश्चय ही, उस हार को अपनी हार मानता। परन्तु पैसा ही सब कुछ नहीं कर सकता, कदाचित् इस सत्य को उस चुनाव ने स्पष्ट कर दिया था।

और साँप, साँप था। वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकता था। राय जानकीदास जब स्वस्थ बनकर अपने कारबार में लगे, तो वही उत्साह, वही संचय और शोषण की प्रणाली, उनके जो विविध कारखाने थे, तो उनमें सहस्रों आदमी काम करते थे। वे सभी मजदूर कहलाते। राय जानकीदास का मत था कि जो व्यक्ति उनके यहाँ काम

करता है, वेतन पाता है, वह उन्हें अपना मित्र, साथी अथवा मालिक नहीं मानता। वह उन्हें हृदय से घृणा करता है, दूर का व्यक्ति समझता है। अपना नहीं। इसलिये, राय साहब का मत था कि मजदूर आत्म-हीन, कमजोर है, अभावों से भरा है। वे अपनी सीमा के बाहर देखने की क्षमता नहीं रखता, वह अन्धेरे में पड़ा है। इन्सान की कोटि में आकर भी जानवर बना है।

फलस्वरूप, एक बार जब उनकी मिल में हड़ताल हुई, तो उन्होंने अपने कानों से सुना और आँखों से देखा कि उन्हीं के पैसों से उदरपूर्ति करने वाले मजदूर एकत्र होकर चिल्ला रहे थे, हम इस मिल के मालिक को मार देंगे'''वह भेड़िया है, धर्म और त्याग की बात करता है। उसके दाँतों में जहर भरा है, उसी से इन्सान को मारता है।'

निश्चय ही, उस समय यदि सुरक्षा के लिये पुलिस न आ जाती, तो राय जानकीदास का कारखाना और वह स्वयं जीवित न रहते और मजदूरों के विद्रोह का कारण यह था कि उस वर्ष मिल को कई लाख का लाभ हुआ था। उसमें से मजदूरों को कुछ नहीं मिला। उनका वेतन भी नहीं बढ़ाया गया। राय जानकीदास की इस नीयत को देख मजदूरों के दिलों में जो विद्रोह पैदा हुआ, उनकी आत्मा में जिस प्रकार की टीस उठी, निश्चय ही, उसका सम्बन्ध पेट से था, उनके अभावों से था। जब उनके पेट की रोटी छीनी जा रही थी, तो वह मचले, वे कोलाहल से भर उठे, वे मजदूर विद्रोह की आग में जल जाने के लिये पागल बन गये।

नगर में अनेक संस्थाएँ थीं, राय जानकीदास की तिजोरी से सभी को रुपया दिया जाता। जो वर्ग पूँजीवाद का विरोध करता, वे उसकी माँग को भी पूरा करते। लगता यह था कि अन्य पूँजीपतियों के सदृश राय जानकीदास भी पैसा उछालते और उसके साथ आदमी को उछलता देखते। मानो वे ऐसे बाजीगर थे कि जो अपने डमरू के साथ बन्दर रूपी आदमी को नाचता देख कर प्रसन्न बनते अपना मन बहलाते।

किन्तु उस स्थिति में पंडित सुदर्शन की मानसिक अवस्था अतिशय दु:सह और विषम थी। नगर जनता ने उनके कन्धों पर बोझ डाल दिया था। उसे निभाना था। उनके लिए यह गौरव की बात नहीं थी कि नगर की एक मिल के मजदूर हड़ताल करें और वे घर में बैठे रहें। अतएव, उन्हें बाहर निकलना पड़ा। अवस्था यह थी कि पंडित जी राय जानकीदास के विरुद्ध भी नहीं जाना चाहते थे और मजदूरों की माग का विरोध भी नहीं कर सकते थे। वह उसका हृदय से समर्थन करते थे। इसी ऊहापोह में जब पंडित सुदर्शन ने कई दिन निकाल दिये, तो कार्याधिक्य और मन की अशाँति के कारण बिस्तर पर पड़ गये। वह बीमार हो गये। लेकिन उसी समय एक दिन वह तड़प उठे और बेचैन बन गये। उन्होंने पत्नी को लक्ष्य किया और कहा—'ओह, बड़ी बेचैनी है! मन में पीड़ा है। मुझे उठाओ और राय जानकीदास की मील पर ले चलो।'

पत्नी ने कहा—'वहाँ झगड़ा है, पुलिस है, सुना है कि आज···।'

पंडित सुदर्शन ने कहा—'हाँ, मैंने भी सुना है। वहाँ पुलिस है। उनके हाथ में बंदूकें हैं। मैं वहाँ जाऊँगा। अपने प्राण दे दूँगा। जल्दी करो! सवारी मँगाओ।'

फलस्वरूप, पंडित सुदर्शन वहाँ पहुँच गये। देखा कि एक ओर मजदूर खड़े थे, दूसरी ओर पुलिस, उसकी तनी हुई बन्दूकें। किन्तु जब उस जन-समूह में पंडित सुदर्शन को बीमारी की अवस्था में वहाँ आए देखा, तो पुलिस की बन्दूकें नीचे झुक गयीं; मजदूर पीछे हट गये। पंडित सुदर्शन सामने खड़े राय जानकीदास के पास गये और बोले—'मैं मानवता के नाम पर भीख माँगने आया हूँ, सेठ जी! रोग का यह उपचार नहीं, जो आप करना चाहते हैं। मजदूरों का अधिकार दीजिये।' और यह कहते हुए पंडित सुदर्शन रोग की दुर्बलता के कारण खड़े नहीं रह सके। वह गिर पड़े।

एकाएक सेठ ने कहा—'पंडित जी···।'

पंडित जी बोले—'चिन्ता न कीजिये ! भ्रम में न रहिये, मैं अब भी आपका हूँ। मैं आपकी सुरक्षा चाहता हूँ। आपकी पशु-वृत्ति देखकर भी प्रसन्न होता हूँ। परन्तु यह पुलिस, यह सामने खड़ा मजदूरों का वेग मेरी और आपकी लाश बना देगा। यह समूह अपना स्वत्व माँगता है। आप इनके पिता हैं, मालिक हैं, न्याय कीजिये।'

एकाएक सेठ ने कहा—'तो आप क्या कहते हैं, पंडित जी !

पंडित जी ने कहा—'मजदूरों को उचित पैसा दीजिये।'

राय जानकीदास ने कहा—'आप उठिये, मुझे स्वीकार है। इस मिल ने और मजदूरों ने मुझे पागल बना दिया है।'

पंडित जी उठे, उन्होंने पत्नी का सहारा लिया और सेठ की ओर देखकर कहा—'रायसाहब, यह माया है, तृष्णा है, यह बुझेगी नहीं ! आपने जो प्याला मुँह से लगाया है, वह मदान्ध बनाता है, बेहोश करता है, इस आदमी को ?'

राय जानकीदास ने कहा—'आप ठीक कहते हैं, और उसने पास खड़े मैनेजर को आदेश दिया कि ऐलान कर दे, 'मजदूरों की सभी माँगें स्वीकार हैं।'

पंडित सुदर्शन ने गद्गद् बनकर कहा—'भगवान आपका भला करे !'

राय जानकीदास बोले—'पंडित जी, इस समय आप देवदूत की तरह आये, जादू ले आये, अपने साथ ?

पंडित जी मुस्कराये और पत्नी का सहारा लेकर उस भीड़ से पार होते हुए आगे बढ़ गये।

सात

राय जानकीदास अवसरवादी थे। कई दिन के संघर्ष के बाद उन्होंने समझ लिया था कि उन्हें झुकना पड़ेगा। युग-प्रवाह में बहना ही उनके लिए हितकर होगा। अतएव, जब पण्डित सुदर्शन अस्वस्थ बनकर भी उनकी मील के द्वार पर पहुँचे, तो सेठ को जैसे अन्धेरे में प्रकाश मिल गया। उनका सम्मान रह गया और समस्या का समाधान भी हो गया। उन्होंने पण्डित सुदर्शन की बात के समक्ष अपना सिर झुका दिया। किन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं था कि उस ब्राह्मण को उन्होंने क्षमा कर दिया। वह उनके हृदय में काँटे की तरह चुभ रहा था। पण्डित सुदर्शन ने उन्हें समाज के बीच चौराहे पर पटका था। चुनाव में हराया था।

कदाचित यही कारण था कि जब कई वर्ष बाद नगर छोड़कर गाँव में रहते हुए पण्डित सुदर्शन के पास राय जानकीदास का पुत्र यदुनाथ पहुँचा, तो निश्चय ही पिता को पुत्र का वह व्यवहार अप्रत्याशित और अशोभनीय लगा। उन्होंने यदुनाथ की बात को जहर के घूँट के समान पी लिया और कहा—'यह तुमने अच्छा नहीं किया। अपनी मर्यादा के अनुरूप नहीं। वह पण्डित हमारा शत्रु है, उसने सदा ही हमारा अहित किया है। इस घर की प्रतिष्ठा को धक्का यदि किसी व्यक्ति ने पहुँचाया, तो वह सुदर्शन है। उसके कारण मुझे व्यापार में भी घाटा उठाना पड़ा था।

लेकिन राय जानकीदास के लिए अजीब और परेशानी की बात यह

हुई कि यदुनाथ उनकी बात से सहमत नहीं था। उसने गाँव में जाकर जो कुछ देखा, सुना, वह उसी के आधार पर बोला—'पिता जी, ऐसा व्यक्ति किसी का अहित कर सकता है, मैं नहीं सोच पाता। आपको यह भी पता है कि पण्डित सुदर्शन जी इस नगर से इसीलिए हटे, कि वे नेता नहीं बनना चाहते थे, जनता का सेवक बना रहना पसन्द करते थे। जब वे विधान सभा में जनता की सेवा नहीं कर सके, तो वापिस चल गये।'

झल्लाकर राय जानकीदास बोले···'विधान सभा में रहना आसान नहीं! और तुम समझते हो कि नेता सुगमता से बना जाता है। उसके लिए बुद्धि का उपयोग किया जाता है।'

यदुनाथ बोला—'यदि नेता बनने का यही अर्थ हो कि जनता का अभिवादन तथा स्वागत स्वीकार किया जाय, स्टेज पर बड़ी-बड़ी आदर्शवादी बातें कह दी जायें, तो पण्डित सुदर्शन ऐसा कभी स्वीकार नहीं करते। वह काम करने में विश्वास करते हैं। सेवक बनना चाहते हैं।'

राय जानकीदास बोले—'वह मूर्ख है! रँगा सियार है? सेवा के नाम पर उसने पैसा उपार्जित किया है। नगर में लोग उसकी आलोचना न करें, इसलिए गाँव चला गया। मुझे उसके रहस्य का पता है।'

यदुनाथ युवा था। पिता से वह अप्रत्याशित और अशोभनीय बात सुनी, तो उसके मन का रोष मुँह पर उतर आया। वह क्षुब्ध बन कर बोला—'पिता जी, आप वास्तविकता से कोसों दूर हैं। आपने उस पंडित को गलत समझा है। नि:सन्देह, यदि वह चाहता, तो इस नगर से रुपया प्राप्त करता। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। सेठ रामपत जब चोरबाजारी के सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए, तो तब पंडित सुदर्शन के छोटे-से इशारे पर छूट सकते थे। उसी समय पंडित जी का बच्चा बीमार था। वह मौत के मुँह में पड़ा था। सेठ रामपत के भाई ने दस हजार रुपये के नोट उस बीमार लड़के की चारपाई पर रखे और

कहा, लड़के का उपचार कराओ ? यह रुपये रखो। परन्तु पंडित जी ने घृणा के साथ वे रुपये लौटा दिये और कह दिया, मैं लड़के की मौत देख सकता हूँ, देश के साथ गद्दारी नहीं कर सकता। जनता ने अपने वोट देकर मुझे चुना है, उस वोट का मूल्य इन रुपयों से नहीं आँकूगा।'

किन्तु राय जानकीदास ने तब भी मुँह बनाया और कहा—'मैं सब समझता हूँ। यह बात उस पंडित ने कही होगी। अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बना होगा।'

यदुनाथ बोला—'पिता जी, उस गाँव में जाकर मुझे बहुत-सी बातें मालूम हुईं। उनकी पत्नी औषधि के अभाव में मर गयी। उसे कफन भी नहीं मिला। पंडित सुदर्शन ने अनेक अवसरों को खो दिया। उन्होंने सदा पैसे को ठोकर मारी और मानवीय धर्म का पालन किया।' उसने कहा—'पंडित जी विचारों में विरोध कर सकते हैं, परन्तु व्यक्तिगत रूप से किसी के शत्रु नहीं। वे कठोर नहीं।'

किन्तु इतना सुनकर भी राय जानकीदास ने पुत्र की बात का समर्थन नहीं किया। उनके मन में एक विचार पत्थर की तरह जम कर बैठा, तो वह नहीं हिला, न मिटाया जा सका। उन्होंने साफ कह दिया—'यदुनाथ, मेरे लिए यह बहस का विषय नहीं है। यह बताने की भी आवश्यकता नहीं कि पंडित क्या है। मुझे सब पता है। तुम्हारे लिए यही उचित है कि उससे आगे सम्बन्ध न रखा जाय। वह दुनिया के लिए अच्छा हो सकता हैं, परन्तु इस घर के लिये शुभ नहीं। वह साँप है। समय पाते ही फुत्कार करता है और काटता है।' वह बोले—'निःसन्देह, उसने यह अच्छा नहीं किया कि नगर से दूर उस गाँव में गये, सुदर्शन पंडित से जाकर मिले। इस प्रकार तो तुमने अपने पिता का अपमान किया है। तुम्हें पता है कि उस पंडित से मेरा सदा विरोध रहा।' राय जानकीदास ने पुत्र से सीधा प्रश्न किया—'बताओ, तुमने खजाँची से जो रुपया लिया, उसका क्या उपयोग किया ?

निश्चय ही, उस ब्राह्मण को देकर आये होगे। जो साँप काटता है, तो तुम उसी को दूध पिला आये—खूब! यह है, तुम्हारी बुद्धिमानी! कितना आश्चर्य है कि उस मूर्ख व्यक्ति ने मुझसे एक बार भी सहायता प्राप्त नहीं की और तुम्हारी स्वाकार की। इस प्रकार तो वह एक ही घर में दो-प्रकार के व्यवहार करता है। वह छलिया है। कपट करता है। इसलिए कहता हूँ कि वह सरल व्यक्ति नहीं है। बड़ा आदर्शवादी बनता है। मुँह में राम और बगल में छूरी···यही उसका रूप रहा है।'

इतना सुनकर यदुनाथ एकाएक कुछ नहीं कह सका। कमरे की दीवर पर एक महापुरुष का चित्र टँगा था, वह उसी ओर देख रहा था। जैसे उस चित्र में पण्डित सुदर्शन आ खड़े हुए। वह मुस्कराने लगे। तभी यदुनाथ बोला—'पिता जी, यह स्पष्ट है कि आपको धोखा हुआ है। उस पण्डित को नहीं पहचाना। आप इतना कहते हैं और सुदर्शन जी ने आपके विषय में एक शब्द भी नहीं कहा। उन्हें न आपसे रोष है, न स्पर्धा है। दोनों का मार्ग अलग-अलग है। यह तो व्यक्ति के चरित्र और कार्य-कलाप को इंगित करते हैं, उसी को इन्सानियत के विरुद्ध बताते हैं। और यह तो आप जानते हैं कि उन्होंने मुझे पढ़ाया है। आपने इस शरीर को जन्म दिया, तो पण्डित जी ने एक कलाकार के रूप मेरे माँस-पिण्ड को बनाया-सवाँरा है।'

किन्तु कठिनाई तो यह थी कि राय जानकीदास दम्भी और स्वाभिमानी थे। इसलिए पुत्र से जब व्यक्ति के चरित्र और धर्म की बात सुनी, तो वे और अधिक विक्षुब्ध हो उठे। वह तड़फ कर बोले···'बस, बस, तुम खामोश रहो। उस कमीने सुदर्शन की बात मुझसे मत कहो। कुछ दिन उसने तुम्हें पढ़ाया, तो यह न समझ लो कि वही विश्वकर्मा का काम कर गया। तुम्हें और अध्यापकों ने भी पढ़ाया। बी० ए० तक की पढ़ाई में तुमने दर्जनों अध्यापकों से पाठ प्राप्त किया।'

यदुनाथ बोला—'किन्तु जो शिक्षा मुझे पण्डित सुदर्शन ने दी, वह अन्यत्र नहीं मिली। उनकी आरम्भिक शिक्षा थी। वह आज भी मेरे हृदय पर है, अमिट है।'

नरम पड़कर राय जानकीदास ने कहा—'बेटा, यह उसका काम था। इसी के पैसे पाता था।'

यदुनाथ ने कहा—'ओह, आप पैसों की बात सभी जगह लागू करते हैं, पिताजी! शिक्षा के क्षेत्र में भी! आप समझते हैं कि अध्यापक अपने विद्यार्थी को जो पाठ पढ़ाता है, जीवन का ज्ञान और अनुभव उस बालक के मन में उतारता है, तो उसका भुगतान कुछ पैसे देकर हो जाता है। न, न, उसका मूल्य बड़ा है। वह रुपये-पैसे से नहीं चुकाया जा सकता।'

राय जानकीदास ने खिसियाकर कहा—'बेटा, भूलो मत कि तुम व्यवसायी हो, वणिक् के पुत्र हो। लेन-देन करना ही तुम्हारे जीवन का धन्धा है। शिक्षा देना भी एक व्यवसाय है। लोग इस व्यवसाय से रुपया उपार्जित करते हैं, धनपति बन गये हैं।'

यदुनाथ उस समय सचमुच ही घृणा से भर गया। उसकी विवशता थी कि वह अपने पिता को बात समझाने में असमर्थ था। जिस तराजू पर व्यक्ति की भावना तोल रहे थे, उस पर सोना-चाँदी तुल सकता था, मनुष्य की अनुभूति या आदर्श नहीं। और उसके पिता को इसी का अभ्यास था। अतएव वह मौन रह गया। एकाएक बोल नहीं सका।

किन्तु तभी राय जानकीदास ने कहा—'लोग धनिकों से पैसा लेते हैं और उन्हीं को समाज का शत्रु और इंसान की जिन्दगी का जहरीला कीड़ा मानते हैं। सुदर्शन भी ऐसा ही एक है। उस साँप ने मुझे काटा, जो समय आने पर जहरीले दाँतों से तुम्हें भी काट सकता है।'

कठिन भाव में यदुनाथ बोला—'पिताजी, हमारे शरीर के समान पैसा भी समाज का है, देश का है। हमारा अपना तो कुछ भी नहीं

है। यह शरीर भी नहीं।'

सूखे दाँतों से हँस कर राय जानकीदास बोले—'अरे दार्शनिक।'

यदुनाथ बोला—'यह तो सामान्य ज्ञान की बात है, पिताजी! मनुष्य जब से इतना भूल गया, तभी से तो जिन्दगी की परेशानी और सड़ौद में फँस गया। बताइये, इतना धन पाकर भी क्या आप शान्त है? आपका मन स्वस्थ है? आपको तो रात-दिन बेचैनी रहती है। चिन्ता सताती है।'

उसी समय यदुनाथ की माँ वहाँ आई। वह देर से पिता-पुत्र की बात दूसरे कमरे से सुन रही थी। वहाँ आते ही बोली—'यदुनाथ ठीक तो कहता है। माया जितनी बटोरो, उतना ही बोझ मन पर रखो। इसमें सुख कहाँ है।'

यदुनाथ बोला—माँ, आदमी विवश है। इच्छा का दास है। गुजर करने की बात करता है और दौलत के अम्बार लगाता है। दूसरों को धोखा देने वाला अपने को धोखा देता है। अपनी आत्मा का खून करता है।'

खिन्न भाव में राय जानकीदास बोले—'इस धरती पर चैन नहीं।' उन्होंने पत्नी की ओर देखकर कहा—'देवीजी, मैं भी यदि तुम्हारे बेटे की तरह भावना की बातें करता; तो ये बड़े महल, ये हीरे-जवाहरात तुम कहाँ पातीं। तब तो किसी झोंपड़ी में रहतीं। रोटियों के लिए तरसतीं।'

पत्नी ने कहा—'यह भी भाग्य की बात है।' वह बोली—'यह कहे देती हूँ, ये हीरे-जवाहरात अच्छे तो लगते हैं, पर ये सभी साँप और बिच्छू हैं। बदन में काटते हैं। रुपये में प्रतिक्षण भय बना रहता है। इन्सान की मौत इन्हीं के कारण होती है। डाकू महलों में जाते हैं, झोंपड़ियों में नहीं।'

राय जानकीदास बोले—'पैसा सभी चाहते हैं। जो धनिकों को कोसते हैं वे भी पैसे की कल्पना करते हैं। ऐसे लोग यह नहीं समझते

कि पैसे का सम्बन्ध भाग्य से है, बुद्धि से है ।'

यदुनाथ मुस्कराये—'पिताजी, धनिकों के पास बुद्धि है, मैं नहीं मानता । बुद्धि का सम्बन्ध भावना से है, जिसका उनके पास अभाव है । यह कहिए, जो लोग अवसरवादी हैं, पाप-पुण्य को एक ही चुल्लू में पी जाना पसन्द करते हैं, वे ही इस दौलत के स्वामी बने हैं ।'

राय जानकीदास ने पत्नी की ओर देखकर कहा—'सुनती हो, अपने पुत्र की बातें । यही रहा, तो सभी कुछ भस्म हो जायगा···धू-धू करके जल जायगा, एक दिन !'

पत्नी ने साँस भरी और कहा—'तो तुम परेशान क्यों बनते हो ! छाती पर नहीं ले जाओगे । तुम्हारे पीछे कुछ रहे तो, लुटे तो, देखने नहीं आओगे !'

यह कहती हुई पत्नी फिर दूसरी ओर बढ़ गयी ।

आठ

लेकिन जिस सुगमता से पत्नी ने अपनी बात कही, वह सत्य भले ही हो, राय जानकीदास के लिए रुचिकर और प्रीतिकर नहीं थी। इसलिये जब पत्नी अपनी बात कहने के साथ उस कमरे से दूसरी ओर चली, तो राय जानकीदास ने उसे घूरा, जैसे वह कोई अपराध करके जा रही थी और वह निर्विवाद था कि वह व्यक्ति उस कोटि में नहीं था कि जिन्हें अपने स्वार्थ का पोषण करने के साथ समाज की भलाई और देश-हित का भी ज्ञान हो। इसका कारण कुछ और हो या नहीं, एक यह अवश्य था कि वह अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। जिस घर के वह स्वामी थे, उस घर में जन्मे भी नहीं थे। वह दत्तक-पुत्र बनाए गए थे। राय जानकीदास ने बचपन में ही इस बात को सुन लिया था कि वह खरीदे गये थे। दूर प्रांत के एक गरीब परिवार से लाये गये थे। कदाचित वह वैश्य जाति से भी नहीं थे। चूंकि बदलता हुआ समाज इस बात को महत्व नहीं देता, इसलिए अधिकांश लोग इस बात से अनभिज्ञ थे। परन्तु जो जानते थे, उनका मत था, जाति और माँ-बाप के संस्कार सन्तान के जीवन में काम करते हैं। वह सदा बोलते हैं। लेकिन ऐसे व्यक्तियों की राय जब सेठ जानकीदास के लिए इस प्रकार की बनती तो उनसे प्रश्न किया जाता, 'और यह यदुनाथ ? यह भी तो उसी पिता की सन्तान है। वह उदार और मानवता का चिन्तक है। इसके उत्तर में लोग कहते—'यदुनाथ माँ पर गया है, बाप पर नहीं। माँ बड़े घर की बेटी है, स्नेहमयी और दयामयी है।'

जो हो, राय जानकीदास इस बात से प्रसन्न नहीं क्योंकि उनका पुत्र पण्डित सुदर्शन के पास गया और उन्हें एक बड़ी राशि दे आया। राय जानकीदास का मत था कि जब पैसा उपार्जित किया जाता है, तो वह लुटाया नहीं जाता। अपने उपयोग पर व्यय किया जाता है। इसलिए वे विलासी थे, शराबी थे। दम्भी और स्वभाव से क्रूर थे। नगर के मध्य में बना हुआ उनका भवन अपनी निराली शान रखता था। नगर के बाहर भी उन्होंने आधुनिक साज-सज्जा से युक्त एक बँगला निर्मित किया था। जिसमें किसी समय विदेशी शासक वर्ग के उच्च अधिकारी ठहरते थे। उस बँगले का आज भी यही उपयोग था। शासक बदला, तो जब वृत्ति में कोई अन्तर नहीं आया, शासन चलाने की वही प्रणाली रही, तो बँगला भी जगमगाता रहा। उसमें देश के बड़े-बड़े नेता और अधिकारी आकर ठहरते। वह बँगला अपनी बाहें खोल कर उनका स्वागत करता। इसी का परिचय था कि राय जानकीदास प्रति वर्ष एक नया कारखाना खोलने में समर्थ बनते। उन्हें शासक-वर्ग की की ओर से अधिक सुविधाएँ प्राप्त होतीं।

किन्तु यह भी राय जानकीदास की जाने कैसी मानसिक दुरव्यवस्था थी कि इन्सानों के उस समाज में उनके मित्र कम थे, शत्रु अधिक। वह मन से दीन और कायर बने थे। मन के विरुद्ध यदि कोई कार्य होता, तो वह असह्य था। पीड़ा देने वाला था। क्योंकि जीवन के जाने किस क्षण में, उस व्यक्ति में यह अहमन्य भाव साँप की तरह कैंचुली मार कर बैठ गया कि वह नगर का विशिष्ठ व्यक्ति है, उसके पास पैसा है और यही वह अपने पुत्र को समझाने की प्रेरणा देता था। किन्तु वह पुत्र जाने कैसा था कि पिता की बात को झूठी और अमानवीय मानता, नगर के बाहर के बँगले में राय जानकीदास ने एक विशाल तालाब बनवाया था। उसमें बिजली के तार भी डाले गये। जिससे पानी में विविध प्रकार की लहरें उठतीं, लोग आनन्द लेते। वहीं पर एक चिड़िया घर था कि जहाँ विविध प्रकार के पशु-पक्षी थे। जिस भाग में मदिरालय

था, वह भी आधुनिक यन्त्रों से सुसज्जित था। आश्चर्य कि यदुनाथ ने कभी उनका उपयोग नहीं किया। उस बँगले में भी उसका बहुत कम जाना होता। राय जानकीदास ने उस बँगले के लिए फर्नीचर भी दूसरे देशों से मंगाया था। किन्तु उस राजसी ठाठों से सजे बँगले में जाना यदुनाथ को रुचिकर नहीं लगता था। जब वह समर्थ हुआ, तो उसने अनेक बार माँ से कहा, यह पैसे का दुरुपयोग है। आदमी पैसे का प्रदर्शन करता है।

कदाचित पुत्र की इस भावना को पाकर, राय जानकीदास का मन खिन्न था। उन्हें अपने उत्तराधिकारी पर सन्देह था कि वह उनके मरने के बाद उस थाती को कायम-रखेगा। उन्हें लगता कि यह यदुनाथ सभी कुछ छितरा देगा···उनकी प्रतिष्ठा को भ्रष्ट कर देगा। धनिक घर की शान को कायम नहीं रखेगा।

और जब, पण्डित सुदर्शन के गाँव से लौटकर, उस यदुनाथ ने सीधी और साफ बात मनुष्य और धन के विषय में राय जानकीदास के समक्ष रखी, तो उन्हें लगा, ओह, ऐसे तो सभी कुछ मिट जायेगा···धू-धू करके जल उठेगा, उनका वह सुनहरा संसार। फलस्वरूप, यदुनाथ ने पिता के मन में भूचाल खड़ा कर दिया। उन्हें स्पष्ट अनुभव हुआ कि पुत्र शत्रु के शिविर में पहुँचा है। वहाँ से प्रेरणा लाया है। प्रतिक्रिया के भाव साथ ले आया।

स्थिति यह थी कि राय जानकीदास की एक वही सन्तान थी। सभी के समान उन्हें अपनी सन्तान प्यारी थी, नगर में यह बात प्रसिद्ध थी कि यदि राय जानकीदास से किसी को कुछ पाना हो, तो उनसे पुत्र की प्रशंसा कर दें। काम बनेगा। लेकिन यदि कोई व्यक्ति भूल से उन्हीं के समक्ष यदुनाथ की आलोचना कर बैठे, तो निश्चय ही, वह व्यक्ति उनसे कुछ न पा सकेगा। परन्तु जब वही पुत्र उनसे बगावत करने की बात करने में समर्थ बना, तो राय जानकीदास को चैन नहीं मिला। उन्हें दीखा कि सभी के समान पुत्र भी उन्हें हेय और छोटा मानता है। उनके

मन का चोर उस समय भी बोलने की क्षमता पा गया। फलस्वरूप, मन की शांति चली गयी। पुत्र निर्दय और कठोर लगा। अपने जीवन में उन्होंने जिन विरोधियों को काँटे के समान तोड़ने का प्रयत्न किया, इस कृत्य में सफलता पायी, तो अब लगा, पुत्र भी एक काँटा बनना चाहता है। उनके अरमानों पर कुठराघात करता है। जैसे वह अपने पिता को ललकार उठा है। उन्हें निर्दय और कायर घोषित कर रहा है···

पण्डित सुदर्शन के गाँव से चल कर, नगर में, दो-तीन दिन के बाद ही, यदुनाथ ने आभार प्रदर्शन के रूप में कमला और पण्डित जी को पत्र लिखे। कमला के नाम लिखे पत्र में उसने जहाँ गाँव की शोभा का उल्लेख किया, वहाँ पर यह लिखने में भी अपनी भावुक वृत्ति को पीछे नहीं छोड़ सका कि वह नगर में आकर अनुभव करता है कि दो दिन के लिए स्वर्ग में गया था कि फिर नर्क में आ गया। तुम्हारा आत्मीय भाव मुझे देर तक याद रहेगा।

पत्र पढ़कर जब पिता-पुत्री बात करने लगे, तो अपना पत्र भी कमला ने पिता को दे दिया। उसे पढ़कर सुदर्शन जी बोले—यदुनाथ युवक है, भावुक है। वह अपने जन्म के साथ अच्छे संस्कार लाया है। उन्होंने कहा—'राय जानकीदास सरीखे व्यक्ति का पुत्र सुधारवादी हो, जीवन के प्रति सजग और जाग्रत हो, यह आश्चर्य की बात तो है ही, शुभ और महान भी है।'

कमला ने कहा—पिता जी, समय बदल रहा है। यदु बाबू इस युग के प्रतीक हैं।'

सुदर्शन जी उस समय प्रसन्न थे, एकाएक गम्भीर बन गये। उसी अवस्था में बोले—'आज समूचे विश्व में परिवर्तन आया है। साम्राज्य-वाद की चिता जल चुकी है, प्रजातन्त्र का बोलबाला है। अनेक देशों में पूँजीवाद का प्रभाव भी नष्ट हो रहा है।'

कमला ने कहा—'मनुष्य-समाज के सभी पुराने संस्कार नष्ट हो रहे हैं···राख का ढेर बन गये हैं।'

मौन भाव में सुदर्शन जी ने इस बात को स्वीकार किया। उस अवस्था में हों, उन्होंने अपना मुँह बाहर की ओर उठा दिया।

किन्तु उस गाँव से दूर, नगर में, यदुनाथ ने जैसे यह निश्चय कर लिया कि वह उस रास्ते पर नहीं चलेगा कि जिस पर पिता चले। उसने अपने कारखानों के प्रबन्ध में मजदूरों को भागीदार बनाया। उनके वेतन बढ़ाये अन्य मानवीय सुविधाएँ भी प्रदान कीं। उसका मत था कि उद्योग आवश्यक है, ऐसे कारखानों से ही देश का आर्थिक-तन्त्र सुदृढ़ बन सकता है, परन्तु यह भी उसका विश्वास था कि एक व्यक्ति हजारों व्यक्तियों के पेट पर लात मारकर अपना पोषण नहीं कर सकता। उसे समाज की गरीबी, विभिन्नता को लक्षित करना होगा। पूँजीवाद द्वारा प्रशस्त मार्ग पुराना है, पत्थरों से भरा है। उसमें खाइयाँ है, गड्ढे हैं, स्वार्थपरित मानव किसी समय भी लाश का ढेर बन जायगा। कदाचित यही कारण था कि यदुनाथ अपने कारखानों के मजदूरों में, परिचितों में देवता के समान देखा जाता। जिन मजदूरों की बस्ती में राय जानकीदास का कभी प्रवेश नहीं हुआ, भय और उपेक्षा ने उन्हें उस समुदाय से दूर रखा, वहाँ यदुनाथ प्राय: जाता। उन मजदूरों के घर अथवा सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होता। सहायक होता। स्थिति यह थी कि यदुनाथ के कारखानों में काम करने वाले बहुतेरे मजदूरों ने शराब पीना, जुआ खेलना उसी के निर्देश पर छोड़ा था। उनकी दृष्टि में जैसे यदुनाथ मालिक से अधिक था, अलौकिक था, सुहावना था।

यदुनाथ के घर में एक पुराना नौकर था, रामदीन। जिसकी आयु साठ से ऊपर हो चुकी थी। यदुनाथ उसकी गोद में खेला था, अतएव, अपने मन की बात वह छोटे मालिक से कह सकता था, अवस्था यह थी कि किसी अन्य का कोई काम होता, यदुनाथ से कराना होता, तो प्रार्थी रामदीन का आश्रय लेता था। यह सभी जानते थे कि उसका कहना छोटे मालिक को टालना प्रिय नहीं लगता था।

एक दिन जब रात में रामदीन दूध का गिलास लेकर यदुनाथ के

कमरे में पहुँचा, तो तभी दूध पिला कर, वह रामदीन वहीं रुककर बोला---'छोटे बाबू, अब तुमसे इनाम लूँगा, बड़ा इनाम !'

वह अप्रत्याशित बात सुनकर, यदुनाथ किंचित उसकी ओर देखता रह गया। तभी उसने पूछा---'बापा, किस बात का इनाम लोगे ?'

रामदीन ने कहा---'वाह, मालिक ! जैसे तुम्हें नहीं मालूम ! तुम बाहर गये थे, तो पीछे एक बड़े सेठ आए और अपनी कन्या का सम्बन्ध तुम्हारे साथ कर देने की बात कर गये।'

सचमुच, यदुनाथ को इस बात का पता नहीं था। व्यापार के कार्य से उन दिनों उसे बाहर रहना पड़ा। किन्तु जब रामदीन ने विवाह की बात कही, तो वह उत्सुक बनकर बोला---'वाह, बाबा ! इतनी बड़ी बात और मुझे पता नहीं। तो पिता जी ने क्या कहा ?'

रामदीन बोला---'बड़े मालिक ने कह दिया है, सोच कर जवाब देंगे। मालिक ने उस सेठ से यह भी कहा कि लड़का ही लड़की देखेगा।'

यदुनाथ ने बात सुन ली, पर अपना मत नहीं दिया। उस समय कमरे में रेडियो बज रहा था। किसी दूसरे नगर का प्रोग्राम आ रहा था। परन्तु यदुनाथ ने खड़े होकर रेडियो बन्द कर दिया। वह जब फिर पलँग पर बैठा, तो रामदीन की ओर देखकर बोला---'क्यों बाबा, तुम्हारा क्या मत है, विवाह जरूर करना है, इस इन्सान को ! धनिक को धनिक परिवार में ही करना चाहिये ?

रामदीन उस चक्करदार प्रश्न में खो गया। समझ नहीं सका। वह अपने मुँह पर बड़ी लम्बी डाढ़ी को खुजलाने लगा।

यदुनाथ बोला---'बाबा तुमने भी तो सुना होगा कि जिसके पास पैसा होता है, वह भाग्यवान कहाता है। तो ऐसा भाग्यवान किसी निर्धन परिवार की लड़की से सम्बन्ध क्यों नहीं बनाता ? धनिक बाप अपनी लड़की के लिए निर्धन लड़का क्यों नहीं ढूँढता ! क्या यह परम्परा अशोभकर है ! ऐसे तो दोनों का भाग्य जगे और फले-फूले।'

इतनी बात सुनकर भी रामदीन मौन बना रहा। उसकी दृष्टि में

वह बात असंगत तो थी ही, अस्वाभाविक भी थी। लेकिन चूँकि वह छोटे मालिक का मन समझता था, इसलिए ऐसा सुनकर उसे अचरज नहीं लगा। वह आँखों से मुस्कराकर रह गया।

यदुनाथ बोला—'हाँ, बाबा, तुम्हारे पास तो जिन्दगी का बड़ा अनुभव है। तुमने एक बड़ा सफर पार किया है। बताओ, क्या ऐसी लड़की मुझे प्राप्त नहीं करनी चाहिए ? वह मेरे लिए और इस घर के लिए उपयुक्त नहीं होगी ?' उसने कहा—'जब सभी पुरानी बातें मिट रही हैं, तो यह क्यों नहीं ! फिर यह दुराव और अलगाव क्यों। समाज में इतना अन्तर क्यों !'

रामदीन ने कहा—'छोटे बाबू, लड़की तो गरीब घर की ही लेनी चाहिए। वह घर को सम्भाल पाती है, रख पाती है। यह पुण्य की भी बात है।' यह कहते हुए रामदीन अपने आप में खो गया। उसी अवस्था में फिर बोला—'पर बाबू, ऐसा मानता कौन है। गेहूँ का टोरा गेहूँ में मिलता है। बड़े घर की बेटी बड़े घर में जाती है। यही लड़कों की बात है। बड़े बाप का बेटा क्या गरीब के घर जायगा···नहीं ! यह पथरीली दीवारें देर से खड़ी हैं। आदमी-आदमी को दूर करती हैं। कहने को यह इन्सान का समाज है, भगवान की माया है, पर ऐसा मानता कौन है। पैसा, पैसे में जाता है !' यह कहते हुए रामदीन तुरन्त ही जैसे सचेत बन गया। वह आतुर बनकर बोला—'छोटे बाबू, तुम्हारे लिए तो बड़े घर की ही लड़की चाहिये। कोई राजकुमारी। यहाँ तो भगवान की मौज है। पैसे का दरिया बहता है। वह ठाठें मार रहा है।'

स्पष्ट लगा कि यदुनाथ को रामदीन की बात रुचिकर नहीं लगी। विवाह की बात पर उसके मन की गति बदल गई। तभी उसने बात कही—'बाबा, पैसा तो आता और जाता है। देखते हो धनपतराय को, एक ही दिन में करोड़पति से भिखारी बन गया। सभी कुछ बिक गया। हाँ, यह पैसा तो धूप-छाँह के सदृश हाँ, इस समाज में अपना ताना-बानी करता है। तुमने मेरी बात का ठीक उत्तर नहीं दिया। मेरे मन का

नहीं समझा।'

रामदीन अपने टूटे दाँतों के मुँह से हँस दिया—'क्या उत्तर दूँ, बाबू ! बात यही है। बड़े घर की बिटिया इस घर आती है।' यह कहते हुए उसने ममता के साथ यदुनाथ की ओर देखा। वह तभी बोला—पर तुम्हारे मन में क्या है, बाबू !'

यदुनाथ ने पलँग छोड़ दिया। वह कमरे में घूमने लगा। उस ईरानी कालीन पर धीरे-धीरे चलते हुए, उसने अपने दोनों हाथ बाँध लिए और खिड़की से बाहर दूर तक फैले नगर की ओर देखने लगा। कमरे के एक कोने में धूप जल रही थी, उससे सुगन्ध उठ रही थी। कमरे की दीवार पर अनेक महापुरुषों के चित्र टँगे थे। उन्हीं चित्रों में सिद्धार्थ राजकुमार का तैल-चित्र था। वह अपनी सुन्दर पत्नी और बच्चे से रात के भरे पहर में विदा ले रहा था। उन्हें सोता हुआ छोड़कर अदृश-पथ की ओर जाने के लिए तत्पर था। बरबस, उस समय यदुनाथ की दृष्टि उस चित्र पर गई। जब वह उसी ओर देखता रहा, तो आँखों में कुछ आ गया। उसके मन का उद्वेग ऊपर छलक आया।

उसी समय, पीठ पीछे पहुँच कर, रामदीन ने कहा—'छोटे बाबू, बताओ न, तुम्हारे मन में क्या है ? क्या कोई नई बात ? कोई अनदेखी बात ?'

यदुनाथ की आँखों के खड़े पलक नीचे गिर गये। वे भरी आँखें गालों पर बह गयीं। उस अवस्था में ही, यदुनाथ ने रामदीन की ओर देखा। वह उस वृद्ध के मुँह पर बढ़ी हुई डाढ़ी और झुर्रियों को देख, जैसे स्तब्ध बन गया। उसी में खो गया। उसे लगा कि एक दिन वह भी ऐसा बनेगा···इतना विभिन्न···इतना ही दुर्बल···

परन्तु रामदीन बोला—'बाबू, तुम कहो या नहीं ! पर ये आँखें जरूर कुछ कहती हैं। देखो न, गालों पर उतर आई हैं।'

यदुनाथ ने उन आँखों को पोंछ लिया और कहा—हाँ, बाबा ! मेरे मन में एक ऐसी ही बात आई। सिद्धार्थ की बात···उस चित्र की बात।

देख न, क्षण भर के जीवन में आदमी क्या-कुछ सोचता है…कितना सोच पाता है। इसी जीवन में कोई पत्थर बनता है, कोई मोम! पत्थर आदमी को मारता है, तोड़ता है और मोम फाहा बनकर जख्मों पर लगता है। बाबा, मैं सोचता हूँ, पत्थर तो सभी बनते हैं, अपना रूप देखकर गर्व करते हैं, पर मैं दूसरे के रूप में समर्पित हो जाऊँ, किसी के जख्म पर फाहा बन जाऊँ, तो क्या यह मेरा उज्ज्वल पक्ष न होगा… जीवन का परम और सात्विक प्रसाद न होगा, बाबा! मैं यही चाहता हूँ।'

बाबा रामदीन बोला—'छोटे बाबू, बात ऊँची है। इस बूढ़े के क्या समझ में आ सकती हैं। पर इतना मैंने भी समझा है, इस जीवन में कि जो आत्म-त्याग करता है, वह बड़ा है। जो आत्मा की पुकार सुनता है, सच्चा मनुष्य वही है।'

यदुनाथ बोला—'बाबा, पिता जी यदि मुझे अधिक तंग करेंगे, तो मैं भी राजकुमार सिद्धार्थ के मार्ग पर चलूँगा। मैं यह घर और वैभव त्याग दूँगा। सचमुच, मैं इस जहर के प्याले को नहीं पी सकूँगा।'

रामदीन ने इतनी बात सुनी, तो उसका मन काँप उठा। यदुनाथ ने जो कुछ कहा, वह जैसे उसके प्राणों में चुभ गया। उसने दीन भाव से कहा—'बाबू, तुम्हीं इस घर के दीपक हो, प्रकाश हो।'

किन्तु यदुनाथ ने इतना सुनकर भी अपने हाथों की मुट्ठियाँ बाँध लीं। वह अपने स्वर पर जोर देकर बोला—'बाबा, माँ-बाप की प्रतिष्ठा के साथ मुझे अपने जीवन की प्रतिष्ठा भी प्राप्त करनी है। विवाह मेरे स्वार्थ का प्रश्न है। बड़े घर की लड़की से मेरा कोई लगाव नहीं। मुझे यह परम्परा तोड़ देनी है।

हर्षित भाव से रामदीन बोला—हाँ, हाँ, यह तो अच्छी बात है।

यदुनाथ बोला—'मनुष्य सामाजिक प्राणी है। परस्पराश्रित है। बड़ा आदमी भी छोटों से लेता है। उन्हीं से जीवन पाता है। देखो न, एक तुम हो। तुम भी मेरे पालक हो। तो क्या मेरे लिए यह शोभनीय

है कि इस घर का मालिक बनकर तुम्हारा निरादर करूँ। तुम्हारे उपकारों को भूल जाऊँ!'

रामदीन बोला—'छोटे बाबू, मैं तो नौकर हूँ। सेवा के काम पर लगा हूँ।'

यदुनाथ बोला—'नहीं, नहीं, पैसा महत्वपूर्ण नहीं, बड़ा नहीं। तुमने जो श्रम और भावना अर्पित की, उसे चाँदी-सोने से नहीं तौला जा सकता। ऐसे तो उसका मूल्य घटाता है। सबसे बड़ा पुण्य और सेवा है, आत्म-दान!

बरबस, आन्दोलित बनकर रामदीन बोला—'आत्म-दान!'

यदुनाथ बोला—'हाँ, आत्म-दान, जीवन-दान।'

रामदीन के मुँह पर हर्ष छलक आया। उसी अवस्था में वह बोला—भगवान तुम्हारा भला करे।'

यदुनाथ बोला—'बाबा, मैं अभी विवाह नहीं करूँगा। पिता जी से साफ कह दूँगा। मैं विवाह को जीवन का खेल मानता हूँ। कर्म नहीं। इन्द्रियों की क्षुधा को मिटाने के अतिरिक्त इसका कोई महत्व नहीं। मैं जीवन-साथी पाऊँगा, बच्चे पैदा करने वाली नारी नहीं।'

रामदीन जैसे फिर खो गया। वह बात का मर्म नहीं समझ पाया। परन्तु जो बात उसने सुनी, उसकी आत्मा में अवश्य मिल गयी। उसे समझ भी गया। तभी उसने लम्बी साँस भरी और कमरे से बाहर हो गया।

नौ

पण्डित सुदर्शन ने भावनाओं के जिस अन्तर्यंट में बैठे हुए अपने जीवन को कसकते फोड़े के समान पक जाने दिया और उसको फूट जाने की स्थिति में ला दिया, निश्चय ही, उससे उन्हें जो दुर्दान्त पीड़ा और कष्ट भोगना पड़ा, कदाचित वही उनके जीवन का इतिहास था। इन्सान के जीवन में वह ऐसी परम्परा और चिन्तन का आधार था कि जिससे सभी कुछ स्पष्ट और जीवन का रहस्य सामने आ गया था। मानो वही दर्शन था, वही अध्यात्म का योग। परन्तु जिस मनुष्य पर पीड़ाओं का आघात पड़ता है, उसका मानसिक सन्तुलन स्थिर रहे, सुदृढ़ रहे, इसे एकाएक नहीं माना जा सकता। बहुधा ऐसा नहीं हो पाता। यद्यपि आदर्श के नाम पर कहा जाता है कि विपत्ति का जीवन ही कुन्दन बनता है, लेकिन ऐसा मनुष्य कब तक टिके, कैसे टिके, सहज भाव से इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। परन्तु पण्डित सुदर्शन ऐसे ही एक व्यक्ति थे कि जिन्होंने आपदाओं का स्वागत किया, उन्हें गले लगाया। भले ही उस भूचाल में पड़ कर उनका जीवन स्थिर और स्वस्थ्य नहीं रहा, किन्तु उनका मन नहीं झुका, सम्मान को आघात नहीं पहुँचने दिया। इसलिए पण्डितजी के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति उनका महत्व समझते थे। कुछ लोग पण्डित सुदर्शन को सनकी, और 'मूर्ख' भी मानते थे। वह कहते, यह ब्राह्मण व्यवहारिक नहीं, दुनियादार नहीं। जीवन की परम्परा नहीं जानता। जिस डाल पर बैठता है, उसी को काटता है। किन्तु पण्डितजी को मानो यही स्वीकार था।

लेकिन यदुनाथ का गाँव में जाना और उसके द्वारा दी गयी राशि को स्वीकार कर लेना भी पण्डित सुदर्शन के लिए अप्रत्याशित बात थी। जिस समय तक यदुनाथ उस गाँव से लौटा और बैल-ताँगे में बैठकर पण्डितजी की दृष्टि से ओझल नहीं हो गया, तो तब तक वह उसे एकदम एकटक देखते रहे। वह दूर हुआ, तो तभी, पास खड़ी कमला ने पिता के अन्तर्मन में कार्य भाव को देख, सहज बनकर कहा—'आप जितने कठोर हैं, उतने ही नरम हैं, पिताजी! इस समय जाने कितनी गहरी ममता में भरे हैं।'

पण्डितजी ने साँस ली और अपनी भारी आँखें पुत्री के मुस्कराते मुँह पर टिका दीं—'हाँ, बेटी! ममता मेरे भी पास है, कभी भी परेशान करती है। यह यदुनाथ गया है न, तो इसके लिए भी मेरे मन की भावना फूट-फूट कर आती है। मैंने इस यदुनाथ को पढ़ाया है। बड़े मन से, बचपन में, इसे बताया है कि आदमी का धर्म क्या···लक्ष्य ··क्या···वह यहाँ जिस अनुभूति से भर कर आया, उसका मूल्य मेरी दृष्टि में बड़ा है। सोच तो, इस युग में ऐसा नाता कौन निभाता है। यदुनाथ जिस बाप का लड़का है, वह तो भेड़िया है, आदमी के खून से प्यास बुझाता है···

उस समय कमला स्वत: ही भारी थी, अनिवर्चनीय बनी थी। पिता की बात सुनी, तो वह मौन बनी रही। वह उस रास्ते की ओर देखती रही कि जहाँ से यदुनाथ का ताँगा गया था। उस रास्ते में पहियों ने जो निशान बना दिये थे, रेखाएँ खेंची थी, कमला की आँखें उसी पर टिकी थीं।

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'राय जानकीदास पुत्र की इस अवस्था को पसन्द नहीं करेगा। आश्चर्य, मैंने जिस व्यक्ति से एक भी पैसा नहीं लिया, उसी का बेटा यहाँ गाँव में आया और हमारी इस विपत्ति में सहायक बन गया। वह अजीब तरह की एक सलोनी भावना का समर्पण कर गया।'

कमला ने कहा—'राय जानकीदास से आपका मतभेद था। उस व्यक्ति का स्वार्थ प्रबल था। पैसा पाकर ही तो उसने अपना शृंगार किया। कोमल आत्मा को सोने और चाँदी से ढँक दिया गया। यह कहते हुए वह दूसरी तरफ चली गयी।

किन्तु कुछ देर बाद में, कमला फिर उस ओर आई, तो देखकर खिन्न बनी कि उसके पिता के आँसू मुँह के दुर्बल गालों पर निकल आये थे। यह देख, वह उन आँखों पर अपनी धोती का पल्ला रखकर बोली—'यह सब क्या है, पिताजी! आज आप इतने दुर्बल बने है!'

सुदर्शनजी ने अपनी वे द्रवित आँखें उस यौवनमयी पुत्री के मुँह पर टिका दीं। निश्चेय ही, उसकी अन्तरात्मा की पीड़ा आँखों में उतर आई। इसीलिए वे अतिशय करुणार्द्र बन गयीं।

कमला ने कहा—'बताइये न, क्या है, आपके मन में! क्या माता जी की याद—'

मानो आतुर बनकर, सुदर्शनजी बोले—'नहीं बिटिया! जो गया, चला गया, अब मैं उसकी क्या याद करूँगा। एक दिन मैं स्वयं चला जाऊँगा। यह तो कुछ दिन का खेल-तमाशा होता है, खेला जाता है और स्वतः ही मिट जाता है। मेरे मन में तो बात आई उस राय जानकीदास की। वह मेरा नगर में रहना नहीं चाहता था। मानो मैं ही उसका शत्रु था और सचाई यह है, मैं मन से उसका मित्र बना था। अतएव, मैं सोचता हूँ, मेरा कोई दुर्बल भाग अवश्य था कि जिससे राय जानकीदास प्रभावित था। यह सच है कि मैं भी उसके प्रति अच्छी धारणा नहीं रखता था। समाज में उसे अमानवीय तत्वों से भरा बताता था। अब सोचता हूँ, मैं ऐसा क्यों था! मुझे किसी को दोषी बताने का क्या अधिकार था। देखता हूँ, मैं अभी तक उदार और मानवोचित भावनाओं से प्रेरित नहीं हुआ।'

कमला ने कहा—यह आपके मन की दुर्बलता है। बुरे को बुरा कहा जाता है। सभी जानते हैं कि मक्खन और छाछ को अलग किया

जाता है ।'

पण्डित सुदर्शन बोले—'न, बेटी ! उदार बनना ही इन्सान का काम है । दोष परिस्थितिवश आते हैं, जन्म के साथ नहीं ?'

कमला ने कहा—'आप पुनर्जन्म तो मानते हैं । संस्कार भी । तब ऐसा विश्वास क्यों नहीं करते कि जीव पिछले जन्म का लेखा-जोखा भी अपने साथ लाता है ।'

पण्डितजी बोले—'बेटी, यह पुरानी बात है । इस वैज्ञानिक युग में भला इसका क्या महत्व है ! पिछली बात कोई हो, तो हो ! परन्तु इस जन्म में बहुत कुछ बनाया या बिगाड़ा जाता है । देखती तो हो, कलाकार मिट्टी के ढ़ेले में कैसे प्राण फूँकता है, दर्शनीय प्रतिभावना भर कर रख देता है ।' उन्होंने कहा—'इस गाँव में आकर भी मेरे मन का कोलाहल शान्त नहीं हुआ । यहाँ भी चैन नहीं । मैं प्राय: सोचता हूँ कि आखिर भगवान ने इन्सान को इतना परतन्त्र और दीन क्यों बना दिया···हँसता-खेलता इन्सान पीड़ाओं का दास बन गया ।'

कमला ने कहा—'पिताजी, इस समय आपका मन खिन्न है और जानते तो हैं, इस धरती पर यही सब प्राप्त होता है ! राग-द्वेष और अहंकार से भरा मानव स्वत: ही अपनी समस्याओं का निर्माण करता है । स्वयं परेशान बनता है और दूसरों को परेशान बनने के लिए विवश करता है ।' वह बोली—'आपने प्राय: कहा है कि बड़ी मछली छोटी मछलियों का शिकार करती हैं, यही आदमी का काम है । पूँजीवादी और सामन्तवादी मनोवृत्ति ने इन्सान को दास बनाया हैं । इस गाँव में भी यही है । जो जमींदार हैं, बड़ी जाति वाले हैं, वे छोटों पर शासन करते हैं ! कोई भगवान है, तो मैं सोच नहीं पाती कि उसका इस धरती के इन्सान के लिए क्या काम है । पीड़ित इन्सान को वह किस प्रकार का सहारा देता है···बस, कसकता और अन्धेरे में पड़ा इन्सान उसका नाम अवश्य लेता है···वह जैसे उस अवस्था में ही कोई सहारा पाना चाहता है ।

सुदर्शनजी ने साँस भरी और बाहर खड़े पेड़ पर अपनी दृष्टि ले जाकर कहा—'बेटी, यह दोष भी भगवान का है। वह स्वतः ही इस माया का खेल-खेलता है। जीवों को कर्मों के भोग पाने के लिए विवश करता है। यदि ऐसा कोई भगवान है, तो वह मुझे पत्थर से अधिक और कुछ नहीं लगता। अराजकता का साम्राज्य उसी ने निर्मित किया है। भगवान इस इंसान में अहमन्यता और अनुदारता का विकास करता है। भगवान है तो मैं आज कहता हूँ कि वह भी पत्थर है, पथरीले इन्सान को जन्म देता है···इन्सान को कठोर विषम बनाता है।'

कमला ने कहा—'धनिक के घर कुत्ता भी आराम करता है। वह भी सुखोपभोग का जीवन पाता है।'

सुदर्शनजी बोले—'इस धरती पर इन्सान कितना दीन और याचक बना है, इसका प्रमाण मैंने कल भी देखा कि बच्चा कुत्ते के मुँह से रोटी का टुकड़ा छीन रहा था। फलस्वरूप, कुत्ते ने उसके हाथ में काट खाया। वह बच्चा जरूर ऐसे माँ-बाप का था कि जिनके पास वस्त्र और अन्न नहीं। वह स्वतः ही दीन और कृषगात बना था।'

कमला ने कहा—'पिताजी, यह अवस्था का अन्त नहीं है। कोई छोर नहीं। इसी गाँव में ऐसे अनेक परिवार हैं कि जिनके यहाँ एक समय भी ठीक से भोजन का आधार नहीं। जाड़ों में ओढ़ने के लिए वस्त्र नहीं। रहने के लिए मकान नहीं।'

सुदर्शनजी ने ठण्डी साँस भरी और छोड़ दी। उनका मन आकुल बन गया।

कमला बोली—'सुनती हूँ विश्व के बड़े राष्ट्र युद्ध की तैयारी में लगे हैं। विश्व का नाश कर देना चाहते हैं। यह अच्छा ही है। आखिर इस इन्सानी जगत से क्या मिला है···युद्ध, प्रतिहिंसा और रोष! राम-राम! इन्सान आज तक पशु रहा है! इतने पोथे पढ़े, दर्शन के ग्रन्थ पढ़े, पर आदमी पत्थर और जड़ ही बना रहा!'

सुदर्शनजी बोले—'युद्ध अवश्यम्भावी है। इन्सान ने जिस सुरन्ध

संसार की रचना की है, तो स्वतः ही, उसका नाश कर देगा—'महा-नाश ?'

कमला ने कहा—'यही हुआ है, यही होगा।'

उसी समय रजनीश बाहर से खेलकर आया। सीधा कमला के पास आकर उससे चिपटता हुआ बोला—'जीजी, हम शहर कब चलेंगे ?

सुदर्शनजी ने उसकी बात सुनी, तो कहा—'क्यों, शहर में रहेगा, तू ? बाबू बनेगा ?'

तुरन्त ही रजनीश बोला—'हाँ, पिताजी, मैं बाबू बनूंगा।'

सुदर्शन जी ने हँसकर कहा—'बाबू के पास पैसा नहीं होता। वह सदा अभाव भरा रहता है, कुए का मेंडक बनता है। बोल, क्या तू भी ऐसा बनेगा ?'

रजनीश बोला—'मैं भी रुपया कमाऊँगा। यदुनाथ बाबू कहते थे कि मैं तुझे बहुत-सा रुपया दे दूँगा।'

बात सुनी, तो पिता के साथ कमला भी हँस पड़ी। वह रजनीश के मुँह पर अपने हाथ कीहथेलियाँ रखकर उसे दुलराती हुई बोली—'पागल कहीं का ! दूसरे के रुपये से बाबू बनेगा।'

रजनीश बोला—'यदु बाबू कहते थे कि हमारे पास बहुत रुपया है, पर भाई नहीं है। वह कहते थे कि उस रुपये में मेरा भी हिस्सा है।'

सुदर्शनजी ने कहा—'लगता है, यदुनाथ का यह रजनीश दोस्त बन गया।'

कमला ने कहा—'यह बड़ा बातूनी है। शहर चलने की बात मुझसे कई बार कह चुका है।'

सुदर्शनजी बोले—'मेरे पुराने साथी मास्टर परमानन्द का भी आज पत्र आया है। वह भी लिखते हैं कि मैं पीछे लौटूँ, शहर में जाऊँ।' उन्होंने कहा—'बेटी, गाँव में रोटी की समस्या है। यहाँ रोजगार नहीं। और शहरी समाज भौतिकवाद में डूबा है। शहर का इन्सान मशीन के साथ युद्ध करता है। इसीलिए उसकी आत्मा में बेचैनी है। पीड़ा है।

ऐसा त्रस्त इन्सान क्या जीवन पा सकता है।'

इधर दो दिन से पण्डितजी स्वस्थ थे। बुखार नहीं था। नगर छोड़ने में जहाँ अन्य कई कारण थे, वहाँ पत्नी की अस्वस्थता मुख्य थी। इसलिए जब गाँव में आकर भी पत्नी स्वस्थ नहीं बनी, नहीं रही, तो तब पुत्री और पुत्र की पढ़ाई का प्रश्न उनके सामने था। कमला अभी पढ़ने की इच्छुक थी। उसके मन में ऐसी बात थी कि वह शिक्षा पाकर समाज का कार्य करेगी। इसलिए पण्डितजी के मन में भी यह बात आती कि क्या गाँव छोड़ दिया जाय ? फिर नगर में पहुँचा जाय ? यदुनाथ भी इसी प्रकार की बात कर गया था।

घर की बात बाहर गयी, तो एक दिन गाँव के चौधरी ने कहा—'पण्डितजी, हम आपको शहर में नहीं जाने देंगे। आप पर गाँव का अधिकार है, यह आपकी जन्म-भूमि है।'

पण्डितजी ने हँसकर कहा—'अभी-ऐसा निश्चय नहीं किया। और यदि गया भी, तो आप यह क्यों समझते हैं कि मैं गाँव को भूल जाऊँगा। शरीर जायगा, तो मेरा प्राण यहीं पर रहेगा।'

जिस समय यह बात चली, चौधरी ने कहा—'पण्डितजी गाँवों का भाग्य बिगड़ गया। अँग्रेज क्या इस देश में आये, गाँव को बरबाद कर गये। वे नगरों को जन्म दे गये।'

पण्डितजी बोले—'चौधरी, दोष हमारा भी है। हमने स्वतः ही जीवन के मार्ग में काँटे बिछाये हैं। युग की माँग है कि अब यन्त्रों का विकास किया जाय। गाँव में अब रोजगार कहाँ है! यहाँ का समाज इसलिए नगरों की ओर जाता है।'

चौधरी ने इस बात को स्वीकार किया। पण्डित जी ने कहा, 'जहालत और अमानवीयता के तत्व यहाँ अधिक हैं। गाँव के लोग भंगी-चमार से दुराव करते हैं। वर्गभेद और जाति भेद की दीवारें खड़ी करते हैं। मूल रूप में यही हमारे विकास का कारण बनी है। यह विष-बेल हमारा नाश करती है।'

आतुर बन कर चौधरी ने कहा—'हमें आप की इसीलिए आवश्यकता है। हमें इन्सान बनने का उपदेश दीजिये। हमारा पथ-प्रदर्शन कीजिये।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'चौधरी, मानवीयता की बात अधिक बड़ी नहीं है। बात अपने स्वार्थ की है। दूसरे के लिये अपना त्याग करें, तो समस्या अपने आप सुधर सकती है। लेकिन इतना करने की किसी में क्षमता नहीं। अब हवा बदली है, इनसान बदला है, ये अधिकार पाने की इच्छा सभी में है। एक भंगी ने भी राजपूत का खून कर दिया, आखिर क्यों ? कानून भले ही उसके अन्तकाल में न उतरे, परंतु मानवीयता उतर सकती है। मलखान राजपूत ने उस भंगी की युवा लड़की को छेड़ा, बुरी नीयत से देखा, बात यही तो थी। अब तुम कानून के द्वारा उसे दण्ड दो, फाँसी दो, लेकिन उस प्रतिक्रिया की भावना है, वह क्या मिट सकती है।'

चौधरी ने कहा—'निःसन्देह, वह बोला—'पण्डित जी, आज कल किसान बेकार हैं, खेतों में काम नहीं है, आप चौपाल में बुलाकर समझाइये। कुछ सुधार का काम कीजिये।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'मैं कुछ करूँगा।'

चौधरी ने कहा—'आदमी के पास विवेक हो, सदाशयता का भाव हो, तो वह चल सकता है। स्वयं भी शाँति पा सकता है। गाँव में झगड़े, और चोरी की वारदातें बढ़ रही हैं। यह इसीलिए तो कि लोग भूखे हैं, दरिद्र हैं। आये दिन लोगों के खेत कटते हैं।

पण्डित जी ने कहा—'जमीन के मालिक घर में बैठते है और जो उस जमीन से अन्न पैदा करते हैं, मेहनत करते हैं, वे भूखे मरते हैं।'

जिस दिन चौधरी तथा अन्य लोगों से पण्डित जी की बात चली, तो उसी दिन पण्डित जी को यदुनाथ का दूसरा पत्र मिला। उसने अपने पिता का तो उस पत्र में उल्लेख नहीं किया, परन्तु प्रसंगवश

इतना अवश्य लिखा कि मानव का कुटुम्ब आर्थिक विकास के साथ जहाँ परस्पराश्रित बना है, वहाँ मन और मस्तिष्क से दूर-दूर भी होता जा रहा है। और इसका कारण कुछ और भले ही हो, एक यह अवश्य है कि आर्थिक सन्तुलन विक्षुब्ध बन गया। धनिक अधिक पैसे वाला बन गया और निर्धन और अधिक पमाश्रित तथा अभावग्रस्त हो गया। फलस्वरूप, इस दास-वृत्ति ने मनुष्य को झिंझोड़ दिया है। उसी पत्र में उसने फिर सुदर्शन जी को नगर लौटने के लिए प्रेरित किया था।

जब सुदर्शन जी संध्या समय भोजन कर रहे थे। तो उन्होंने कमला को यदुनाथ के पत्र का समाचार दिया। तभी उन्होंने कहा—'यह युवक अवश्य ही किसी और जीवन की कल्पना करता है। मुझे यदुनाथ के द्वारा समाज का कल्याण भी होता दीखता है।'

उस समय कमला ने अपना मत नहीं दिया। परन्तु जब रात्रि में उसने यदुनाथ का पत्र पढ़ा, तो तभी उसके मन में विचार उठा था कि सचमुच, यह यदुनाथ किसी और लोक की कल्पना करता है। सोने-चाँदी से खिलवाड़-करने वाला समाज मानव की बात सोचता है।

पण्डित जी ने पूछा—'पत्र पढ़ लिया ?, यदुनाथ के मनोभाव को समझा ?' वह बोले—'पिता के धन का यह प्रतिनिधित्व सही कर सकेगा। उस सम्पदा को लुटा देगा। पिता ने समाज को धोखा दिया, छल और कपट से रुपया उपार्जित किया, तो पुत्र सदाशय बन कर उसे समाज के चरणों में उँडेल देगा।'

कमला ने कहा—'पिता जी, यदुनाथ की यह भावना क्षणिक है, इसमें बल नहीं। मुझे भरोसा नहीं कि ऐसे पिता का पुत्र उस अतुल सम्पदा की अनेक से मुंह मोड़ लेगा। उसे भी धन का मोह होगा।'

पण्डित सुदर्शन ने बात सुनी, तो पुत्री की ओर मुँह नहीं किया। जिस अन्धेरे की ओर वह देख रहे थे, उधर ही आँखो को फैलाये पाया।

कमला ने कहा—'अन्ततः आदमी का आदर्श और है, व्यवहार

और। यही आदमी की परम्परा है। यही दर्शन है।' वह बोली—'ऐसा यदुबाबू भी नहीं मानते कि धन त्याज्य है, उपेक्षा की वस्तु है। वह भी उसका विकास चाहते हैं। समाज और देश को धन की आवश्यकता है, वह यह भी अनुभव करते हैं।'

सुदर्शन जी ने अन्धेरे की ओर से आँख हटाकर जलते हुए दीपक पर टिका दी थीं। वह उसकी ऊंची लौ देख रहे थे। उस दीपक से आले में कितनी गहरी स्याही जम रही थी, उसे भी घूरने लगे थे।

कमला बोली—'इस आयु के युवक सदा ही अल्हड़, और खेल-कूद का जीवन पसन्द करते हैं। ऐसी ही भावना व्यक्त करते हैं। वे जवानी की उमंगों में बहते हैं। हवा में उड़ते हैं।'' उसने कहा—'मेरे मन में है कि यदुबाबू आगे चल कर बदलेंगे। पिता के समान, भोग और ऐश्वर्य पसन्द करेंगे। धन का जो उपयोग है, उसे क्या वह भूल सकेंगे। वह अपने मकान और कारखाने समाज को दान नहीं कर देंगे।'

उसी समय झटका-सा खाकर सुदर्शन जी ने पुत्री की ओर देखा। उन्होंने जैसे पुत्री के मुँह पर आये भावों को पढ़ लेना पसन्द किया। एक दिन पूर्व वही कमला उस यदुनाथ की प्रशंसा करती थी, परन्तु वही जब विरोधी व्यवस्था में दिखायी दी, तो वह बोले—'बेटी, तुम यदुनाथ के विरुद्ध हो। परन्तु मेरा मन कहता है कि वह उदार रहेगा। समाज का सेवक बनेगा। वह अपना घर बाँट भी सकेगा। भ्रम में नहीं तो मैंने उस युवक को समझा है। वह मेरे पास यहाँ तक आया, इससे भी मेरी धारणा को बल मिला है।'

कमला ने रुक्ष बन कर कहा—'यह पुष्ट आधार नहीं। धनिक-पुत्र को देखने का यह सही दर्पण नहीं। आप यह क्यों भूलते हैं कि साँप का बेटा साँप नहीं बनेगा। निःसन्देह वह फूटकार न देगा, समय पाने पर काट भी लेगा।'

मानो पुत्री की इस बात से पण्डित जी को धक्का लगा। फिर भी

उन्होंने कहा—ऐसा मत मैं नहीं रखता। साँप भी अपना स्वभाव छोड़ता है। मैंने ऐसे सापों को और आदमियों को देखा है।'

कमला ने कहा—'यह आप का मत है, सभी का नहीं। अभी तक तो ऐसा ही निभता और दीखता आया है।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—हिरण्यकश्यप का पुत्र प्रह्लाद बना। साधु-स्वभाव कंस का पिता कैसा पुत्र पा गया। रावण का पिता भी ऋषि था। वह तो संस्कारों की बात है, बेटी,' वह बोले—'पर यह विवाद का विषय नहीं। यदुनाथ अच्छा बने या बुरा, हमें क्या लेना-देना है। हमारा और उसका मार्ग जुदा है। हममें कोई समता नहीं। दो मत नहीं।'

कमला ने हँसकर कहा—'आप ही कहते हैं। आपको ही उसकी चिन्ता है।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा— 'हाँ बेटी! बचपन में वह मेरे द्वारा पढ़ाया गया है। मेरे मन का स्नेह उसे प्राप्त हुआ है। मैंने उस बालक यदुनाथ को समाज का वास्तविक दर्शन कराया था। नगर में रहते मैं जो कुछ करता था, वह उस यदुनाथ को बताने और दिखाने में समर्थ बना था। मैं नदी के सुनसान तट पर बैठ कर देर-देर तक उने बताता कि मनुष्य क्या है'''इसका दर्शन क्या'''

कमला हँस कर बोली—'ऐसा तो आपने और भी बच्चों के साथ किया था। मुझे पता है माँ खाना लिए बैठी रहती और आप बच्चों को मानवीयता का पाठ देते थे। आप उन बालकों के कोमल मन में अनुभूति और भावना का बीज बोना चाहते थे।'

मानो निहाल बन कर पण्डित सुदर्शन बोले—'बेटी, मेरा यही कर्तव्य था। मैं उनका अध्यापक था। गुरु था। मार्ग दर्शक बना था।'

कमला बोली—'पिता जी, यह मनुष्य परिस्थितियों का दास है। पैसा अकारण नहीं। इसका ध्येय है, एक सार है। जिस व्यवस्था के

हेतु इसका निर्माण हुआ है, मनुष्य उसे भूल गया। वह सुकड़, कर अपनी सीमा में हो गया। बोलिए, मनुष्य व्यापक कहाँ रहा। वह स्वयं दुर्गम और विषम बना है। वह पैसे को दाब कर बैठा है।'

पण्डित सुदर्शन ने अपना मत नहीं दिया। उन्होंने भी मौन भाव पुत्री की बात का समर्थन करना पसन्द किया। क्योंकि सत्य वही था, जैसे शिव।

दस

लेकिन रात के समय, जब गाँव का चौकीदार पण्डित सुदर्शन के मोहल्ले में 'जागते रहो' की आवाज लगा रहा था, तो तभी एकाएक कमला की आँख खुल गयीं, कमरे में अन्धेरा था, बाहर भी अन्धेरा था। उस अन्धकार-भरे मकान में चारों ओर आँख पसार कर जब कमला ने देखने का व्यर्थ प्रयास किया, तो लगा कि उसका दिल धुक्-धुक् कर रहा है। उसके पास सोता हुआ रजनीश नींद में लम्बी-लम्बी साँसें ले रहा था। वह गहरी नींद में सो रहा था। परन्तु कमला की एक बार आँख खुलीं, तो लग नहीं सकीं। वह करवट बदलती रही। स्थिति यह थी कि सोते हुए जिस प्रकार का स्वप्न देखा, तो उसी का छाया चित्र उसके मस्तिष्क में उतर आया था। वह भयंकर स्वप्न था। करुणा से पूर्ण। उस अवस्था में ही, जब कमला देर तक नहीं सो सकी, तो उसने चाहा कि उठकर बैठ जाये। बाहर जाये। क्योंकि उस समय कमरे में गरमी थी। उसके कानों पर मच्छर भी भिनभिना रहे थे। हवा बन्द थी। आसमान में छोटे-छोटे बादल भी दिखाई देते थे। यद्यपि वर्षा का मौसम बीत रहा था, फिर भी, बादल आते और जाते थे। बाहर पेड़ पर कभी-कभी पक्षियों के पर फड़फड़ाने का स्वर आता और लोप हो जाता। वैसे चारों ओर सन्नाटा था। गाँव के बाहर जो तालाब था, तो उसके किनारे पर बैठा हुआ चकवा दूसरे किनारे पर बैठी हुई अपनी प्रियतमा चकवी को पुकार रहा था। जैसे पास आने का निमन्त्रण देता था। उस समय निस्तब्ध प्रकृति मानो स्वयं मधुर नींद के खुर्राटे लेने

लगी थी ।

उसी समय कमला ने स्वप्न की बात ली और अपने आप बोली, जो कुछ देखा, वह अच्छा नहीं था । शुभ नहीं । स्वप्न वीभत्स था । उसने कहा—यदु बाबू को मिल के मजदूर मार देंगे, ऐसा अशुभ सपना देखने का अर्थ क्या था ! और कमला को सपना आया कि राय जानकी-दास की मिल के मजदूरों ने विद्रोह कर दिया । जब उनका पुत्र उन विद्रोही कारीगरों को समझाने का प्रयत्न करने लगा, तो उसी समय एक मजदूर ने उसके पेट में छुरा घोंप दिया ।

संयोग से, पण्डित सुदर्शन ने करवट बदली । उनकी भी आँख खुलीं । जब पास की चारपाई पर कमला को जागती पाया, तो उन्होंने कहा—'बिटिया—'

कमला ने कहा—'जी !'

'क्यों नींद नहीं आई !'

कमला ने कहा—'पिता जी मुझे ऐसा अशुभ और भयावना स्वप्न दिखायी दिया कि जाग गयी । फिर आँख नहीं लगीं ।'

पण्डित सुदर्शन ने अपना मुँह तकिये पर ठीक से रखा और पूछा—'कैसा स्वप्न था ?'

कमला ने कहा—'अचरज यह है कि ऐसा स्वप्न क्योंकर मेरे मानस पर उतर आया । मेरे समक्ष ऐसी कल्पना भी नहीं थी ।' वह बोली—स्वप्न था कि नगर में राय जानकीदास की मिल में हड़ताल हुई । उसी समय एक मजदूर ने बाबू यदुनाथ की हत्या कर दी । देखिये तो, कैसा ऊँटपटाँग सपना था । निरा बे सिर-पैर का ।'

पण्डित सुदर्शन ने बात सुन ली, परन्तु तुरन्त ही अपनी ओर से कुछ नहीं कहा । उस सपने के अन्तराल में उन्होंने अपने को डुबो दिया ।

किन्तु कमला ने कहा—'स्वप्न कभी-कभी सत्य भी अच्छे नहीं होते । मन की दुर्बलता के सूचक होते हैं । मेरा मत है कि वास्तविकता को भी नहीं छूते ।'

खाँस कर, सुदर्शन जी बोले—'स्वप्न कभी-कभी सत्य भी होते हैं।' वह उठकर बैठ गये और कहा—दिया जला लो। घड़ी देखो कि क्या बजा है। प्रातः भी होने वाला है।'

कमला ने दीया जलाया। घड़ी देखी तो चार बजा था।

तभी साँस भर कर सुदर्शन जी बोले—'तुम्हारा स्वप्न चिन्ता का विषय भी बन सकता है। कभी-कभी स्वप्न किसी सत्य का उद्घोष करता है।' उन्होंने कहा, 'बेटी, भगवान करे कि तुम्हारा सपना झूठा सिद्ध हो। परन्तु आज हमारे देश की जो स्थिति है, उसमें इस प्रकार के करुण और रोमाँचक काण्डों का होना असम्भव भी नहीं है। प्रतिक्रिया-वादी शक्तियाँ सिर उठा रही है। देश में धनिक मारे जा रहे हैं, लूटे जा रहे हैं। डाके भी खूब पड़ते है।'

कमला ने कहा—'पिता जी, डाका डालना भी अमानवीय अपराध है। घोर नृशंसता का प्रतीक। इन्सान का जंगलपन और क्रूर भाव इसी रूप में प्रगट होता है। डाकू धन और प्राण दोनों लूटता है। वह समाज का सबसे बड़ा अपराध है।'

सुनकर, सुदर्शन जी के मुँह पर एकाएक ही अव्यक्त भाव उतर आया। जिससे उनके मन का रोष और करुणाभाव अनायास ही व्यक्त हो गया। उस अवस्था में ही उन्होंने कहा—'बेटी, चोर और डाकू का निर्माण भी किया जाता है। प्राणी के रूप में जो बच्चा आता है, वह तो कोमल भावनाओं से भरा होता है। लेकिन इस धरती के घात-प्रतिघात आदमी को सभी कुछ बना देते हैं। वही तो देवता में दानव का रूप परिवर्तित करते हैं। आँधी के समान परिस्थितियाँ आती हैं और इन्सान को कहीं-से-कहीं ले जाकर पटक देती हैं। चोरी और डाका डालने की सीख तो इन धनपतियों द्वारा दी जाती है।'

खिन्न और व्यस्त भाव में कमला ने कहा—'पिता जी, यह भी अजीब समस्या है। घिनौनी है। कुटिल है। धनपति क्या करते हैं यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु अपराध करने की वृत्ति भी मस्तिष्क की

एक उपज है, जो दूषित वातावरण की प्रतिच्छाया है। ऐसा कौन है, जो अपना पैसा लुटा देगा। घर में सुई हो, तो उसे देते भी जी दुखेगा।'

उस समय पण्डित सुदर्शन जी विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे। इसलिए चुप रह गये। यह स्पष्ट था कि वह पुत्री की बात से सहमत नहीं थे।

किन्तु कमला ने फिर कहा—'सब की विषमता का समाधान न चोरी करने में है, न डाका डालने में। किसी का वध कर देने से भी क्या अच्छे मनुष्य का निर्माण हो पाता है। कातिल का उद्देश्य पूरा नहीं होता। यह सब क्षणिक आवेश में होता है। निरुद्देश्य।'

पण्डित सुदर्शन का मुँह उस समय बाहर की ओर था। उसी ओर देखते हुए उन्होंने कहा—'यह तो ठीक है। लेकिन आदमी छोटा रास्ता पकड़ता है। प्रतिशोध और प्रतिकार की भावना का भी उग्रता में जन्म होता है, आदमी का क्रोध उस समय अपनी सीमा लाँघ जाता है कि जब उसके मानस पर चोट लगती है। तभी वह तिलमिलाता और तड़पता है।'

कमला ने कहा—'तो यह कहिये विवेक साथ छोड़ देता है। आदमी अन्धा बनता है। बताइये, इस अव्यवस्था से क्या समाज का निर्माण हो सकता है। समाज के लिए धन चाहिए। उद्योग-धन्धे चाहियें। जब इस प्रकार लोग मरेंगे, मारे जायेंगे, तो कौन मूर्ख उस क्षेत्र में उतरेगा। ऐसे तो समूचा देश त्रस्त और दुःखी बनकर पशुओं के आधीन हो जायेगा। इस बर्बरता का क्या कहीं अन्त होगा!'

उसी समय पण्डित सुदर्शन ने देखा कि बाहर कोई खड़ा है। जैसे उनकी बात सुन रहा है। उस समय दिन निकल आया था। तभी उन्होंने कहा—'कौन?'

'मैं हूँ मलखान। पाय लागूँ महाराज!'

'अच्छा, तुम मलखानसिंह। तो बाहर कैसे खड़े हो, भाई! अन्दर आ जाओ।'

मलखान ने कहा—'बाप-बेटी की बात में तीसरा क्या अच्छा लगेगा। कमला बिटिया को भी पसन्द नहीं आयेगा।'

कमला ने कहा—'चाचा, तुम मुझे दोष देते हो।'

मलखान ने कहा—'नहीं बिटिया। तेरी बातों को बड़ा मानता हूँ।'

कमला हँसती हुई उठी और दरवाजा खोल आई। मलखान अन्दर आ गया। उसके साथ एक बड़ा गठ्ठर था। वह पूरा फौजी जवान बना था। हाथ में बन्दूक थी। देखते ही कमला ने कहा—'लो, यह कहीं से डाका डाल लाये हैं। लोग रात में सोते हैं और ये सोते हुए लोगों को इस रात की अँधियारी में लूटने निकलते हैं।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'आज अकेले हो, मलखानसिंह।'

मलखान ने कहा—'पण्डित जी, साथी अपने-अपने रास्ते चले गये।'

'तो क्या कहीं पास गये थे ?' पण्डित सुदर्शन ने प्रश्न किया।

मलखानसिंह ने निःसंकोच कह दिया—'हाँ, बिलकुल पास।' यह कहते हुए उसने पण्डित जी को लक्ष्य किया और बोला—'आज बन्दूक की एक भी गोली नहीं खर्च हुई। धरती पर किसी का खून नहीं गिरा। चुपचाप ही हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया।'

घूर कर पण्डित सुदर्शन ने मलखान को देखा और कहा—'कोई बुद्धिमान होगा। परिस्थिति को समझ चुका होगा।'

मलखान ने कहा—'पण्डित जी, जिस व्यक्ति के घर हम गये उसने पाँच और दस रुपये बीघे में लोगों की जमीनें गिरवीं रखी थीं। किसी समय उसके पास एक खूड नहीं था, पर आज हजार बीघे का जमींदार है। गाँव भूखा मरता है और उसकी चिलम भरता है। उसने अपना पैसा प्राप्त करने के लिए लोगों के बैल और मकान तक कुर्क करा लिए थे।'

इतना सुनते ही, पण्डित सुदर्शन ने कमला की ओर देखकर कहा—'सुना, बेटी !'

कमला ने जैसे तड़प कर कहा—'सुन लिया, पिता जी !' वह

बोली—'तो क्या आप भी इसका समर्थन करते हैं। आप चाहते हैं कि पाप और व्यभिचार बढ़े, उसी का प्रतिशोध लेना पसन्द करते हैं।'

पण्डित सुदर्शन बोले—'मैं क्या चाहता हूँ, वह बताना बेकार है।'

मलखान बोला—'मैं बाहर खड़ा हुआ आप दोनों की बात सुन रहा था। यह जानता हूँ कि आपके समान इस बिटिया को भी हमारा धन्धा पसन्द नहीं आता।'

तड़प कर कमला ने कहा—'तब भी करते हो! अपने स्वार्थ का पेट भरने के लिए दूसरे का खून करना क्या न्याय है। यह तो सरासर बर्बरता है!'

मलखान बोला—'बिटिया, मैं भी इसे पसन्द नहीं करता। पर इतना मानता हूँ, खून और डाका डालना धनपतियों ने सिखाया है। अन्तर इतना है कि वे जहर की शीशी पर शर्बत का लेबिल लगाते हैं और तेज छुरी को रेशमी रुमाल में रखते हैं। वे शितिक्ष और सम्भ्रान्त समाज से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु जिस तरह वे समाज को लूटते हैं, कानून का आश्रय पाते हैं, उसे तुम बाप-बेटी जानते हो। हम एक व्यक्ति का खून करते हैं और वे समूचे समाज के पेट पर लात मारते हैं।'

कमला ने कहा—'यह तर्क नहीं। अपने पाप को न्याय कहने की बात है। ऐसे दुनिया नहीं चलेगी। जब दूसरे की बहू-बेटी की लाज छीनकर आते हो, जबरदस्ती उसके जेवर उतारते हो, यदि ऐसा ही तुम्हारे घर में हो, तो! बोलो, तब क्या कहोगे! चाचा, आदमी बनने की बात सोचो। इस इन्सान के साथ न्याय करो।'

मलखान ने कहा—'बेटी पण्डितजी जानते हैं कि मेरी जमीन किस तरह गयी। जमींदार ने मुझे न दीन का रखा, न दुनिया का। मैं डाकू बना नहीं, बनाया गया।'

किन्तु कमला ने तब भी कहा—'आदमी कलुषित भावना को छुपाने के लिए आदर्श की दुहाई देता है। अनेक बहाने करता है।' वह मलखान

से बोली—'भगवान से पाये इस जीवन का तुमने नाश कर दिया। जिस दिन पकड़े जाओगे, तो फाँसी पाओगे। जेल में सड़ोगे।'

मलखान ने पण्डित सुदर्शन की ओर देखा और मुसकरा दिया। उसने उन्हीं को लक्ष्य करके बात का रुख बदला—'पण्डितजी, मैं आपकी कोई सेवा नहीं कर पाता। आज आज्ञा दें। इस पोटली में से कुछ अवश्य ले लें।'

पण्डित सुदर्शन बोले—'भाई, मैं गाँव में पड़ा हूँ, उन्हीं लोगों का तो सहारा लेता हूँ। जब भी आवश्यकता होगी, तो तुम्हें भी कष्ट दे सकता हूँ।'

मलखान बोला—'मैं आपका सेवक हूँ।'

कमला ने कहा—'आप भगवान के सेवक बनें। इन्सानियत को समझें। इन्सान की रक्षा करें।'

मलखान बोला—'वह मन्दिर का पुजारी तो तुमने देखा है। उस का घर भी देखा होगा। बेचारा रात-दिन मन्दिर की सेवा करके भी भूखा रहता है। उसकी लड़की युवा है। विवाह योग्य है। इस गठरी का सामान सब उसी का है। मेरे घर इसमें से कुछ नहीं जाना है।'

पण्डितजी बोले—'तुम्हारी यह उदारता तो चिर-परिचित है। भली है।'

मलखान बोला—'पण्डितजी, मैं आज भी मानता हूँ कि सभी-कुछ भगवान का प्रसाद है। लेकिन जिन निर्धनों को भगवान का उपासक बनने का आदेश दिया जाता है, उससे क्या उनका पेट भरता है। यह मन्दिर का पुजारी रात-दिन सिसकता है।'

पण्डित सुदर्शन ने साँस-भरी—'हाँ, यह तो सच है। भगवान का सम्बन्ध हमारी भावना से है, पैसे से नहीं और पैसा पाने के लिये उन सरीखा दूसरा 'मलखान' बनना ही आज के इन्सान को सुगम लगता है।'

मलखान ने कहा—'पण्डितजी, इस बेला में आज एक बात कहे

जाता हूँ, भूलियेगा नहीं। मैं आज से डाका नहीं डालूँगा। मेरे साथियों ने जिस लड़की के बदन से जेवर उतारे, उसका अभी विवाह हुआ था। कमला बिटिया ने जो बात कही, वह सच ही थी। मुझे भी आज लगा कि जैसे मेरी बेटी को किसी ने लूट लिया। उस लड़की के रोने का स्वर भी मैं अभी तक नहीं भूल सका। अब आप देर तक मुझे न देखियेगा। पालागन।' मलखान चला गया।

कमला ने फिर द्वार बन्द कर दिया। प्रातः के झुटपुटे में कुछ किसान अपने हल ले जाने लगे थे। कुत्ते भोंक रहे थे। जब कमला फिर अपनी चारपाई पर बैठी, तो सुदर्शनजी बोले—बेटी, तुम क्रोध अधिक करती हो। भावना में भी बहती हो।' उन्होंने कहा—'यह मलखान तुम्हारी बात तो सुन गया। परन्तु जानती हो, यह अपने डाकू जीवन में कितने खून करने में समर्थ बना और अचरज की बात तो यह कि पुलिस फिर भी इसे नहीं पकड़ती। यह छुपता भी नहीं। यह अपने डाके का धन पुलिस को खिलाता है। देखो तो, यह समाज की कैसी विवशता है!'

कमला ने कहा—'पुलिस डाकुओं की सरदार है। यह धरती नर्क बनी है। समाज के खुले चौराहे पर हत्याएँ होती हैं?'

पण्डितजी बोले—'यह मलखान आज जो कुछ कह गया, डाका छोड़ देने की बात कर गया, मैं उस पर भरोसा नहीं कर सकता। यह गंगा में खड़ा होकर कहे, तो भी नहीं मान सकता।'

कमला बोली—'ऐसे व्यक्तियों से डर लगता है। गाँव के नाते इसे 'चाचा' शब्द से सम्बोधित करना भी अरुचिकर प्रतीत होता है।'

पण्डितजी ने कहा—'यह स्वाभाविक है। परन्तु कम्बख्त पढ़ा-लिखा है। भावना को समझता है। लोगों की मदद करता है।'

कमला ने कहा—'फिर भी समाज का कलंक है। नर-पशु है।'

साँस भर पण्डितजी बोले—'यह भी आदमी बनकर आया और जानवर बन गया।'

उस समय प्रात: की ठण्डी हवा कमरे में आने लगी थी। पण्डित सुदर्शन को फिर कमला के स्वप्न की बात याद हो आयी। उसी को लेकर उन्होंने कहा—'मैं आज नगर को पत्र लिखूँगा। राय जानकीदास की मिल में झगड़ा हो सकता है। विश्व का समाज आज करवटें बदल रहा है। त्रस्त और अभावपूर्ण मानव बेचैन बना है।'

कमला ने कहा—'लेकिन मुझे आश्चर्य है कि ऐसा सपना कैसे आ गया।'

पण्डितजी ने कहा—'रात तुमने यदुनाथ की आलोचना की थी। तुम्हारे मन में उसके प्रति उपेक्षा थी!'

'राम-राम! मैं यदुबाबू का ऐसा विनाश तो नहीं चाहती। वह स्वप्न अच्छा नहीं।' कमला ने कहा—'आप पत्र जरूर लिखें। उत्तर भी जल्दी प्राप्त करें।'

पण्डित सुदर्शन ने बिस्तर से उठते हुए कहा—'हाँ, पत्र लिखूँगा। यदुनाथ के पत्र का उत्तर भी दूँगा। तुम्हारे स्वप्न का भी उल्लेख कर दूँगा।'

चंचल बनकर कमला ने कहा—'ऐसा नहीं······कदापि नहीं, पिताजी!'

पण्डितजी बाहर चले गये। दूर तक उनके डण्डे की खुद्-खुद् के स्वर आते रहे।

ग्यारह

राय जानकीदास और उनके पुत्र यदुनाथ में पण्डित सुदर्शन के नाम पर जिस प्रकार का विवाद चला, वह अधिक महत्वपूर्ण नहीं था किन्तु जब यदुनाथ के विवाह का प्रश्न उस घर में खड़ा हुआ, तो विद्रोह और असन्तोष का वातावरण अनायास ही बन गया। जब यदुनाथ के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा गया, तो उसने कह दिया कि वह अभी विवाह नहीं करेगा और राय जानकीदास इस बात पर कटिबद्ध थे। देर से उनके मन में यह अभिलाषा थी कि वह पुत्र का विवाह ठाट से करेंगे। क्योंकि उस घर में यही एक ऐसा आयोजन था कि जिसको करके वह अपने ठाट-बाट का प्रदर्शन कर सकते थे। लेकिन जब उसकी इच्छा के अनुरूप लड़की वाला मिला, तो उन्हें यह सुनकर आघात पहुँचा कि स्वयं पुत्र ही विवाह करने के लिए प्रस्तुत नहीं था। उनकी यह भी कठिनाई थी कि वह वृद्ध हुए, पुत्र जवान हुआ। उनकी अभिलाषा थी कि पुत्र-वधू घर में आये, तो वे भी अन्य गृहस्थियों के समान पोते को देख सकते थे, घर की शोभा में परिवर्तन पा सकते थे।

जब कई दिन तक यह विवाह का प्रश्न उस घर में चलता रहा, तो एक दिन स्वयं यदुनाथ ने अपनी माँ से कहा—'मैं विवाह अपनी इच्छा से करूँगा। यह मेरे स्वार्थ का प्रश्न है। पिताजी और तुम मुझे इस विषय में स्वतन्त्रता दो, यही चाहूँगा।'

पुत्र की बात सुनकर, माँ ने एकाएक उसकी अभिप्राय नहीं समझा। वह माँ थी, अधिकार मानती थी, अतएव उसने कहा—'तो तू विवाह

अपनी इच्छा से करेगा ? हमारी बात का कोई मोल नहीं होगा ?'

यदुनाथ माँ की बात सुनकर विचलित बन गया। उसने कहा—'यह तुम्हारी बात के मोल का प्रश्न नहीं है, माँ ! मेरे जीवन का प्रश्न है। बोलो, तुम्हारा पुत्र अपने जीवन में सुखी बने, क्या तुम्हें यह रुचिकर नहीं लगेगा ? किसी समय, इस देश में विवाह बच्चों के कर दिये जाते थे, पर अब वह समय नहीं रहा। अब बड़ों के सम्बन्ध होते हैं। लड़के के समान लड़कियाँ भी अपने साथ कुछ कामनाएँ रखती हैं। वे जब नहीं फलतीं; तो उस घर में विरोध होता है। उस दम्पति का जीवन क्लिष्ट बन जाता है।'

माँ ने कहा—'अरे, तू जिन घरों की बात करता है, वे घर और हैं···आदमी भी और; तेरे लिए जिस घर की लड़की देखी है, वह बड़ा घर है। लड़की रूप की परी। हमें धन की अभिलाषा नहीं, सुयोग्य बहू की है। और वही तेरे लिए देखी है।'

यदुनाथ ने कहा—'माँ, उस बड़े घर की लड़की मुझे नहीं चाहिए। तुम तो देर तक रहोगी नहीं, जीवन का सम्बन्ध मुझसे रहेगा। इसलिए यह विवाह का प्रश्न मुझ पर डाल देना ही, तुम्हारे लिए शुभ होगा। यह भरोसा रखो, मैं तुम्हारे लिए बहू जरूर लाऊँगा। समय आते ही, तुम्हारे समक्ष ला खड़ी करूँगा।'

चकित बनकर माँ ने कहा—'अरे, तू कैसी बात करता है, रे ! चुपचाप ही बहू ले आयेगा। समाज और बिरादरी को भी न बताएगा।'

यदुनाथ मुसकराया—'माँ, समाज और बिरादरी के लोग स्वयं ही देख लेंगे।'

इतनी बात से माँ ने समझ लिया कि इस यदुनाथ ने कोई लड़की देखी है, वह पसन्द की है। पर वह कौन है ? किस जाति की है ? यह प्रश्न उसके मन में स्वभावत: उठ आया। अतएव उसने पूछा—'तो तूने कोई लड़की देखी है ? अपनी बिरादरी में !

यदुनाथ ने कहा—'माँ, मैं जाति बिरादरी का महत्व नहीं मानता।

इस युग में इसका अस्तित्व कोई स्वीकार नहीं कर सकता। सुना नहीं तुमने—जाति-पाँति पूछे नहीं कोई, हर को भजे सो हर का होई ?' औरत की कोई जाति नहीं माँ ! जहाँ गयी, वही बन गयी ?'

माँ ने जैसे आसमान से गिरकर तिलमिलाते हुए कहा—अरे, तू पागल तो नहीं बना है। क्या भंगी-चमार की लड़की इस घर में लाकर बैठानी चाहता है। फिर यहाँ का कोई पानी भी न पीयेगा। जाति का आदमी पास भी नहीं फटकेगा ?'

यदुनाथ हँस दिया—'इस धरती पर शक्ति की पूजा होती है, माँ ! जातिवाद के दिन गये, अब मानववाद को महत्व दिया जाता है।'

माँ ने कहा—'तू मूर्ख है, यही पढ़ा है !'

इसके बाद ही, यदुनाथ माँ के पास से चला गया। किन्तु वह माँ के मन में यह सन्देह अवश्य पैदा कर गया कि जरूर, इस यदुनाथ ने कोई लड़की देख ली है। वह कौन है, किस जाति की है, यह भी उसे पता चल जाता, सन्तोष मिलता।

लेकिन नगर और देश का घटना चक्र जिस तेजी के साथ बदल रहा था, तो उससे राय जानकीदास के मन की स्थिति दुःसह होती जा रही थी। मानो इन्सान का जीवन स्वयं दूभर बन रहा था। विश्व पर युद्ध के बादल मँडरा रहे थे, देश में जाति और धर्म के नाम पर झगड़े चल रहे थे, जिससे सभी विचारवान चिन्तित थे, फलस्वरूप राय जानकीदास भी व्याकुल और खिन्न बने थे। उन्हें लगता कि इन्सान का जीवन असह्य है, भारी है। चारों ओर संकट है अवस्था यह थी कि वह घर में रहते, पहरेदार बन्दूक लेकर पहरा देते। वह शहर जाते, तो संरक्षक साथ होते। मानो वह किसी के मित्र नहीं थे, उनके चारों ओर शत्रु मण्डरा रहे थे। ऐसा हीन और कायर जीवन पाकर भी राय जानकीदास उसे छोड़ देने के लिए प्रस्तुत नहीं थे, वे उसके प्रति गर्वित और मोह से भरे थे।

राय साहब की मिल में एक मजदूर बालक काम करता था। यद्यपि

कानून की दृष्टि से उसकी आयु मिल में काम करने योग्य नहीं थी, फिर भी, वह किसी प्रकार प्रवेश पा गया। एक दिन जब वह लड़का काम से थका हुआ, पेट से भूखा मिल के अहाते में एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ था, तो तभी मिल का मैनेजर उस ओर आ निकला। उस लड़के को बेकार बैठा देखकर वह झल्ला पड़ा। किन्तु अवस्था यह हुई कि मिल मैनेजर को देख लड़का स्वयं डर गया। यदि वह अवसर पाता, तो वहाँ से भाग जाता। परन्तु मैनेजर ने तुरन्त ही, उसके सिर पर आकर खड़े होते हुए कहा—'क्यों बे, यहाँ बैठा है। काम से जी चुराता है। मुफ्त के पैसे पाना चाहता है।'

और लड़का सचमुच ही सहम गया। वह इतना कातर बन गया कि उसका बोल नहीं निकला। जब मैनेजर ने उसके ठोकर मारी तो वह चीख पड़ा और मछली के समान छटपटा गया।

फिर भी मैनेजर चीख पड़ा—'नौकरी से हटा दूँगा।'

अवसर की बात कि इतनी देर में वहाँ पचासों मजदूर एकत्र हो गये। मैनेजर वहाँ से हट गया। वह क्रोध से भरा हुआ, लम्बे पैर रख अपने दफ्तर में पहुँच गया। किन्तु उसके पीछे स्थिति यह बनी कि जिस लड़के के उसने जूते की ठोकर मारी, वह पेट पर लगी। मार भी तेज पड़ गयी। इसलिए लड़का दर्द से तड़पा और मछली के समान छटपटाया। यह बात बिजली के करेंट की तरह समस्त मिल में फैल गयी, मजदूर काम छोड़कर बाहर आ गये। लड़का अस्पताल पहुँचाया गया। दैव की बात कि वह लड़का एक घण्टे में मर गया। मजदूरों ने उस लड़के की लाश का पूरे आयोजन के साथ जनाजा निकाला। उस मृत्यु से पुलिस को भी अवगत कर दिया गया।

यदुनाथ और राय जानकीदास मिल में नहीं थे। लेकिन जब उन्हें सूचना मिली, तो यदुनाथ तुरन्त ही मोटर में बैठकर मिल में पहुँचा। वह अचम्भित रह गया कि उस समय मिल के बाहर मजदूरों की भीड़

लगी थी। पुलिस भी उपस्थित थी। यदुनाथ को देख मजदूर वर्ग चिल्ला उठा, उसने चीत्कार किया कि मिल मालिक हमें मारना चाहते हैं···हमारा खून···

ड्राईवर की इच्छा थी कि वह गाड़ी को मोड़ ले या सीधी मिल के अन्दर ले जाये। किन्तु यदुनाथ फाटक पर उतर गया। वह मजदूरों की भीड़ की ओर बढ़ गया।

उसी समय, मजदूर वर्ग का विद्रोह जो वाणी पर उतर आया, वह कार्यरत भी बन गया। किसी ने यदुनाथ के सिर पर पत्थर मारा और खून बह निकला। वह जमीन पर गिर गया। अवसर था कि यदि पुलिस हवा में गोली न चलाती, तो यदुनाथ मार दिया जाता। और मजदूर चिल्ला रहे थे, हम मालिक और मैनेजर को मार देंगे—इनका जनाजा···' यदुनाथ पर एक पत्थर पड़ा तो और भी पड़े। वह उस भीड़ में कुचल दिया गया। क्षत-विक्षत हो गया। उस अवस्था में ही उसे अस्पताल पहुँचाया गया।

दो दिन हो गये कि राय जानकीदास का मिल नहीं खुला। पुलिस ने सौ के लगभग मजदूर गिरफ्तार कर लिये। यदुनाथ अभी अस्पताल में था। उसके सिर में जो चोट लगी, वह गहरी तो थी ही, मर्मान्तक भी थी। परन्तु उससे भी बड़ी चोट उसके दिल पर पड़ी। उसने प्रत्यक्ष देखा कि मजदूर और धनवान का मेल नहीं हो सकता···एक धरती पर रहने वाला इन्सान सदाशय नहीं बनेगा···

अस्पताल के जिस स्पेशल वार्ड में यदुनाथ पड़ा था, एक दिन झुटपुटे में एक अधेड़ आयु की नारी उसके पास आकर खड़ी हुई। उसकी आँखों में आँसू थे, होठों पर कम्पन। संयोग से उस समय यदुनाथ अकेला था। कुछ देर पूर्व ही उसकी माँ और पिता वहाँ से गए थे। माँ अपने हाथों से यदुनाथ को फलों का रस पिला गयी थी। अतएव, उस समय वह स्वस्थ था। कुछ अन्य सम्बन्धी और मित्र भी वहाँ जाकर लौट चुके थे। अस्पताल की जिस सिस्टर पर यदुनाथ की

देख-भाल का भार था, वह भी उस समय वहाँ नहीं थी। वह सिस्टर अतिशय मधुर और अपने कार्य में कुशल थी। वही उस नारी को यदुनाथ के पास खड़ी कर गयी थी। उसको देखते ही यदुनाथ एकाएक बोला—'तुम—माँ, तुम कौन ?'

किन्तु इस नारी ने आँखों से आँसू बहाते हुए कहा बाबू, अब मैं माँ तो रही नहीं, केवल नारी रह गयी। माँ कहने वाला चला गया। तुम्हारे मैनेजर ने मेरा लड़का मार दिया, या कहूँ कि भगवान ने ही उसे बुला लिया। पर मेरे बच्चे के कारण तुम भी चुटीले बने, इस अस्पताल में आ पड़े, यह देखकर भी मुझे दुःख हुआ। सुनती हूँ कि तुम भी अपनी माँ के अकेले हो,—एक हो! तो भैया, तुम जल्दी अच्छे हो जाओ। अपने घर लौट जाओ। अपनी माँ के पास जाओ। मैंने आज तुम्हारी माँ देखी, आँखों से रोती हुई···पुत्र के लिए दीन बनी हुई···'

यदुनाथ बोला—'माँ, तुम्हारा बेटा चला गया, मुझे इस बात का दुःख है। मेरे चोट लगी, यह अच्छा हुआ। उस चोट से मैं मर जाता, तो और भी अधिक अच्छा था। मैनेजर को या मेरे माँ-बाप को सबक मिलता कि औलाद की ममता क्या है···गरीब की आह क्या ?'

इतना सुनते ही, उस नारी ने जैसे अत्यन्त पीड़ित स्वर में कहा—बाबू, भगवान के लिए तुम ऐसा न कहो। तुम्हारी बड़ी उम्र हो। हम गरीबों का क्या···उस मेरे बच्चे का क्या···हाँ गरीब माँ की औलाद का मूल्य ही क्या।'

तुरन्त ही, यदुनाथ अपने स्वर पर झटका-सा खाकर बोला, 'माँ—'

'बेटा—'

यदुनाथ ने कहा—'मैं दो-चार दिन में ही इस जगह से चला जाऊँगा। तुम मेरे पास आना। मेरी माँ से भी मिलना।'

किन्तु उस नारी ने कहा—'बाबू, मैं कैसे आ सकूँगी। कई दिन से आना चाह कर भी आज आ सकी हूँ। तुम बड़े आदमी हो ना, तो

पहरेदार चारों ओर रहते हैं। वे रोकते हैं।'

यदुनाथ बोला, 'तुम अपना पता बता दो। मैं स्वयं आऊंगा। तुम्हारा बेटा तो चला गया, पर मैं कुछ भी तुम्हारी सेवा कर सका, तो अपने को भाग्यवान मानूँगा।'

सुनकर, नारी ने अपना मत नहीं दिया। उसी समय नर्स ने आकर कहा—'अब जाओ, तुम! सेठ का दिमाग कमजोर है, उस पर बोझ न डालो।'

नारी लौट पड़ी, चली गयी। तभी नर्स ने यदुनाथ के निकट आकर कहा—'तुम्हारा मैनेजर इतना क्रूर कि ठोकर से इस औरत का लड़का मार दिया। ऐसे आदमी को मिल से हटा देना चाहिये।

यदुनाथ बोला—'सिस्टर, जब बुरा समय आता है, तो सभी कुछ हो जाता है। वह मैनेजर हमारा सम्बन्धी है। समझदार भी है। ऐसा होना था, हो गया, समय और भगवान की इच्छा थी।'

सिस्टर बोली—'यह औरत दो दिन से इस कमरे के द्वार पर आती और बैठ कर चली जाती। आज जब मैंने पूछा तो बोली कि मैं सेठ को देखना चाहती हूँ। देखा तुमने, बेचारी गरीब तो है, पर हृदय में दया और ममता रखती है।'

यदुनाथ ने साँस भरी—'गरीब सदा निर्मल होता है। वह दुराव नहीं रखता।'

अस्पताल की नर्स ने कहा—'फिर भी गरीबी पाप है। घृणा है। लोग यही समझते हैं।'

यदुनाथ बोला—'ऐसा बताया गया है और समझा जाता है। लोगों ने गरीबी से उपेक्षा करना सीखा है।'

उसी समय सिस्टर ने जैसे ताना दिया—'बड़े डाक्टर कहते थे यदि आप सरीखे दो-चार मरीज और इस अस्पताल में आ जायें, तो कभी फ़ुरसत न मिले। उनके कमरे में प्रति क्षण टेलीफोन आते हैं। आपकी स्वस्थता के लिये लोग पूछताछ करते हैं।' वह बोली—'देखिये न,

बड़े आदमी की सभी बात पूछते हैं। लोग पैसे वाले की कीमत मानते हैं।' उसने कहा—'और पैसे वाला क्या किसी को दान करता है। गरीब के लिए सभी ओर उपेक्षा और हीनता का भाव दिखायी देता है। जब देखो तब, अस्पताल के द्वार दर्शकों की मोटरें खड़ी रहती हैं—आपको देखने वालों की। उनमें नगर के रईस और अधिकारी तो होते हैं। सच है, धरती पर सभी बैठे हैं। धनिकों का समाज अलग है, गरीबों का अलग। पर देखिये, जिसका लड़का मरा, वह गरीब औरत यहाँ तक आई। भगवान से आपके स्वास्थ्य की कामना कर गयी।

यदुनाथ बोला—'उसकी कामना कीमती है। मेरे लिये बड़ी है।' उसने कहा—'सिस्टर, यह गरीब-अमीर की परिभाषा पुरानी है। इस रोग की जड़ें पाताल तक पहुँची हैं।'

मानो सिस्टर ने रोष प्रकट किया, यह अभावनीयता है···धरती का पाप !'

कठिनाई से यदुनाथ ने कहा—'निःसंदेह ! यह पाप आदमी को मार देगा। निर्धन के हृदय में उठी आग इस धरती को जला देगी।'

उदास भाव में नर्स बोली—'सभी ओर धन की पूजा होती है, इन्सान की नहीं।'

यदुनाथ ने बात सुनी और अपनी आँखों को उस सुन्दर सिस्टर के मुँह पर झुका दिया।

किन्तु सिस्टर के मन में तो उसके मन का रोष ऊपर उठ आया था। उसने फिर कहा—'निःसन्देह इसका परिणाम भयानक है ! मनुष्यता नष्ट हो जायगी। मानवीयता सिसकेगी ?'

यदुनाथ बोला—'तुम अपने जिस रोगी के पास खड़ी हो, ये आत्मीयता से पूर्ण बातें सुना सकी हो, यह मेरा सौभाग्य है। मैं जानता हूँ, मैं धनिक का पुत्र हूँ, इसीलिये लोग मेरे पास आते हैं। तुम भी आती हो। पर मैं यह जानता हूँ कि मुझसे अधिक अधिकार तुम्हारी ममता पाने का वह करते हैं कि जो इस अस्पताल के दूसरे कक्ष में पड़े

हैं। पर तुम भी घिसी-पिटी लीक पर चलती हो। विवश हो।'

सिस्टर तुनक गयी और बोली—'परन्तु मेरा इस रोगी से कोई स्वार्थ नही। मुझे पैसा नही चाहिये।'

यदुनाथ बोला—'ओह' मेरी भोली सिस्टर ! हल्के स्तर पर मत आओ। पैसा तो छोटा है। बात परम्परा की है, उसे तुम भी स्वीकार करती हो।' उसने कहा—'और तुम पैसे की बात करती हो, वह मिले, तो क्या फेंक दोगी ! मिस एलिस, वह पैसा तुम भी स्वीकार करोगी। पैसा कोई बाटता नही, परन्तु पैसावाला ही समाज का पंच बनता है। उसे विशिष्ट माना जाता है और यह सच है कि वह इन्सानियत का गला घोटता है।'

मिस एलिस ने अपने मधुर होठो पर मुसकान लेकर कहा—'सच यही है।' वह बोली—'तुम अच्छे मरीज हो। मन में भावना रखते हो।'

यदुनाथ बोला—'काश, मै गरीब होता ! तब जीवन का सच्चा अनुभव प्राप्त कर पाता।' उसने कहा—'एलिस, जो नारी अभी-अभी गयी, मैं उसके मन का कोलाहल समझता हूँ। अब भी उसकी पीड़ा में डूबा हूँ।'

एलिस ने सूखे होठों से मुसकराया—'उस औरत का जीवन उदास बन गया। सभी कुछ खो गया।' यह कहते हुए एलिस वहाँ से लौट गयी।

कुछ ही देर मे वह फिर आई। उसका कुछ खो गया।' यह कहते हुए एलिस वहाँ से लौट गयी।

कुछ ही देर में वह फिर आई। उसके हाथ में दवा की प्याली थी। देखकर, यदुनाथ बोला—'तुम कड़वी दवा देती हो।'

एलिस मुसकरायी—'आराम करती है। कड़वा आदमी भी अच्छी होती है।'

यदुनाथ ने दवा ले ली और पी गया। वह धूमिल हो आयी सन्ध्या की ओर देखने लगा।

एलिस बोली—'जब तुम चले जाओगे, तो मुझे दो-चार दिन अटपटा लगेगा। ऐसा रोगी क्या इस अस्पताल में बार-बार आयेगा।'

यदुनाथ हँस दिया—'इतना सुख पाने के लिये मुझे बीमार बनना बुरा नहीं लगेगा।'

एलिस ने अपने होठों पर उँगली रखकर कहा—'चुप ?'

इतना देखा, तो यदुनाथ एक नए भावनालोक में पहुँच गया।

एलिस ने कहा—'आज आपकी माताजी कहती थीं कि मेरा यदुनाथ सँकोची है, ध्यान रखना। पर जब वह कल आयेंगी, तो मैं कह दूँगी, तुम्हारा खयाल गलत है। अपनी सेवा में लगी नर्स को भी सीख देते हैं और मैं समझती नहीं क्या, लाखों के धन से खेलने वाले क्या मूर्ख या अनजान कहला सकते हैं।'

हँस कर यदुनाथ बोला—'तुम कुछ कहोगी, तो माँ को भरोसा नहीं होगा। माँ ने मुझे पूरी तरह समझ लिया है।'

एलिस ने कहा—'इस विश्वास की मैं कद्र करती हूँ।'

यदुनाथ बोला—'मेरी माँ भी एक गरीब परिवार की लड़की थी। वह ममतामयी।'

एलिस बोली—'लेकिन आपके पिताजी ठाठदार हैं। वह धन का प्रदर्शन करते हैं। गले में पड़ी सोने की जंजीर, हाथ में हीरे की अँगूठी और जेब में लटकती सोने की चैन दार घड़ी···हाँ, वे दूर से रईस लगते हैं।'

यदुनाथ बोला—'हाँ, वे ऐसे हैं। परन्तु माँ अब भी घर में काम करती हैं। नौकरों के काम स्वयं देखती हैं। पिताजी के नित्य पैर दबाती हैं।'

रूक्ष भाव में एलिस बोला—'पुरुष स्वार्थी है। औरत को दासी बनाता है।

उसी समय यदुनाथ ने एलिस की ओर देखा। उसने कहा—'तुम पश्चिमी सभ्यता मानती हो। भारतीय परम्परा यही है।'

एलिस ने स्वर पर जोर देकर कहा—'यह गलत परम्परा है। पुरुष ने नारी को हीन बनाया है।'

यदुनाथ बोला—'लेकिन भारतीय नारी ने स्वेच्छा से यह सब स्वीकार किया है। इसीलिये उसका स्थान ऊँचा है।'

एलिस ने बात सुनी, तो बरबस हँसा दिया। उसने अपनी सुन्दर आँखों को यदुनाथ की आँखों पर टिका दिया।

किन्तु उसी समय यदुनाथ अचम्भित रह गया। उसने देखा कि कमरे के द्वार पर पण्डित सुदर्शन हैं, रजनीश है और कमला है। निकट आते ही, कमला ने अपनी भरी दृष्टि को यदुनाथ के दुर्बल मुँह पर पसार दिया।

बारह

बातों के प्रसंग में ही, पण्डित सुदर्शन ने यदुनाथ को बताया—'तुम्हारी इस अवस्था की सूचना तो मुझे बाद में मिली, कमला ने पहिले ही स्वप्न देखा कि तुम जख्मी हुए हो।'

लेकिन उस समय कमला की भरी आँखें देखकर, यदुनाथ स्वयं किसी और लोक में पहुँच गया। किन्तु उसने अपने अन्तर के वेग को बाहर नहीं निकलने दिया। पण्डितजी की बात सुनकर कहा—'आपने इतना कष्ट किया, पण्डितजी! देखता हूँ कि भगवान को अभी मेरा जीवन रखना था।

पण्डित सुदर्शन बोले—'समय खराब है। चारों ओर अन्धेरा है। अपना-पराया कोई नहीं सूझता। समय के साथ आदमी बदल चुका है। कुछ पुराना जा रहा है, कुछ नया आ रहा है।'

यदुनाथ बोला—'अब ऐसा ही लगता है।' यह कहते हुए उसने रजनीश की ओर देखा। पास में एक आलमारी थी। उसमें मेवे रखे थे। एक सेव उठाकर रजनीश को देते हुए यदुनाथ बोला—'तुम अपना काम करो, दोस्त! कहो, भूले तो नहीं।'

रजनीश ने सकुचाकर कहा—'जी, नहीं।'

उसी समय यदुनाथ ने कमला की ओर देखा। उसने कहा—'पिता के साथ तुमने भी कष्ट किया अच्छा होने पर मैं स्वतः आता। गाँव की सैर कर आता।'

कमला ने कहा—'पिताजी के मित्र ने पत्र में जो हुआ लिखा, वह

चिन्तनीय था। उस अवस्था में आना अभीष्ट था।'

यदुनाथ बोला—'आप लोगों के दर्शन से सुख मिला। अब मैं जल्दी ही अस्पताल छोड़ दूँगा। घर पर रहूँगा।'

सुदर्शन जी बोले—'मैं एक-दो दिन रुकूँगा। मेरे योग्य कोई कार्य हो, तो बताना।'

यदुनाथ बोला—'पण्डितजी मुझे आपका आशीष चाहिए।' उसने कहा—'आप यहाँ रुकें तो अच्छा है। मिल के मजदूर सचमुच ही त्रस्त हैं। दुःखी हैं। वे अन्धेरे में पड़े हैं। आपका उन्हें पथ-प्रदर्शन मिले, तो क्या बुरा है। उन्हें प्रकाश मिलेगा।'

पण्डितजी ने कहा—'उन्हें अन्धेरे में रखा गया है। पूँजीवाद का यही सबसे बड़ा शस्त्र रहा है।'

उसी समय मिस एलिस वहाँ आई और कमला को देखकर बोली—'ठीक बात करना असंगत रहेगा। खून का दबाव बढ़ेगा।'

कमला ने कहा—'आपने बताया, धन्यवाद। हम जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर यहाँ रह भी सकते हैं।'

यदुनाथ ने एलिस की ओर देखकर कहा—'यहाँ इन्हीं का साम्राज्य है। किसी अन्य का प्रवेश निषिद्ध है।' उसने पण्डितजी से पूछा—'आप कहाँ ठहरे हैं? क्या आप पिताजी से मिले हैं?

सुदर्शनजी बोले—'मैं पुराने साथी मास्टर के घर ठहरा हूँ।'

यदुनाथ ने कहा—'आप पिताजी से अवश्य मिल लीजिए। माता जी से भी। उन्हें प्रसन्नता होगी।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'हाँ, हाँ, हम अवश्य मिलेंगे। प्रातः जायेंगे।'

यदुनाथ बोला—'वहीं ठहरिये। सुविधा रहेगी।'

सुदर्शनजी बोले—'मास्टर ताराचन्द भी भले आदमी हैं।' वे चल दिये।

उसी समय यदुनाथ और कमला की चार आँखें हुईं। यदुनाथ

बोला—'मुझे सुख मिला। मेरा खून बह गया। लगा कि कोई निकट का आत्मीय आ गया। कल आना।'

कमला ने कह दिया—'जी, हाँ, अवश्य।'

वे चले गये। उस कमरे से बाहर हो गये।

उसी समय पास खड़ी एलिस ने प्रश्न किया—'लगता है, ये लोग बाहर से आये हैं। कोई सम्बन्धी हैं?'

यदुनाथ बोला—'सिस्टर, इस दुनिया में सभी सम्बन्धी हैं। सभी अपने हैं, सभी पराये हैं।' उसने प्रश्न किया—'बोलो, तुम संस्कारों की बात मानती हो? इतना समझती हो?'

एलिस ने कहा—'प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व, मैं कहती हूँ कि मेरे पिता ब्राह्मण थे। मेरी माँ के पिता भी किसी हिन्दू परिवार के व्यक्ति थे।

यदुनाथ बोला—'इस देश में अँग्रेज आये, तो वह अपने साथ ईसाइयत का धर्म भी ले आये। एक हाथ में तलवार और दूसरे में बाईबिल लेकर उन्होंने इस देश को जीता। ईसाई धर्म का प्रचार किया।' इस देश को अपने धर्म में मिला लिया।'

एलिस ने कहा—'तो क्या यह अच्छा नहीं हुआ? आपके मत से बुरा हुआ?'

यदुनाथ ने इस बात का एकाएक उत्तर नहीं दिया। वह कमरे में जलती हुई बत्ती की तरफ देखने लगा।

किन्तु उसी समय एलिस ने फिर कहा—'बाबू, मेरा मत है कि ईसाई मिशनरियों ने इस देश में जागृति प्रदान की। शिक्षा का प्रसार किया।'

किन्तु यदुनाथ बोला—'सिस्टर, सदा की भाँति आज भी राजनीति में धर्म का प्रवेश होता है। जनसाधारण को इसी तरह प्रभावित किया जाता है। दासता के पैरों में डालने वाले आदमी का ऊपरी शरीर ही गुलाम नहीं बनाते, मन भी बनाते हैं। उस देश की आत्मा

पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। यही ईसाइयत ने किया, यही मुसलमानों ने।' उसने अपने स्वर पर तेजी का भाव लेकर कहा—'एलिस बहिन, मैं इसे भी मानवीयता का पाप समझता हूँ। किसी की संस्कृति को मारना, मनुष्यता के प्रति क्रूर भाव अनुभव करता हूँ।'

एकाएक एलिस ने कहा—'ओह!'

यदुनाथ बोला—'आज अँग्रेज भले ही शरीर से इस देश से पलायन कर गये, परन्तु अपने पीछे वे लाखों एजेंट छोड़ गये। उनमें एक तुम भी हो। तुम अँग्रेज बच्चे को अपना धर्म भाई समझती हो···उनका शासन भी······'

बीच में ही एलिस ने कहा—'उनका शासन नहीं।'

कड़ुवे भाव में यदुनाथ बोला—'जब सभ्यता मानती हो, तो शासन क्यों नहीं। ये दोनों बातें विपरीत नहीं हो सकतीं। तुम भारतीय सभ्यता और भारतीय भाषा स्वीकार नहीं कर सकतीं।'

एलिस ने कहा—'आप कठोर हैं। विवाद अधिक करते हैं। मैं नहीं बोलूँगी। अब जाती हूँ। एक घण्टे में लौटूँगी।' यह कहते हुए वह चल पड़ी।

किन्तु जब एलिस उस कमरे से निकल गयी, तो तभी, यदुनाथ के समक्ष कमला की वह आकृति आ गयी कि जो कुछ देर पूर्व उसे दिखायी दी। जिसकी आँखों में आँसू थे। मुँह पर चिन्ताओं की रेखा थी। यदुनाथ ने एकाएक अपने आप कहा—'मेरी इस चोट पर माँ रोयी थी, या कमला। पिता भी नहीं रोये। यह कहते ही, उसे लगा कि सचमुच, जैसे इस कमला के रूप में कोई युग-युगों से परिचित प्रेमी उसे अनायास प्राप्त हो गया है। वह अजान बनकर भी उससे इतना परिचित हो गया है कि जितना अन्य कोई नहीं। माँ के अतिरिक्त दूसरा नहीं।

अपने मन की उस अवस्था में ही, यदुनाथ को जैसे अपार शान्ति मिली। उसे अपार सुख प्राप्त हुआ। कमरे में विद्युत का प्रकाश था। कभी-कभी कोई नर्स खट्-खट् करती हुई निकल जाती। कभी कहीं दूर

से किसी के बोलने या चीखने की आवाज भी आ जाती। परन्तु इतना होते हुए भी, मानो यदुनाथ का मन कहीं अन्यत्र चला गया था। उसके चिन्तन की धारा बदल चुकी थी।

उसी समय एक डाक्टर वहाँ आया। वह युवक था। कमरे में आते ही, उसने इधर-उधर देखा। शायद उसने मिस एलिस को पाना चाहा। किन्तु तभी वह यदुनाथ के पास आकर बोला—'अब कैसी तबीयत है, आपकी। जख्म काफी भर चला है।'

यदुनाथ बोला—'हाँ, अब पहिले से ठीक हूँ।'

उस युवक डाक्टर ने कहा—'जिस दिन आप आये, तो अवस्था गम्भीर थी। चोट गहरी पड़ी थी।'

यदुनाथ ने विरक्ति के साथ कह दिया—'जी।'

डाक्टर ने कहा—'यहाँ अच्छा तो नहीं लगता होगा, आपको। चिन्ता न कीजिए, जल्दी लौट जायेंगे, घर!' वह बोला—'सिस्टर नहीं हैं? कहीं गयी हैं?'

यदुनाथ बोला—'वह कह कर गयी हैं।'

डाक्टर लौट चला। जब वह कमरे से बाहर हो गया, तो तभी जैसे झल्लाकर, कटु बनकर, यदुनाथ ने अपने-आप कहा, धूर्त्त कहीं का! वह बोला—ये अस्पताल के डाक्टर भी कुत्ते हैं। कुछ सूँघते-फिरते हैं। यह एलिस जितनी मधुर है, सरल है, और अपने काम में निपुण है, उतनी शायद अपने प्रति उदार नहीं। सजग नहीं। सावधान नहीं। वह कहने लगा, कि यह डाक्टर नित्य ही एलिस के पास जाता है। उसे बाहर ले जाता है। बात करता है। और तभी उसने कमरे की जलती हुई बत्ती को लक्ष्य किया—हाँ, इस बत्ती की तरह इस नर-नारी का समाज भी जले जा रहा है। अन्तर इतना है, कि इस बत्ती से प्रकाश होता है और इन नर-नारियों का संगम सड़ाँद पैदा करता है···समाज में कीड़े फैलाता है। इसी प्रकार तो इस समूचे जगत का यौवन उड़ा जा रहा है। ने साथ कुछ लिए जा रहा है। जीवन का कोमल और तरल-पदार्थ

मानो सूख गया है···पत्थर बन गया है ! वासना की सड़ाँद चारों ओर उठ रही है । समाज गल गयाहै । लगता है कि कोढ़ के समान, नर-नारी के शरीर से पीप चू रहा है···मवाद बह रहा है···

उसी समय अपने जूतों की खट्-खट् करती हुई एलिस कमरे में आई । वह अपनी आँखों में कुछ लिये, जिज्ञासा लिए हुए एकाएक मुस्करा दी । किन्तु उसे देखकर यदुनाथ बोला'—वह डाक्टर आया था । तुम्हें देख रहा था ।'

एलिस ने कहा—'हाँ, हाँ, वह मुझे मिल गया । बोलिये, आपको दूध दूँ ?'

यदुनाथ बोला—'दे दो ।'

एलिस दूध ले आई । गिलास हाथ में लेकर यदुनाथ बोला—'तो तुम्हें मिल गया, डाक्टर ? अच्छा हुआ । वह परेशान था ।'

एलिस ने कहा—'उसका काम था । मैंने उसे समय दिया था ।'

यदुनाथ दूध पीकर पड़ गया । एलिस ने उसे कपड़ा ओढ़ा दिया ।

वहाँ से जाते हुए एलिस बोली—'मैं लौट आऊँगी । आपको देर तक अकेला नहीं रहने दूँगी ।'

यदुनाथ बोला—'अब मेरा कोई काम नहीं । चिन्ता न करें ।'

एलिस ने मधुर होठों से मुसकराया—'बाबू, अपने बीमार की चिन्ता करना मेरा काम है । मेरा धन्धा है ।' यह कहते हुए वह फिर चली गयी । जब वह कमरे से दूर हो गयी; तो यदुनाथ के मन में फिर बात आई—'किसी भी राष्ट्र की आत्मा तब तक चेतना नहीं पाती कि जब तक उसके नागरिक अपना कर्त्तव्य न निबाहें । यह एलिस, यह डाक्टर, केवल अपने वेतन के पैसे देखते हैं । ये भी अशक्त मरीजों को, घायलों को कुत्ते के समान नोंचना पसन्द करते हैं । यही मजदूर का स्वभाव है । काम करना नहीं चाहता, पैसे चाहता है । वह बोला—कहने को यह अस्पताल सरकार के खर्चे पर चलता है, देश के विविध भागों से इसके लिए रुपया आता है । परन्तु क्या यहाँ भी गरीबों के

साथ न्याय किया जाता है। यहाँ भी अमीरों को आश्रय मिलता है। रुपया यहाँ भी चलता है। यहाँ के डाक्टर और नर्सें रुपया खाते हैं। उस रुपये से जीवन के भोग-भोगते हैं। जीवन का अधिक आनन्द पाना पसन्द करते हैं। यह कहते हुए यदुनाथ ने करवट बदली। उसने सो जाने की चेष्टा की। परन्तु उसकी आँखों में नींद नहीं थी। उसकी इच्छा थी कि कोई उसके पास हो, माँ हो, कमला हो। क्योंकि जब से उसने कमला को पास आई देखा, तो तभी से, उसके मन में बार-बार आ रहा था कि सच, यह कमला उसकी कुछ है,—आत्मीय है और उस कमला के मुँह पर जो तेज, जो सौम्य भाव यदुनाथ ने देख आया, कदाचित वैसा अपूर्ण भाव उसे अपने जीवन में अन्यत्र देखने को नहीं मिला। यद्यपि, जहाँ तक सौन्दर्य का प्रश्न था, कदाचित कमला उसमें अधिक नम्बर नहीं प्राप्त कर सकती। क्योंकि उस नगर में सौंदर्य को कमी नहीं थी और जो सौंदर्य कलात्मक ढंग से बना हो। सजा हो, उसे देखकर भला किसे न सुख प्राप्त होगा। अतएव, वह सर्वत्र था। उस नगर में तो विशेष रूप से था। किन्तु जिस कमला के रूप का, यौवन का तनिक भी बनाव नहीं, उसका शृंगार नहीं, तो वह तब भी अपूर्व बना था। उससे सुगन्ध आ रही थी। वह गन्ध भले ही मादक न हो, परन्तु जिस अनुभूति और ममता से वह कमला परिपूर्ण थी, वैसी क्या,8 यदुनाथ को अन्यत्र दिखायी दे सकती थी।

उस समय यदुनाथ की आँखें बन्द थीं, किन्तु उसके मन की आँखें खुली थीं। वे आँखें मानो दूर तक देखने की क्षमता रखती थीं। उस अवस्था में यदुनाथ देर तक पड़ा रहा। उसका मन जितना आनन्द से पूर्ण था, उतना ही आकुल बना था।

एकाएक आँखें खुलीं तो देखा कि एलिस यदुनाथ के पलंग के पास खड़ी है। वह कह रही है—'बाबू, आपके मन में क्या है। कुछ याद आया है, क्या! ये आँसू···'

किन्तु यदुनाथ ने मुँह से कुछ नहीं कहा। उसने अपनी आँखों पर चादर का पल्ला डाल दिया।

एलिस बोली—'बताइये न, बाबू ! क्या कोई आत्मीय याद आ गया। यह तो जानती हूँ कि इन्सान का मन पत्थर है, तो तरल भी है।'

यदुनाथ ने कहा—'सिस्टर, मैं सोया नहीं था, जाग रहा था।' वह बोला—'मेरा मन दुर्बल है, जाने क्या मन में आया।'

एलिस ने कहा—'यह अस्पताल की जगह ही मनहूस है। यहीं आकर आदमी अपने को क्षुद्र मानता है। सभी को वास्तविकता का पता मिलता है। पर आप तो समर्थ हैं। भाग्यवान हैं। रोग के झंझावात से भी निकल चुके हैं।'

यदुनाथ बोला—'सिस्टर, निगाहें जुदा-जुदा हैं। तुमने जिन्दगी के चित्र का एक ही रूप देखा है, दूसरा नहीं। सफेद देखा है, काला नहीं। यह समझो कि पैसा सभी कुछ नहीं, पूर्ण नहीं।'

साँस भरकर एलिस बोली—'इतना समझती हूँ। परन्तु वह मनुष्य के बहुत से अभावों की पूर्ति करता है, यह तो आप भी मानते हैं।'

यदुनाथ बोला—'ऐसा समझना भी बेकार है।'

एलिस ने ताना दिया—'आप पैसे वाले हैं।'

यदुनाथ ने साँस भरी—'काश, मैं गरीब होता। तब इस अस्पताल में न आ पाता। तुम्हें कष्ट न देता।'

एलिस अपने सफेद दाँतों को खोलकर हँस पड़ी—'ऐसा कहते तो हैं आप, पर जब गरीब होते, तो सचमुच, मौत माँगते, इस जिन्दगी को बोझ समझते।'

'बहिन, एलिस ! एकाएक जैसे खिन्न भाव में यदुनाथ बोला—'तुम जिन्दगी नहीं समझतीं—सचमुच नहीं ! उसका दर्शन नहीं। तुमने भारतीय दर्शन नहीं पढ़ा। इस इन्सान का इतिहास भी नहीं। तुम इस अस्पताल से वेतन पाती हो और मशीन के समान रोगियों की

परिचर्या में अपना जीवन लगा देती हो। काश, कि तुम अपने मरीजों की भावना, दर्द और कराह के साँस भी अनुभव करतीं। तुम देख पातीं कि इन्सान का धर्म क्या है···कहानी क्या!' और तुम जो कुछ करती हो, उसका मूल्य भी क्या केवल पैसा है!

एलिस ने कहा—'मैं ऐसा ही समझती हूँ।' वह आँखों से हँसकर बोली—'आपकी बात दिल को छूती तो है, पर समझी नहीं जाती। समय भी नहीं मिलता।'

यदुनाथ ने फिर अपने स्वर पर खिन्नता का भाव लेकर कहा—'तुम्हारे पास समय तो है, पर उसका उपयोग अन्यत्र होता है। आदमी प्रायः ऐसा बहाना करता है। वही तुम···तुम एलिस!'

एकाएक एलिस ने कहा—'तो आपको कहना क्या है!'

यदुनाथ ने एलिस की आँखों में अपनी आँखें डाल दीं। उसने पूर्ववत् गम्भीर स्वर में कहा—'मेरा इतना ही कहना है कि तुम भी इस पीड़ाओं से भरे त्रस्त मानव की झोली में अपने-आपको डाल दो। उसको खिलवाड़ मत करो। अन्ततः इन्सान जटिल है, असह्य है।'

एलिस ने इतनी बात सुनी तो अपनी आँखें बत्ती की ओर उठा दीं। जिस पर पतंगे उड़ रहे थे, कुछ मर कर नीचे गिर पड़े थे।

तेरह

एक व्यक्ति समाज है और राष्ट्र है। यही हेतु है कि वह राष्ट्र की प्रत्येक गतिविधि से अपना सम्बन्ध रखता है, राय जानकीदास की मिल में झगड़ा हुआ, उससे उनका पुत्र जख्मी हुआ, तो इस चर्चा से समस्त नगर परिचित हो गया। मध्यम और निम्न वर्गीय समाज ने इस घटना का विकट रूप प्रचलित किया। मिल मालिक के प्रति उपेक्षा और हीन भावना का पदर्शन करता मानो सभी को प्रिय विषय लगा। उस झगड़े में जिन मजदूरों को गिरफ्तार किया गया, उनके प्रति सद्भावना प्रगट करना लोगों का जैसे नैतिक कर्तव्य बन गया। फलस्वरूप, उस बात को सभी वर्गों ने, गम्भीर रूप में देखा। नगर के पत्रों ने भी उस चर्चा का विशेष उल्लेख किया।

उस अवस्था में, जब पण्डित सुदर्शन फिर नगर में आये, तो वे परेशानी में पड़ गये। उस स्थिति में वे लौट भी नहीं सकते थे। क्योंकि वह नगर उनका कार्यक्षेत्र था। वहाँ उनका लम्बा समय बीता था। वहीं पर प्रतिक्षण और समाज का विश्वास प्राप्त किया था। आने के दूसरे दिन पण्डितजी राय जानकीदास से मिलने गये। उस समय पुत्र और पुत्री भी साथ थे। दरबान ने जब उनके आगमन की सूचना राय जानकीदास को दी, तो पण्डित सुदर्शन यह देखकर चकित बने कि राय जानकीदास स्वयं बाहर आये और उन्हें सम्मान सहित अन्दर ले गये। कमरे में आकर उन्होंने कमला की ओर देखकर कहा—'अच्छा, यह बिटिया अब बड़ी हो गयी!' उसी समय पत्नी भी वहाँ आ गयी।

कमला ने उनका अभिवादन किया। पत्नी ने कहा—'जीती रहो। बड़े घर जाओ!'

सुदर्शनजी बोले—'बाबू यदुनाथ की चोट लगने की खबर मिली, तो दुःख हुआ। रुका नहीं गया।'

राय जानकीदास ने कहा—'आप ठहरे कहाँ हैं? यहाँ क्यों नहीं ठहरे! यह आपका घर है?'

सुदर्शनजी ने कहा—'आपकी कृपा है।' वह बोले—'यदू बाबू सरीखे युवक पर भी लोग हाथ छोड़ सकते हैं, मैं कल्पना नहीं कर पाता। सचमुच, मजदूर बुद्धि शून्य बने हैं।'

राय जानकीदास ने कहा—'पण्डितजी, देखने का दृष्टि भेद है! लोग मुझे सुखी मानते हैं। पर मैं तो अनुभव करता हूँ कि परेशानी और दुश्चिन्ताओं के घेरे मेरे चारों ओर खड़े हैं। लड़का अस्पताल में पड़ा है और कारबार में घाटा हो रहा है।'

पत्नी बोली—'लोग फिर भी हमें जाने क्या समझते हैं। जैसे हम बिच्छू या साँप हैं कि किसी को भी मार सकते हैं?'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'इस धरती पर देर से दो जातियाँ हैं, धनिक जाति और निर्धन जाति। दोनों गुमराह हैं, दोनों ही जीवन की वास्तविकता से दूर हैं। स्थिति यह है कि दोनों ही एक-दूसरे को देखकर डरते हैं। इन्सान ने अपना सन्तुलन खो दिया है। मैं इस बात को मानता हूँ कि इन्सान परावलम्बी बन चुका है। जिन्दगी को देखने और समझने का दृष्टिकोण समाप्त हो गया।'

राय जानकीदास ने पत्नी से कहा—'इस बिटिया और मुन्ना को जलपान कराओ। पण्डितजी को भी भेजो।' वह कमला की ओर देखकर बोले—'तुम्हारा क्या नाम है, बेटी?'

पत्नी ने कहा—'इसका नाम कमला है। बचपन इसी घर में बीता है।'

'और इस मुन्ने का नाम?' राय जानकीदास बोले—'यह भी क्या

पण्डित बनेगा ? निरा आदर्शवादी !'

पण्डितजी ने कहा—'इसका नाम रजनीश है। यह मुझ पर नहीं गया। दुनियादार बनेगा।'

राय जानकीदास ने हँस कर कहा—'तब तो यह काम का आदमी होगा। मेरा अब भी मत है आदर्शवादी जीवन में फल-फूल नहीं सकेगा।

पण्डितजी ने बात सुन ली, अपना मत व्यक्त नहीं किया।

पत्नी बोली—'शहर छोड़कर गाँव चले गये। पत्नी भी खो बैठे। पण्डितजी दुनियादार बनते, तो आज पैसे वाले होते।'

राय जानकीदास ने कहा—'पण्डितजी के चेले मोटरों में घूमते हैं। बँगलों में रहते हैं। जनता के समक्ष पूँजीवाद को कोसते हैं और जब देखो तब, धनपतियों की बगल में बैठे रहते हैं। सरकार के दफ्तरों में उनकी वकालत करते हैं।'

चंचल बनकर पण्डितजी ने कहा—'मुझे पता है। देश स्वतन्त्र हुआ, तो ईमानदार राष्ट्र-भक्तों का अन्त हो चुका है। वे भी चाँदी-सोने की सिल्लियाँ एकत्र करते हैं···मानवता की लाश पर बैठे लोग बंशी बजाते हैं।'

राय जानकीदास ने कहा—'मुझे पता है, आपने बहुत से अवसर खो दिये। जनता को धोखा नहीं दिया। इस नाते मैं आपका सम्मान करता हूँ। पर आप सरीखे सेवक अब कहाँ।' वह बोले—'अब आप आये हैं, चले न जाइये। मेरे साथ यदुनाथ के पास चलिये।' उसी समय राय जानकीदास ने साँस भरी और कहने लगे—'पण्डितजी, लोग समझते हैं कि मैं बड़ा कारबारी व्यक्ति हूँ। सम्पन्न हूँ। सुखी हूँ। परन्तु मैं कितना चिन्तित और परेशान रहता हूँ, उसका वर्णन नहीं कर सकता। उसे शब्दों में व्यक्त भी नहीं किया जा सकता।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'इस जिन्दगी की चक्की में सभी पिसते ह पैसा हमारे सुख का साधन नहीं। वह सभी अभावों की पूर्ति नहीं करता।

राय जानकीदास ने कहा—'यही सत्य है।'

पण्डितजी ने फिर कहा—जीवन का ज्ञानार्जन और चेतना का अर्चन ही हमारी सन्तुष्टि का मूल आधार है। परन्तु ऐसा नहीं होता। आदमी स्वतः ही विकारों का शिकार बनता है। बौद्धिक विकास न करके भौतिक पदार्थों में लिप्त होता है। वही दुःख का कारण है। हमारा शत्रु बाहर कोई नहीं, वह मन के अन्दर बैठा है। वह हमें कायर बनाता है।'

राय जानकीदास की पत्नी ने कहा—'आप ठीक कहते हैं, महाराज!

पण्डितजी बोले—'माँजी, पैसा आसुरी शक्ति है। उत्तेजक पेय के समान इसमें भी नशा है। राक्षसी भाव है। पैसा पाकर आदमी अपना सिर नहीं झुका पाता। यही उसका दम्भ है। वह इन्सानी समाज से अपने को पृथक् मानता है।'

उस समय राय जानकीदास की दृष्टि कमरे के बाहर थी। उनके माथे में बल पड़े थे। परन्तु हृदय में क्रोध या क्षुब्ध भाव नहीं था। इसलिये माथे की वे सलवटें उनकी मानसिक अस्थिरता की सूचक थीं और मन का उद्वेलन भी प्रगट कर रही थीं। जब सुदर्शनजी ने अगली बात कही, तो वे फिर झटके के साथ उनकी ओर देखने लगे।

सुदर्शन पण्डित ने कहा—'जिस व्यक्ति के पास पैसा हो,—धन बल हो—और वह अपने समाज में उदात्त पक्ष का समर्थक हो, सदाशयता का प्रतीक हो, आप समझिये कि वह जन्म-जन्मों के संचित शुभ कर्मों का लेखा-जोखा इस जीवन में प्राप्त करता है। वह किसी जन्म का तपस्वी होगा।'

वह महीना गर्मी का था। कमरे की छत में बिजली का पंखा चल रहा था। परन्तु राय जानकीदास के मस्तष्क पर पसीने थे। वे उनके हृदय की अधीरता को प्रकट कर रहे थे। उसी समय उन्होंने साँस भरी और पण्डित सुदर्शन की ओर देखकर कहा—'आपका कहना यथार्थ है, पण्डितजी!'

पत्नी ने पण्डितजी से प्रश्न किया—अभी तो आपने इस कमला का विवाह नहीं किया ? कहीं लड़का देखा ? कुछ पढ़ाया ?'

पण्डितजी बोले—'पढ़ रही है । कई परीक्षाएँ दे चुकी है । विवाह भी करना है ।'

राय जानकीदास की पत्नी बोली—'बच्चों की माँ के मरने से आपका घर बिगड़ गया । आपका उत्तरदायित्व बढ़ गया ।'

पण्डित सुदर्शन ने इनके भाव से मुस्करा दिया, उन्होंने कहा—भाग्य का लिखा नहीं मिटता । कर्मों का भोग भोगना पड़ेगा ?'

राय जानकीदास ने प्रश्न किया—'आप भी भाग्य को मानते हैं ? कर्मों की बात ?'

तुरन्त ही, सुदर्शन पण्डित ने कहा—'निःसन्देह ! भाग्य की गति बलवान है, वह बोले—'परन्तु लोग भाग्य को पैसे से जोड़ते हैं, पैसे वाले को भाग्यवान मानते हैं । मैं ऐसा नहीं समझता । भाग्य का अर्थ है, अच्छे कर्मों का निर्माण, वही जीवन पुञ्ज है; जिसका सम्बन्ध मन से है, हमारे कार्य से । सत्य और शिव की भावना में लिप्त इन्सान ही, उसका भागीदार है । वह अजेय है । पुनीत है ।'

पत्नी ने कहा—'पण्डितजी, इस धरती पर आकर कोई नहीं मानता । इस डगर पर चलने वाला आँख नहीं खोलता ।'

पण्डितजी ने कहा—'आप ठीक कहती हैं । जीव का स्वभाव ही यह है । वासना सर्वोपरि है । स्व, की कामना करने वाला 'पर' की ओर नहीं देखता । इसी चिन्तन में वह अपनी चिता बनाता है । यह पैसा इन्सान ने बनाया, समाज की व्यवस्था के लिये, परन्तु इसका उपयोग आदमी अपने लिये करने लगा । पदार्थों के ढेर लगाने लगा । कैसी विवशता है कि आप मुझे सुखी मानते हैं और मैं आपको । दोनों की भ्रान्त धारणा है । आँखों में अन्धेरा है । सड़क कूटने वाला व्यक्ति एक धनिक की दृष्टि में सुखी है क्योंकि वह स्वस्थ है, इच्छाएँ सीमित

हैं। वह आपके सुन्दर भोजन, यह महल और बढ़िया साज-बाज को देखकर सोचता है, ये भाग्यवान हैं। यह अजीब समस्या है! कोई कहीं दुःखी, कोई कहीं? एक रोटी के लिये तरसता है और एक भूख लगने के लिये।'

पत्नी ने साँस भर कर कहा—'पण्डितजी, यही होता है। वर्षों हो गये कि इस घर से रोग नहीं निकलता। डाक्टर का आना नहीं रुका पाता।'

पण्डितजी ने हँसकर कहा—'माँजी, बड़े आदमियों की यही निशानी है। लेकिन मैं अपनी बात क्या कहूँ, जब पत्नी मरी, तो उसके ऊपर डालने के लिये मेरे पास कफन भी नहीं था। पर मुझे चिन्ता नहीं हुई। मरने वाले के ऊपर कुछ डालो या नहीं, समान था। भला मन का समझाना क्या?'

राय जानकीदास ने कहा—'पण्डितजी, मैं इसे अच्छा नहीं मानता। व्यवहारिकता नहीं देखता। पैसा उपार्जन करना भी एक कला है, कर्म है, जरूर आपने पत्नी का उपचार भी ठीक से नहीं कराया होगा। संसार आपके रास्ते पर चले, तो यह सभी कुछ लिप-पुत कर एकाकार बन जायेगा। फिर मनुष्य क्या खाक प्रगति करेगा?'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'मैं अपनी कमजोरी स्वीकार करता हूँ। परन्तु आत्मा की पुकार को दबाना भी मैं संगत नहीं मानता। मेरा आपका मतभेद भी इसी सिद्धान्त पर आधारित था। मैंने आपके व्यवहार की आलोचना की और अपने परिवार की रोटियाँ छिना दीं। अन्यथा, मेरा आपका कोई बड़ा मतभेद नहीं था।'

राय जानकीदास ने सूखे भाव से मुसकराया—'पण्डितजी मैं अपनी भूल मानता हूँ।'

चंचल बनकर पण्डितजी बोले—'नहीं, नहीं, ऐसा प्रायः होता है। धन का यही स्वभाव है।'

पत्नी ने कहा—'पण्डितजी, ऐसा स्वभाव बनाना क्या अच्छा है !'

पण्डितजी ने सुना और सरल भाव से मुसकरा दिया। रायजानकीदास ने भी हँस दिया। उस समय कमला देर से मौन थी। वह जैसे तन्मय बनकर प्रस्तुत वार्ता को सुन रही थी तभी राय साहब की पत्नी ने उसे लक्ष्य किया—'बेटी, तुम उठो। मेरे कमरे में चलो। कुछ जलपान कर लो। इस मुन्नू को भी ले चलो।' कहते हुए वह उठीं। कमला भी उठ खड़ी हुई। वह रजनीश की उँगली पकड़ कर उस कमरे से निकल गयी।

किन्तु अपने कमरे में बैठे हुए राय जानकीदास ने पण्डित सुदर्शन को फिर सम्बोधित किया—'आप नगर में आ जाइये। आज के युग में शिक्षित और विचारक व्यक्ति गाँव में नहीं रह सकता। आज मशीन का युग है। बैलगाड़ी में बैठकर आदमी जल्दी ही अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकता।'

पण्डितजी ने हँस कर कहा—'यहाँ रहूँगा, तो मेरा आपका विरोध होगा।'

राय जानकीदास ये स्वयं भी हँस दिया—'भरोसा रखिये, मैं उसका आदर करूँगा। आपकी जो इज्जत मेरी निगाह में है, उसे कम न कर सकूँगा।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'आप भी वृद्ध हो रहे हैं। कारबार का बोझ पुत्र पर डाल रहे हैं। समाज का आशीष प्राप्त करें।' वह बोले—'मैं जानता हूँ आज भी आपका प्रचुर धन जन-कल्याण में खर्च होता है। परन्तु आपके चारों ओर जिन व्यक्तियों का गिरोह है, वह उन्हीं को प्राप्त होता है। संस्थाएँ दुकानें बनी हैं। आप सरीखे विशिष्ट व्यक्ति उनके पोषण बन जाते हैं, तभी उनका पेट भरता है। जिनको चाहियें, उनके पास नहीं पहुँचता। बीच में खड़े लोगों के पेट में उतर जाता है।'

राय जानकीदास ने कहा—'पण्डितजी, हमारी यह विवशता है। पैसे वाला सक्रिय नहीं बन सकता। उसका मार्ग जुदा है।' वह बोले—

यदुनाथ के पाणों में आपने बचपन में जो कुछ भरा, वह अब भी बोलता है। उसके मन में कुछ और है। वह मेरे बनाये रास्ते से जुदा चलना चाहता है। देखिये तो, झगड़े में जो मजदूर पकड़े गये। वह उन्हें छुड़ाने की बात कहता है।'

उस समय पण्डित सुदर्शन गम्भीर बन गये। जब उन्होंने राय जानकीदास की बात सुनी, तो कहा—'बात पुत्र की चलेगी, आपकी नहीं। यदुनाथ के मन में दया है। वह उसी से अनुप्रेरित है। वह अपने युग का प्रतिनिधित्व करना चाहता है। ऐसी स्थिति में आप चिन्ता न करें। उन मजदूरों को छुड़वा दीजिये। जिस औरत का पुत्र मरा है, उसे भी मिल की ओर से प्रतिमास कुछ मिलने का प्रबन्ध करा दीजिये।'

राय साहब ने कहा—'उस लड़के को चालीस रुपया प्रतिसाम मिलता था, वह अब भी मिलता रहेगा। मैंने घटना के अगले दिन ही आदेश दे दिया था।'

सुदर्शनजी ने कहा—'उस नारी की पीड़ित आत्मा आपको आशीष देगी।'

राय जानकीदास बोले—'पण्डिजी, मजदूर कृतघ्न हैं। वह अपने प्रति भी अमान्य और अयोग्य हैं। समाज के लिए अभिशाप है।'

सुदर्शन पण्डित ने कहा—'यह तो सत्य है। किन्तु ऐसा बनाया गया है, मजदूर इस अवस्था में डाल दिया गया। लोहे की मशीन पर मुख्य काम करने वाला स्वयं लोहा बन गया, कठोर। मजदूर-वर्ग को दया चाहिए, सदाशयता। वह आप दीजिए। अन्ततः वह मनुष्य वर्ग है।'

उत्साह भाव में राय जानकीदास ने कहा—'आप काम कीजिए। आप मेरे विरोध की चिन्ता न कीजिए। मैं आपकी मदद करूँगा। आप मजदूर वर्ग को उठाइये।

उसी समय नौकर ने भोजन तैयार होने की सूचना दी। राय जानकीदास जब सुदर्शनजी को साथ लिए रसोई घर की ओर गये, तो

तभी, सुदर्शनजी के मन में आया कि जहर डालने वाला साँप राम-नाम की बात करता है···अवसर पाये, तो काट सकता है···धूर्त कहीं का ! किन्तु उनके मन की यह दुर्भावना देर तक नहीं टिकी रही ।

जब वह भोजन पर बैठे, तो अपने-आप बोले—मनुष्य बदलता है···परिस्थिति के साँचे में ढलता है ! इस सेठ को किसी और ने नहीं बदला, तो स्वयं का पुत्र बदल सकता है,—यदुनाथ !

चौदह

गाँव में सुदर्शनजी अपने पड़ौसियों और मित्रों से यह कहकर चले थे कि वे एक सप्ताह के अन्दर ही लौट आयेंगे। परन्तु जब वह दो मास तक भी गाँव नहीं लौटे, तो लोगों को चिन्ता हुई। गाँव वालों को यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि क्या पण्डितजी शहर में ही जम गये। कदाचित इसका एक कारण यह भी था कि सुदर्शनजी ने अपने कार्य-कलाप से गाँव के छोटे-बड़े को अपना स्नेही बना लिया था। वे सभी वर्गों के व्यक्तियों से मिलते और उनके दुख-दर्द में सम्मिलित होते। निश्चय ही, उस गाँव में भी एक विचारधारा के व्यक्ति नहीं थे, विभिन्न प्रकार के थे। वहाँ यदि सात्विक वृत के व्यक्ति अपने खेतों में परिश्रम करके जीविका का उपार्जन करते, तो ऐसे भी उस गाँव के समाज में आदमी रहते थे जो निठल्ले और गप्पी बने हुए जीवन काट देना पसन्द करते। अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए लोगों को आपस में लड़ाते, मुकदमे बाजी कराते। चोर और डाकू भी उस गाँव में कम नहीं थे। ऐसे व्यक्ति अर्थ संचय के हेतु आदमी का गला काट देना असंगत नहीं मानते थे।

यह सत्य था कि इस प्रकार के जीवन में जहाँ जहर फैला हो, अंध-विश्वास और समाज अन्धेरे में रहता हो, पण्डित सुदर्शन इस बात के अपवाद ही थे कि उन्हें वहाँ सम्मान मिला था। अन्यथा, गाँव के व्यक्तियों ने वातावरण को जितना विषाक्त और निर्मम बना रखा था, उसमें किसी अन्य का रहना सुगम और सुरक्षित नहीं था। ऊपर से देखने में

वह गाँव भले ही प्रकृति की गोद में खेलता और हँसता हुआ दीख पड़ता, परन्तु जितनी सड़न और अमानुषीय मनोवृत्ति का गढ़ वह गाँव बना था, किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए रहना निरापद नहीं था। यह उस गाँव का नित्य का व्यापार था कि प्रातः हुआ कि गाँव की पनिहारिनें, घरों की बहू-बेटियाँ अपने घड़ों को सिर पर रख कर और बगल में दबाकर जब पनघट पहुँचतीं; तो तभी, गाँव के नौजवान लड़के वहाँ जाते और उन बहू-बेटियों को देख खिलखिलाते और इशारेबाजी करते। लेकिन जब से पण्डित सुदर्शन गाँव में रहने लगे, तो पनघट की वह बिगड़ी स्थिति कुछ सुधरी। मनचले छोकरों का उधर आना-जाना कम हुआ। पण्डितजी ने अनेक बार इसका विरोध किया। उन युवकों को समझाया और आवश्यकता पड़ने पर ताड़ना देने का भी प्रयत्न किया। गाँव में किसानों के खेतों में धान की चौरी होती थी, उनकी खड़ी फसल काट ली जाती। किन्तु जब इस बात का पता सुदर्शन जी को लगा तो उन्होंने गाँव में इस प्रकार का नियम बना दिया कि जिस पर भी ऐसा सन्देह किया जायगा, सामाजिक रूप से गाँव उस व्यक्ति का वहिष्कार कर देगा। सबसे अधिक सुख और संतोष की बात सुदर्शन जी के द्वारा सम्पादित हुई, वह यह थी कि गाँव में चोरी और ठगी की वारदातें पूर्णरूप से बन्द हो गयीं। पण्डित जी के द्वारा इस बात का भी प्रयत्न किया गया कि मुकदमेबाजी बन्द हो जाय। इसका परिणाम भी संतोषप्रद रहा और इस सफलता का मूल आधार था पण्डितजी की सदाशयता, मानवीय पक्ष की बहुलता। उनके मन में सभी के प्रति दया थी, ममता थी और स्नेहशीलता थी।

लेकिन गाँव में सभी एक प्रकार के व्यक्ति नहीं थे। पण्डित सुदर्शन के पड़ौस में शंकर मिश्र नाम का भी एक व्यक्ति रहता था। उसने पहलवानी करने और नशेबाज बनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सीखा था। किसी भले काम की ओर उसका ध्यान नहीं गया। चूँकि शंकर मिश्र को जीविका की चिन्ता अधिक नहीं थी, इसलिए उसका निठल्ला-

पन निभ रहा था। वह अभी जवान था। उसके घर पर सदा ही गाँव के नौजवानोंका जमाव रहता। उस गिरोह में चोर और डाकू भी रहते। शंकर मिश्र का काम उनके द्वारा भी चलता। विवाह उसका हुआ नहीं, इसलिए भी वह बेलगाम का घोड़ा बना था। घर में माँ थी, सो, उसका भी एक वर्ष पूर्व देहावसान हो गया।

फलस्वरूप, शंकर मिश्र की दृष्टि में पण्डित सुदर्शन का गाँव में आकर बैठना और गाँव की स्वतन्त्रता में बाधक होना कदापि क्षम्य नहीं था। वह पण्डितजी को अपने रास्ते का काँटा समझता। लेकिन वह यह देखकर विवश था कि गाँव का बहुमत पण्डितजी के साथ था, इसलिए वह मौन था, मन-ही-मन जल कर राख हुआ जा रहा था। किन्तु बात जो उसके मन में थी, शूल की तरह चुभ रही थी और इसका एक कारण यह भी था कि पण्डित सुदर्शन के द्वारा एक-दो बार उसका गाँव के समक्ष अपमान हुआ। यह भी पत्थर की लकीर के समान उसके हृदय-पटल पर अंकित था। किन्तु जब सुदर्शन जी एकाएक बाहर चले गये, पुत्र और पुत्री को भी साथ ले गये, तो इस बात का सुख जितना शंकर मिश्र को हुआ, उतना किसी और को नहीं। एक दिन जब उसके घर में भंग घुट रही थी, तो उसके साथी वहाँ उपस्थित थे। उसी समय शंकर मिश्र को सम्बोधित करके छुटकू नाम के साथी ने कहा—'कहो मिश्र, अब तो पाला मार लिया। तुम्हारा दुश्मन खेत छोड़कर भाग गया।'

वहीं पर बैठे हुए मनकू ने, जो शंकर मिश्र का पड़ौस था और विश्वासनीय साथी भी था, बात सुनकर कहा—'दुश्मन भाग गया, यह भी अच्छा नहीं हुआ। अभी पाला नहीं जीता गया।'

छुटकू ने प्रश्न किया—'यह क्यों ?'

मनकू ने कहा—'जब मिश्र का घर आबाद होगा, तो तभी—'और देखा। भंग तैयार थी। तभी उनमें से एक बोला—'जिस दिन मिश्र का घर आबाद होगा, तो उस दिन यह भंग नहीं, हमारी ओर से बोतल खुलेगी।'

दूसरे ने कहा—'मेरी ओर से दावत।'

तीसरा बोला—'मैं शंकर मिश्र की दुलहन के लिए ऐसी साड़ी लाऊँ कि गाँव की औरतें देखती रह जायें।'

तभी मनकू ने कहा—'अजी, जनाब ! दावत और साड़ी की बात तो पीछे होगी, पहिले मनोरथ तो सफल हो। मछली फँसते-फँसते काँटे से निकल गयी। मिश्र के मन में जो बात है, वह सुगमता से पूरी नहीं होगी। उसके लिए तो फरिहाद बनकर पहाड़ काटना पड़ेगा···दूध का दरिया···

दूसरा हँसकर बोला—'शीरी का पाना क्या सुगम होगा ?'

तीसरा बोला—'शीरी देख भी ली। पसन्द आयी ?'

मनकू ने कहा—'तुम पसन्द की बात कहते हो, हजरत ने खाना-पीना छोड़ दिया। देखते तो हो, मिश्र क्या-से-क्या बन गया।'

एक अन्य साथी जो दूर बैठा हुआ बीड़ी का धुआँ निकाल रहा था, बोला—'तो मिश्र, बताओ न, वह शीरी कौन है ? कहाँ रहती है उसका गाँव···गली···?'

मनकू ने कहा—'यह भी बताना होगा, क्या ! तुम्हें नहीं दिखायी दिया !'

उसी समय जगना नाम के व्यक्ति ने अपनी मूँछों पर ताव देते हुए कहा—'पण्डित सुदर्शन की लड़की कमला, और कौन !'

एक आवाज आई—'वह कमला···वह गुस्सैल ! वह टेढ़ी नजर !

छुटकू बोला—'अरे, इन लोगों की टेढ़ी नजर न हुई, तो फिर आनन्द क्या आया। बात तो तब है कि उस तिरछी नजर को सीधी करके दिखा दिया जाय।' और उसने मटक कर हाथ उठाते हुए कहा—"हम तिरछी नजर पर सदके जाते हैं······'

मनकू ने शंकर मिश्र की ओर देखकर कहा—'एक बार की बात है, मैं भी कहीं दूर खड़ा देख रहा था, हमारे फरिहाद साहब जब शीरी के पास गये, उसके पीछे-पीछे दरिया पर पहुँच गये, तो तभी, जाने क्या

बात चली, कि शीरी ने वह जोर का मजेदार तमाचा फरिहाद मियाँ के मुँह पर मारा कि बस, दिन में ही—'

उसी समय शंकर मिश्र ने झिड़क कर कहा—'चुप बे, शैतान !'

मनकू ने तुरन्त ही नाटकीय ढंग से दोनों हाथ जोड़कर कहा—'छमा माँगता हूँ, गुरुदेव ! हम सभी तुम्हारे दोस्त हैं, साथी हैं ! हमसे क्या छिपाना !'

जगना नाम के साथी ने कहा—'पण्डित सुदर्शन की लड़की कमला को पाने का मतलब है, आसमान के तारे तोड़ना ।'

मनकू ने कहा—'आदमी सभी कुछ कर सकता है !'

जगना बोला—'हाँ, हाँ, सभी कुछ करता है !' उसने कहा—'पर यह तो पढ़ी-लिखी है । पूरी शहरी है ।'

छुटकू बोला—'तो शंकर मिश्र गँवार है । कैसी बात करते हो जी ! जरा पूछो तो, इसके मन से ?'

शंकर मिश्र ने कहा—'भाई, अभी यह बात क्यों उठाते हो । गाड़ी चली है, तो चलने दो । आगे बढ़ने दो । जब मैं उस पथरीली दीवार से टकराना चाहता हूँ, तो उसका फल पाने दो ?'

जगना ने कहा—'देखो मिश्र, हम तुम्हारे दोस्त हैं । अपनी जान तुम पर कुर्बान कर सकते हैं । अगर कहो तो लड़की को रातों-रात उठा कर तुम्हारे घर ले आयें । यह काम हमारे बायें हाथ का है । चारपायी सहित ला सकते हैं ।'

आतुर बनकर शंकर मिश्र बोला—'नहीं, नहीं । ऐसा नहीं करना । यह तो मैं स्वयं भी कर सकता था । रास्ता दूसरा पकड़ना पड़ेगा ।'

'तब क्या करोगे ! कब तक अकेले रहोगे ?'

शंकर मिश्र ने कहा—'कमला खुद ही रजामन्द हो, तो काम चलेगा ।'

उसी समय दूसरे साथी ने प्रश्न किया—'अच्छा मिश्र, सच बताना, उस लड़की ने तुम्हारे मुँह पर तमाचा क्यों मारा ? क्या तुमने उससे

कुछ कहा था ?'

शंकर मिश्र ने कहा—'भाई, उस दिन कसूर मेरा था। मैं शराब पीये था। यह तो अच्छा हुआ कि मेरा गुस्सा नहीं उठा। मैंने कोई जवाब नहीं दिया।'

'जगना ने कहा—'जवाब देते-तो खैर नहीं थी। गाँव भर तुम्हारा दुश्मन हो जाता। देखते तो हो कि गाँव के लोग पण्डित सुदर्शन की इज्जत करते हैं। लोग अपने-आप ही खाने-पीने की चीजें उसके यहाँ पहुँचाते हैं।'

उपेक्षा के भाव से शंकर मिश्र बोला—'यह मामूली बात है। हाँ, मैंने कुछ नहीं कहा, यह ठीक रहा, पर वह काँटा अब भी मेरे मन में अटका है।'

जगना बोला—'जरूर, उसने कुछ कहा होगा। लड़की का थप्पड़ मारना भी क्या अच्छा था!'

शंकर मिश्र ने कहा—'बात यह थी कि कमला मेरी माँ के सामने घर आती थी। तभी उसने मुझसे कई बार भंग और सुलफा न पीने के लिए कहा था। परन्तु उस दिन तो उसने मेरे मुँह से शराब की गंध पा ली। जब मैं पास गया, उससे कुछ बात करने को उद्यत हुआ, तो तभी, उसने मेरे मुँह पर तमाचा मार कर कहा—'चल हट, यहाँ से शराबी!'

एक साथी बोला—'वाह-वाह! लड़की समझदार थी। हौसले वाली।'

दूसरे ने कहा—'अजी, वह गाँव में बड़ा काम करती थी। घर-घर जाती थी। बूढ़ी औरतों तक को रहन-सहन की बात बताती। वह चमार-भँगियों के बच्चों की स्त्रियाँ और पुरुषों को जाने कैसी-कैसी समझ देती।'

मनकू ने कहा—'कमला इस घर में आ जाये तो मिश्र भी बदल जाये। इसका घर भी स्वर्ग हो जाये।'

जगना बोला—'सपना अच्छा है ।'

मनकू ने कहा—'क्यों, हमारे मिश्र में कोई कमी है । सौ बीघे जमीन है । दिल का दरिया है । पैसा भी दरिया की तरह बहाता है ।'

उसी समय शंकर मिश्र ने अपनी मूँछों पर बल दिया । उसने सगर्व सभी मित्रों की ओर देखा । जब भंग पिलानी आरम्भ की गयी, तो एक साथी ने जोर से कहा—'अब के आने दो पण्डित सुदर्शन को, मैं बात करूँगा ।'

छुटकू ने कहा—'ऐसा गजब न कर बैठना । बूढ़े बैल को बिदका मत देना । शंकर मिश्र खुद कहे । पाँव पकड़े ।'

मनकू ने कहा—'वाह, दूल्हा कैसे कहेगा । हम बराती बनेंगे तो कहेंगे । हम लोग ही इस काम को आगे बढ़ायेंगे ।'

जगना ने कहा—'पण्डित सुदर्शन अभी जल्दी न आयेगा । उस दिन हरिया मिल से छुट्टी लेकर आया था । वह कह रहा था कि पण्डित सुदर्शन और उसकी लड़की मिल के मजदूरों में सुधार का काम करते हैं । वह वहीं रहेंगे ।'

उसी समय मनकू ने शंकर मिश्र की ओर देखा । उसका अभिप्राय समझ कर ही, शंकर मिश्र ने कहा—'मैंने शहर का भी रास्ता देखा है । मैं वहाँ भी जा सकता हूँ ।'

जगना ने कहा—'वहाँ अपना कौन है । सब पराये हैं । चिड़िया ऊँची डाल पर जा बैठी है ।'

शंकर मिश्र को जगना की तरह हँसी नहीं आयी । उसने कहा—'मैं अपना समझता हूँ । उस ऊँचाई पर भी जा सकता हूँ ।'

साथियों ने बात सुनी, तो जोर का ठहाका मारा । वह शोर मकान के बाहर भी गया । उस संध्या के समय लोग खेतों से लौट रहे थे । कोई बैलों को हाँके ला रहा था और सिर पर ज्वार-बाजरे का गट्ठा लिये था । संध्या के उस सुहावने प्रहर में गायें और भैंसे जंगल से लौट . वे सभी जल्दी-जल्दी अपने घरों की ओर जा रही थीं । कोई

गाय रँभा रही थी। अपने बच्चे को पुकार रही थी। उन गायों के गले में जो घाटियाँ बँधी थीं उनका स्वर भी अपूर्व था, गाँव के शान्त वातावरण में वह भी माधुर्य पैदा कर रहा था।

सब साथी भंग पी चुके। किसी ने तम्बाकू की चुटकी मुँह में दबायी, किसी ने बीड़ी। शंकर मिश्र ने भी बीड़ी सुलगायी और साथियों की ओर देखकर बोला—'आओ, दरिया किनारे चलें।'

जगना बोला—'वहाँ छुटकू की चहेती भी होगी। जरूर मिलेगी।'

छुटकू ने कहा—'और तुम···अपनी बात नहीं कहते!'

जगना ने उदास भाव से कहा—'मैं हार गया उस रास्ते से हट गया।'

छुटकू बोला—'यह क्यों नहीं कहते कि अँगूर खट्टे थे।'

इतना सुना, तो साथियों ने खिलखिाकर हँस दिया।

मनकू बोला—'हममें ऐसा कौन है कि जिसका कहीं निशाना नहीं लगता। आँख का नशा अपना-अपना काम नहीं करता। कोई दरिया किनारे जाता है, कोई पनघट पर!' और वह यह कहने के साथ ही-ही-ही करके हँस दिया।

जगना बोला—'गाँव के बूढ़े हम जवानों के रास्ते में काँटे डालते हैं। हमें बदमाश और जहरीला कीड़ा कहते हैं।'

शंकर ने कहा—'सुदर्शन पण्डित ने हम लोगों को खूब बदनाम किया। जाने कहाँ-से वह साधु-सन्त बनकर आ गया।'

एक ने कहा—'बुढ़ापे में सब यही कहते हैं। हाथ में माला लेते हैं। वह पण्डित पढ़ भी ज्यादा गया है। गाँव में आकर भी शहरीपन बघारने लगा। पाप-पुण्य की बात करने लगा और मजा यह कि खुद मोहताज बन गया। बीबी मरी, तो उस पर कफन भी नहीं डाल सका। वह अपनी इच्छा मानता है और जवान बेटी की। उस बेचारी को भरी जवानी में बुढ़िया बना बैठा है। उसे उपदेशिका बनाता है।'

जगना ने कहा—'वह पण्डित बेटी का नाश कर देगा?'

शंकर मिश्र ने कहा—'उसने लड़की की इच्छा तो मार दी। उसे गरीबी की चादर ओढ़ा दी। वह कली बिना खिले मुरझा गयी।'

एक साथी बोला—'शंकर भाई, तुम शहर जाओ। बाप-बेटी से बात करो।

जगना बोला—'ऐसे नहीं। बाप से बात करना बेकार है। बात बेटी से करो। पहिले उसकी इच्छा पाओ। बोलो मिश्र, क्या कभी तुमने उससे अपने मन की बात कही ? यह कहा कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। तेरा नाम जपता हूँ। और यदि तुमने पहले कहा, तो उसने क्या उत्तर दिया ?'

शंकर मिश्र बोला—'जगना भाई, ऐसा मैंने नहीं कहा, मैंने तो पाया कि वह मेरी ओर देखना भी पसन्द नहीं करती। पहिले तो हँसती और बोलती थी, पर अब वह भी नहीं।'

जगना ने कहा—'तुम्हें कुरबानी करनी पड़ेगी। हम लोगों की सोहबत भी छोड़नी होगी।'

मनकू ने कहा—'क्यों, क्या हम खराब आदमी हैं ? और मिश्र हमें छोड़े, तो क्या हम छोड़ सकते हैं। यदि बनावा है, तो इसके लिए खून का दरिया बहा सकते हैं।'

शंकर मिश्र ने कहा—'मैं दोस्तों को नहीं छोड़ सकता। फिर मैं किससे बोलूँगा। किसके पास बैठूँगा।'

जगना ने कहा—'अरे, मरदूद ! यह तो कुछ दिन की बात होगी। जब पण्डित की लड़की तुम्हारे घर में आजायेगी, तो फिर हमारी भाभी बनकर हलुआ भी खिलायेगी और पूरी-कचौरी भी। जानता तो है, बद अच्छा, बदनाम बुरा। हम लोग सभी की निगाह में चढ़े हैं, बदनाम हो चुके हैं।'

एक व्यक्ति जो जगना से आयु में बड़ा था, बात सुनकर बोला—'जगना चौधरी, किसी टूटे शीशे में मुँह देख लेना। पण्डित की लड़की इस गाँव में तो शंकर मिश्र को मिलती नहीं। वह किसी बड़े घर में

जायेगी। शहर में रहेगी। वह देखा था न शहर का जवान, जो किसी बड़े घर का था, वह क्या योंही शहर से चलकर इस गाँव में आया था। मैं तो यह भी सुनता हूँ कि वह किसी मिल मालिक का लड़का था। मैंने उसे कमल के साथ बात करते दरिया किनारे देखा था। वहाँ खड़ा हुआ हँस रहा था।'

शंकर मिश्र ने कहा—'तुमने मुझे नहीं बताया। मुझे पता होता, तो इस बात को गाँव भर में फैला देता। मैं इस तीर से अपना काम साधता। सुदर्शन पण्डित और कमला के दिल पर ऐसी चोट पड़ती कि बाप-बेटी तिलमिला जाते। तब कमला को पता चलता कि किसी के दिल को दुखाना आसान नहीं···इस मन्जिल को काटना भी सुगम नहीं······।'

जगना ने शंकर मिश्र के कन्धे पर हाथ मारकर कहा—"वाह! अब तुम इतना भी करोगे! इस रास्ते से चल कर भी उस सुनहरी चिड़िया को पाना चाहोगे! ऐसे तो तुम उस बूढ़े की कब्र खोद दोगे।'

शंकर मिश्र ने इतना सुना और अनमने भाव में जगना की ओर देखा, दरिया पर जाने के लिए उन साथियों के साथ उठ लिया। उस क्षण उसके मन में उत्साह था, कोलाहल भरा था कि उस कमला को पाने के लिए क्या कुछ नहीं कर सकेगा······

पन्द्रह

नगर में पण्डित सुदर्शन जिस मकान में रहते थे, वह राय जानकी दास का था। यदुनाथ अस्पताल से लौटकर जल्दी ही अपने काम-काज में नहीं लगा। जलवायु बदलने के लिये वह बाहर गया। किन्तु जब वह नगर में लौटा, तो उसे यह देखकर अचरज हुआ कि उसकी माँ के पास कमल [illegible] गया है। कमला को यदुनाथ की माँ का स्नेह सहज ही प्राप्त हो गया। उसे यह [illegible]कर भी सुख मिला कि उसके एक कमरे में जो छोटी-सी लायब्रेरी थी, तो अलमारियों में रखी किताबों को कमला ने नये ढंग से लगवाया, जिससे अनायास ही उस कमरे का रूप बदल गया। कमला प्राय: वहाँ पहुँचती और उस कमरे में कई घण्टे बैठ कर पढ़ती। रजनीश एक स्कूल में जाने लगा था। लेकिन जब यदुनाथ बाहर से लौटा, तो उसे यह देखकर भी अच्छा नहीं लगा कि पहिले के समान कमला ने उस घर पर आना छोड़ दिया। यदि वह आती भी तो पुस्तकालय के कमरे में बैठ कर कुछ पढ़ती और फिर लौट जाती। प्राय: यह भी करती किताब घर ले जाती। पढ़कर रख जाती।

संयोग से एकदिन यदुनाथ घर पर था। जब कमला उस घर आयी और पुस्तकालय के कमरे में गयी, तो वहीं पर यदुनाथ को देख, वह कुछ ठिठकी। किन्तु यदुनाथ ने देखते ही कहा—'आओ, कमला देवी! मेरा धन्यवाद ले लो, तुमने इस कमरे का रूप सँवार दिया। तुमने इसे नया जीवन दिया! नौकरों ने तो इन पुस्तकों का सत्यानाश

कर दिया। वह बोला—'कैसी बात है कि तुम आती हो और लौट जाती हो।'

कमला ने हँसकर कहा—'हमारे जीवन का यही व्यवसाय है, यदु बाबू! लोग आते हैं और लौट जाते हैं।'

यदुनाथ भी हँस दिया—'लेकिन यह जीवन तो यहाँ आकर अपना अस्तित्व छोड़ जाता है, इतिहास बना जाता है। एक रेखा खींच जाता है। इस पुस्तकालय में रखी किताबों का यही तो कहना है। मनुष्य का शास्वत जीवन कुछ देता है, कुछ लेता है।'

कमला ने कहा—'इतना मैं भी मानती हूँ। अस्तित्वहीन मानव क्या कभी चलता है। सचमुच, कुछ छोड़कर जाता है। इस मानव की सफलता है।'

यदुनाथ बोला—'देखो तुम इस घर में आयीं, तो अलमारियों में रखी इन किताबों ने बता दिया कि इन पर किसी का हाथ लगा है। इन्हें सँवार कर रखा गया है। मुझसे माँ ने कहा कि तुमने कई दिन लगा कर इस कमरे का रूप सँवारा है।'

कमला ने कहा—'यह तो मेरा स्वार्थ था। मुझे इन किताबों से कुछ पढ़ना था।

यदुनाथ बोला—'स्वार्थ सभी का है। जीवन का अर्थ ही यह है। पर अपने स्वार्थ के साथ दूसरे का भी हित हो, इसे क्या समाज सोचता है।

कमला ने कहा—'मेरा मत है कोई भले ही ऐसा न समझे, परन्तु यही होता है। इस धरती की प्रत्येक बात परस्पराश्रित है।'

यदुनाथ बोला—'यह विवाद का विषय नहीं।' उसने कहा—'जिस जीवन का इतिहास बनता है, वह और है। वह विशिष्ट है।'

कमला ने हँसकर कहा—'सभी विशिष्ट बन सकते हैं। आप भी अपना इतिहास बना सकते हैं। लोग मर कर बनाते हैं, आप जीवित बनाइये।'

यदुनाथ सहज भाव से चुप रह गया । मानो वह अकस्मात ही जीवन के अन्धेरे में खो गया । जहाँ उसका स्वास घुटने लगा । जिस प्रकार मिल की चिमनी से जहरीला धुआँ निकलता, तो वैसा ही उसके मन में उठने लगा । वह जिस कुर्सी पर बैठा था तो उसका हत्था कस कर पकड़ लिया । कमर को झुका दिया । उस अवस्था में ही उसने अपनी आँखों को कमरे की छत पर लगा दिया ।

किन्तु कमला ने अत्यन्त मृदु और स्नेह प्लावित बनकर कहा—'यदुनाथ, आपके इस कमरे में जितनी किताबें हैं, ये सभी इन्सान के जीवन से सम्बन्धित है । इनमें इन्सान का इतिहास है, जीवन-चरित्र है । जो कहानी उपन्यास हैं वे भी नर-नारी के शास्वत जीवन का बखान करते है । लगता है, आप इन्हें पढ़ते नहीं, बड़ी ऊँची किताबें हैं । जिन्दगी की रोशनी से जगमगाती है ।'

यदुनाथ बोला—'मैं समय नहीं पाता । वैसे यह भी समझता हूँ कि साहित्य में इन्सान को जिस प्रकार उद्बोधित किया जाता है, मैं उससे दूर हूँ । मैं अजीब उलझन में फँसा हूँ ?'

उदास भाव से कमला बोली—'यह स्वाभाविक है । आपका बड़ा कारबार है ।'

यदुनाथ बोला—'अवस्था यह है कि करता कुछ हूँ और सोचता कुछ और हूँ । मैं विपरीत पथ पर बढ़े जा रहा हूँ ।'

इतनी बात सुनकर कमला अनायास चुप रह गयी । वह मानो यदुननाथ की बात के अन्तराल में डूब गयी ।'

यदुनाथ बोला—'मैंने सोचा था कि तुम अपने पिताजी के साथ आयी हो, तो कुछ मेरी सुनोगी, अपनी कहोगी । परन्तु हम दोनों ही दूर-दूर हैं । जैसे विपरीत हैं और मैं हूँ कि बाहर जाकर भी शाँति नहीं पा सका ? तुम सहज में अनुभव नहीं करोगी कि इस जिन्दगी में चकाचौंध को कोलाहल को छोड़ मैं और कुछ नहीं पाता । केवल बड़ी बातें···बड़े लोगों का सम्पर्क !'

कमला ने सूखे भाव से हँस दिया। उसने कहा—'यदु बाबू, मैं यहाँ आती तो हूँ, पर अनुभव करती हूँ कि मुझे आना नहीं चाहिये। यह बड़ा घर है, तो इससे अधिक सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। कहावत सुनी है न आपने, मारते के हाथ पकड़े जा सकते हैं, कहते की जबान नहीं। सचमुच, मेरी-आपकी समता नहीं। इस जिन्दगी की तुलना नहीं।'

कमला से बात सुनी, तो यदुनाथ जैसे आसमान से पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह चकित बनकर कमला की ओर देखने लगा। उस एक क्षण में ही उसने अनुभव किया कि यह कमला हल्की नहीं, भारी है। पत्थर है, जैसे जड़। आज अवसर पाते ही इसने घूँसा तान दिया। यदुनाथ को दिखा दिया कि तुम्हारे पास पैसा है, मेरे पास सम्मान है।

किन्तु उसी समय कमला ने फ़िर कहा—'यदु बाबू, जिस दुनिया में आप रहते हैं, वह और है। हमारी और। दोनों के रास्ते जुदा-जुदा है।'

तपाक से यदुनाथ बोला—'मैं इसे नहीं मानता। तुम्हारी धारणा गलत है। हीनता की द्योतक है।'

कमला ने आँखों से मुस्कराया—'यह आपकी उदारता है। सदाशयता है। कह सकती हूँ, अच्छी भावना है।' वह बोला—'परन्तु जानते हैं न आप, भावना व्यवहारिक नहीं होती, आदर्शमयी होती है। निरीक्षणिक। और धनवान आदमी जो कुछ आज कहता है, वह कल भी कहे, इसे क्या माना जा सकता है! क्षमा कीजियेगा, अभी तक मेरा यही अनुभव रहा है। ऐसा ही सुना है!' यह कहते हुए कमला के मन का रोष उसके मुँह पर उतर आया। उसका चेहरा लाल पड़ गया। उसी अवस्था में उसने कहा—'मैं सदा अनुभव करती हूँ कि जब यहाँ आती हूँ तो नौकर तक मुझे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। वे आपस में कानाफूँसी भी करते हैं। और यह उनका दोष नहीं, समाज की यही परम्परा है। सभी जानते हैं कि मैं एक निर्धन बाप की बेटी हूँ।'

उस समय, जैसे यदुनाथ सन्न पड़ गया। काटो तो उसके शरीर में खून नहीं रहा। मुँह सफ़ेद पड़ गया। जैसे चोर पकड़ा गया हो।

अतएव वह एकाएक बोल नहीं सका। कुछ ठहर कर उसने कहा—'कमला देवी, यह अपराध तो मेरा है कि मैं धनिक के घर में पैदा हुआ। परन्तु जिस बात को तुम इतनी सरलता से कह पायी हो।' मैं पूछता हूँ, क्या यही सत्य है? बोलो, इस परम्परा का और इन्सान की दूरी का कैसे अन्त किया जा सकता है?'

कमला ने कहा—'सिद्धान्त ऊँचा हो, तो सभी कुछ सुलभ बन सकता है। राजा फकीर के चरणों में झुकते है। परन्तु जिस स्तर पर आप खड़े है, उसमें यह सब नहीं निभता। स्वीकार नहीं किया जाता। अभी तो परम्परा यही है कि समता में ही निभाव होता है। मनुष्य ने इसी विचार को अपने जीवन में ढाला है।'

यदुनाथ बोला—'यह पाप···यह सड़ांद···बहता हुआ पीप···'

कमला ने अतिशय धीर बनकर कहा—'हाँ, यदुनाथ, यही। पाप-पूर्ण हीनता की भावना हमारे जीवन में डाल रही है। वह हमें व्यथित करती है। तोड़ती है। कोलाहलपूर्ण क्रन्दन हमारे मन: प्रदेश में गुंजाती है। वह सभी को प्रभावित करती है।'

यदुनाथ बोला—'तो यह पैसा···चाँदी और सोना···'

कमला ने फिर कठिन स्वर में कहा—'नि:सन्देह, यह दुर्भाग्य का विषय है कि इस चाँदी-सोने की चमक में आदमी खो गया है। आदमी का यही पाप है कि जिस वस्तु का निर्माण उसने समय की व्यवस्था के लिए किया, उसका स्वयं मालिक बन जाना चाहता है। वह चाँदी-सोने की सिल्लियों पर बैठकर गुर्राता है, समाज को दास और मूर्ख बनाता है।' वह बोली—'परन्तु मेरा तो यह भी मत है कि ऐसा समाज स्वयं मूर्ख बना है···पथ भ्रष्ट हुआ है! उसने समाज में दरार डाल दी है और अपना एक अलग वर्ग बनाकर उसी के कल्पना लोक में रहना चाहता है! बताइये, वह कैसा मनुष्य है···कैसा जीव है, क्या वह समाज को पीड़ा और व्यथा से परिचय प्राप्त करता है···वह जानता है कि अन्धेरे में कैसा कोलाहल भरा है···'चीत्कार···'

कमला खड़ी हो गयी और बोली—'अच्छा, अब जाऊँगी। रजनीश स्कूल से आता होगा। मुझे भोजन बनाना पड़ेगा।'

यदुनाथ भी खड़ा हो गया और बोला—'पण्डित जी कहाँ हैं, दिखायी नहीं दिये।'

कमला बोली—'वे फिर इस नगर के संघर्ष में फँस गये। बम्बई में कोई कान्फ्रेंस है, वहाँ गये हैं। मेरी माँ उन्हें जिस दलदल से निकाल कर ले गयी थी, तो उसके जाते ही, पिताजी फिर अपने रास्ते पर चढ़ गये।'

यदुनाथ बोला—'आज तुमसे बहुत कुछ सुना। कुछ कड़ुआ सुना, कुछ मीठा। अनुचित न हो, तो नित्य आया करो।'

कमला बोली—'मैं आजकल व्यस्त हूँ, परीक्षा आयी है, उसकी तैयारी में लगी हूँ। उसी हेतु आपकी ये किताबें देखने आती हूँ।'

उसी समय यदुनाथ की माँ वहाँ आ गयी। वह कमला को देखकर बोली—'बिटिया, सुनती हूँ कि तू भी अपने पिताजी के काम में हाथ बँटाने लगी। क्या तू भी नेता बनेगी?'

कमला ने कहा—'न, माँजी! मेरा ऐसा कोई विचार नहीं।'

यदुनाथ की माँ बोली—'शाबाश है तुझे, बाप का घर भी रखाती है और अपनी पढ़ाई भी करती है। सुनती हूँ कि नगर की गलियों में घूम-घाम कर सेवा का काम भी कर पाती है।

यदुनाथ ने कहा—'तभी कमला देवी दुर्बल हैं। जवानी में तप करने चली हैं।'

कमला ने धीमा-सा मुसकराया। उसने कहा—'काम करना ही हमारा धर्म है। मैं तो मानती हूँ, अर्थ-संचय का आधार भी श्रम है।'

यदुनाथ की माँ बोली—'बेटी, अपने स्वस्थ्य का ध्यान रखा कर। मेहनत करना तो अच्छा है।'

कमला ने द्वार की ओर देखते हुए हँस कर कहा—'माँ जी इन्सान भी ताँगे के घोड़े के समान चलता है। खाने को मिले, तो देर तक चल

सकता है। यह जिन्दगी अजीब गोरख धन्धा है।'

माँ ने हँसकर कहा—'यह तो ठीक है। अजीब माया है!'

यदुनाथ बोला—'माँ, इस पैसे ने आदमी के साथ न्याय नहीं किया। कमलाजी कहती है कि इसने आदमी को आदमी से जुदा कर दिया। इन्होंने अभी यह भी कहा कि निर्धन और धनिक की तुलना नहीं···समता नहीं···क्यों माँ!'

माँ ने अपनी हँसी रोक कर कहा—'ठीक तो कहती है, बिटिया। ऊँची बात कहती है। जैसा बाप, वैसी ही बेटी है।'

कमला ने कहा—'यदु बाबू, प्रकाश में खड़ा हुआ व्यक्ति अंधेरे में नहीं जाना चाहता। तब वहाँ पर खड़े व्यक्ति से संबंध और सम्पर्क कैसे बनेगा! प्रकाश अपनी जगह से उठकर दूसरी जगह नहीं जायगा, तो अन्धेरा भी उसके पास नहीं आ सकेगा! यही निर्धन और धनिक की समस्या है! बड़ा अन्तर है। दोनों में! एक समाज का पंच है और दूसरा अभियुक्त! बोलिए, निर्धन के लिए इस धरती पर ठौर कहाँ है! यहाँ के पदार्थ भी उसके लिए नहीं। कल ही मैंने एक स्थान पर कुत्तों और इन्सान के बच्चों को इंसान की झूठन चुकते और खाते देखा है! दोनों को लड़ते पाया है!'

यदुनाथ बोला—'ऐसा होता है! देखा नहीं, तो मैंने सुना है।' उसने कहा—'कमला देवी, अन्धेरे में प्रकाश पहुँचता है। वहाँ भी दिये की जोत जल सकती है। नया जीवन और प्रेरणा प्रदान करती है। ज्ञानदान करने वाला वहाँ भी प्रकाश करता है।'

कमला ने जैसे यदुनाथ की आँखों में अपनी आँखें डालकर कहा—'ऐसा होता तो है, पर बहुधा नहीं।' वह हँसी—'ज्ञानी ऐसा कर सकता है, परन्तु धनिक नहीं। और भूखे को ज्ञानदान, अनुभूति और शाश्वत भावना प्रदान करो, तो वह बेकार है। पहिले उसे जीवन चाहिए··· जीवन का आधार···रोटी!'

एकाएक यदुनाथ बोला—'ओह!'

माँ ने कहा—'बिटिया ठीक कहती है। भूखे को रोटी चाहिए, ज्ञान की बात नहीं।'

यदुनाथ बोला—'माँ, इन कमला देवी से कहो, यहाँ आया करें यह घर इन्हीं का है। संकोच न करें।'

माँ ने कहा—'हाँ, बेटी! यह घर तुम्हारा है।'

कमला बोली—'माँजी, जब चाहना होती है, तो आती हूँ।

माँ ने कहा—'हम सभी इस जगत के जीव हैं। उड़ने वाले परिन्दे हैं। तो भला क्यों न मिलें? जरूर एक दूसरे की खोज खबर लें।' वह बोलीं—'बिटिया, तुम यही कहती हो न कि समता नहीं, बराबरी नहीं; न बेटी! यह तो समझने की बात है। जिसके पास आज पैसा है, तो कल नहीं। जो आज पैसे से खाली है, कल वही पैसे वाला बन जाता है। इस धूप-दौड़ की भला कौन एक ठौर है!' यह कहते हुए यदुनाथ की माँ ने साँस भरी—'कमला रानी, एक दिन मैं अपने हाथों से चक्की पीसती, बर्तन माँजती और रोटी बनाती थीं। यह तो भाग्य की बात कि दिन बदल गये। रुपया आ गया और जब रुपया आता है, तो जाने का रास्ता भी साथ-साथ बनाता है। वैसे ही खर्च बन गये। पैसे-वाला जिन्दगी को देखने और समझाने का ढंग बदल देता है।'

कमला ने कहा—'माँजी, आदमी ऐसा सोच नहीं पाता। पीछे की ओर नहीं देखता, आगे की ओर आँख उठाता है।'

माँजी बोलीं—'यह बुरा है। आदमी अपनी कब्र आप ही खोद लेता है। सोचकर देखो, तो यहाँ की सभी सम्पदा भगवान की है। सभी की है। हमारा क्या है! अपना तो शरीर भी नहीं।'

यदुनाथ बोला—'माँ, ऐसा कोई समझता नहीं।'

माँ ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'लोगों की आँखों पर और बुद्धि पर पर्दा पड़ा है।'

यदुनाथ ने बात सुनी, तो बरबस हँस दिया। उसी भाव में वह कमला को देखने लगा।

माँ ने फिर कहा—'अरे, आदमी अपने लिये परेशानी तो पैदा करता है, दूसरे के लिये भी। दुनिया में चैन हो, तो यह धरती स्वर्ग बन जाय।'

यदुनाथ बोला—'माँ, यह संघर्ष स्थली है। यहाँ ऐसे ही चलेगा। इन्सान गिरा है और फिर बना है। यह भी हो सकता है कि एक दिन सभी कुछ एकाएक हो जाय ?'

माँ बोली—'क्या प्रलय···महानाश !' उसने कहा—'अरे, कोई अच्छी बात सोच ! नाश तो हो रहा है। आदमी नीचे गिर रहा है।'

यदुनाथ बोला—'माँ, युद्ध होते हैं, बीमारियाँ आती हैं और लोग एक बड़ी संख्या में मच्छरों के समान मर जाते हैं। जानते तो हैं, बड़े जानवर छोटे जानवरों को खा जाते हैं।'

माँ ने साँस भर कर कहा—'भगवान की माया है !

यदुनाथ ने फिर हँसते हुए कमला की ओर देखा, उसने कहा—'माँ, यह तिलस्मी इन्सान भगवान को भी ठगता है। उसका तो झूटा नाम लिया जाता है। देखो तो, इन्सान ही भगवान बना है।'

कमला ने कहा—'अच्छा, मुझे आज्ञा दें। यह माँ-बेटे का सम्वाद क्या कभी रुकता है।'

माँ ने हँसकर कहा—'बेटी, यह ऐसी ही बात करता है। अब बच्चा बना है।' वह बोली—'आया करो बेटी। घर तुम्हारा है ?

कमला ने नमस्ते किया और वहाँ से चल पड़ी।

उसी समय माँ ने यदुनाथ से कहा—'लड़की हो, तो ऐसी ! इसकी माँ भी ऐसी थी। बाप भी ऊँचे विचार रखता है। देखो, यह कमला पढ़ती भी है और घर का बोझ भी उठाती है। सभी काम अपने हाथ से करती है।'

यदुनाथ बोला—'माँ, यह कमला, सचमुच ही देवी है। पूजनीय है। यह जहाँ बैठती है, जहाँ जाती है, अपने अस्तित्व की छाप लगा देती है। यहाँ भी आती है, तो कोई-न-कोई निशानी छोड़ जाती है। इसने मेरे कमरे की सभी किताबें ढंग से लगा दी हैं।'

माँ बोली—'यह कमला संकोच करती है। यहाँ आने से झिझकती है।'

यदुनाथ बोला—'यह स्वाभाविक है। ऐसा करके भी यह कमला अपनी बुद्धि का परिचय देती है।'

माँ ने कहा—'बेटा, सयानी लड़की है। कहने वालों की क्या जबान पकड़ी जाती है।'

यदुनाथ बोला—'माँ, पण्डितजी के पास कोई और सम्पत्ति हो या नहीं, चरित्र रूपी सम्पत्ति अवश्य है। उसी पर उनका जीवन टिका है। वही सीख उन्होंने अपनी पुत्री को दी है।'

माँ ने कहा—'इन्सान की यही सबसे बड़ी पूँजी है।'

यदुनाथ ने कहा—'सुदर्शनजी का नगर में सम्मान है। निर्धन के समान धनिक भी उनके समक्ष अपना सिर झुकाता है।'

माँ ने बात सुन ली, उसने एक लम्बी साँस भरकर पुत्र की वह बात अपने पेट में उतार ली। वह मौन बनी रही। एकाएक ही उस दिशा में चली गयी कि जहाँ उसके पति चले और आगे बढ़े। तभी यदुनाथ की माँ ने अपने स्वर पर झटका-सा खाया और जैसे नितान्त उद्वेलित और हीन बनकर पुत्र से कहा—'बेटा, तू इस सम्पत्ति को मत खो देना। सब-कुछ खोकर भी, भिखारी बनकर भी, चरित्र की रक्षा करना···इन्सानियत के इस सबक को मत भूल जाना, यदुनाथ!

और यदुनाथ मौन बना खड़ा था। जिस रास्ते से कमला गयी, उस ओर ही गहरी दृष्टि से देखे जा रहा था···

सोलह

देर से पण्डित सुदर्शन के मन में यह बात बैठी थी कि जिस मजदूर समुदाय को ऊपर उठाने के लिये देश का प्रगतिवादी समुदाय प्रयत्नशील है, स्वयं मजदूर उसके प्रति उपेक्षित हैं और उदासीन है। वह स्वत: जागरूक नहीं। मानो वह सभी ओर से निरुपाय है और अशक्त बना है। इस प्रकार मजदूर का आर्थिक दासता में पड़ कर तो शोषण हुआ ही, अपनी मानसिक आदतों के कारण भी उसका पतन हो गया। एक बार पण्डितजी अकेले ही रात के समय एक मजदूर बस्ती में जा पहुँचे। संयोग से उस दिन मिल मजदूरों को वेतन मिला था। जब सुदर्शन पण्डित उस बस्ती में गये, तो वह पहिला दृश्य देखते हैं कि एक कोठरी में आठ-दस मजदूर बैठे हुए हैं। वे सभी शराब पी रहे हैं। उनके मध्य में शराब की बोतल रखी है और कुल्हड़ हैं। वे सभी नशे में झूम रहे हैं। एक-दूसरे की गलबहियाँ भी ले रहे हैं। एक मजदूर नशे में झूमता हुआ जा रहा है—'मुझे लैला तेरी अदाओं ने मारा।' सुदर्शनजी ने इतना देखा और सुना, तो उनका मन अनायास ही खेदपूर्ण बन गया और इसका एक कारण यह भी था कि उन आदमियों में एक आदमी वह था जिसे चार दिन पूर्व ही, उन्होंने मिल मालिक से कुछ रुपया दिलाया था, क्योंकि उसकी स्त्री के बच्चा होने वाला था। वह पण्डितजी के पास जाकर गिड़गिड़ाया था।

सुदर्शनजी वहाँ से आगे बढ़ना ही चाहते थे कि तभी एक मजदूर ने उन्हें देख लिया। वह तुरन्त ही चिल्ला पड़ा—अरे, पण्डितजी इतना

कहा और वह शराब की बोतल तथा कुल्हड़ हाथ में लिये उनके पास आ गया। उसके साथी भी आ गये। पण्डितजी ने कि जिस मजदूर की सहायता करायी, वह चुपके से खिसक गया। लेकिन उन्होंने उसे टोका नहीं। अन्य साथी पास आ खड़े हुए। नशे में बहकते हुए, टूटे शब्दों में बोले—'थो···ड़ी सी तुम···भी पी···लो, पण्डितजी!'

पण्डित ने कहने वाले की ओर देखा, जैसे उसे घूरा। उन्हें पता था कि किसी दिन वह किसान था। किन्तु जब उसकी जमीन कर्ज में चली गयी, तो वह अपने बच्चों का निर्वाह करने के हेतु नगर में आ गया। भील में काम करने लगा। वह पचास वर्ष से कम आयु का व्यक्ति नहीं था। जब उसने शराब की बोतल आगे करके, सुदर्शनजी को भी नियन्त्रित किया, तो तभी, उन्होंने चिढ़कर, जैसे क्रोधपूर्ण बनकर कहा—'अरे जगधर! होश कर! बेहोश न बन! अपनी हालत पर तरस कर!'

उस जगधर ने कहा—'पण्डितजी, अपनी हालत पर तो बहुत दिन तरस खाया। अब क्या रहा। जिन्दगी का नशा उतर गया, तो अब यह शराब का नशा···'

पण्डितजी ने कहा—'तू अभागा तो है ही, मूर्ख भी है।'

जगधर का नशा उतर चला। पण्डितजी जी की बात को उसने स्वीकार कर लिया। बोला—'हाँ, गुरु महाराज, मैं मूर्ख हूँ। जाहिल और निकम्मा हूँ।'

सुदर्शनजी वहाँ रुकना नहीं चाहते थे। क्योंकि शराब की बदबू बुरी तरह उठ रही थी। परन्तु जगधर ने जिस विनीति और विभिन्न भाव से अपनी बात कही, तो वह उनके मन को कील गयी। दयामय बनकर उन्होंने अपनी बात कही—'तो भाई, ऐसे कब तक रहेगा। क्या जिन्दगी में एक दिन भी सौभाग्य नहीं पायेगा। अब तू बैठ मैं जाता हूँ।' यह कहते हुए सुदर्शनजी आगे बढ़ गये। उस बस्ती में सभी ओर अँधेरा था। नालियों की बदबू हवा के साथ ऊपर उठ रही थी। मजदूरों की कोठरियों में मिट्टी के तेल के दीपक जल रहे थे, तो उनका बदबूदार

धुआँ भी चारों ओर फैल रहा था। किसी कोठरी में रोटी बन रही थी और चूल्हे का धुआँ भरा था। कहीं बच्चे रो रहे थे और उनका चीत्कार उठा था। कोई मजदूर अपनी कोठरी के बाहर चारपाई पर पड़ा अपना तम्बाकू भरा नारियल बजा रहा था। लेकिन जब पण्डितजी चुपचाप ही आगे बढ़ते चले, तो तभी, वह एक कोठरी में देखते हैं कि कुछ मजदूर जुआ खेलने में व्यस्त हैं। कौड़ियाँ पड़ रही हैं और दाव लग रहे हैं। इतना देखते ही, सुदर्शन पण्डित रुक गये। बाहर कोई आकर खड़ा है, तो जब इतना उन जुआरियों ने भी अनुभव किया, तो एक आदमी उठकर आया और बोला—'कौन ?'

पण्डितजी ने कहा—'मैं सुदर्शन !'

किन्तु मजदूर ने उन्हें नहीं पहचाना। वह घूर कर देखने लगा। वह भी शराब के नशे में था। जिसकी बदबू का झोंका पण्डितजी की नाक तक भी आ गया।

पण्डितजी ने कहा—'इन सबको बुलाओ। बाहर लाओ।'

इतना सुना, तो वे सभी जुआ खेलते हुए रुक गये। बाहर उठ आये। उन्होंने सुदर्शनजी को पहचान लिया। एक युवा मजदूर ने तुरन्त ही उनके पैरों को पकड़ लिया।

किन्तु सुदर्शनजी बोले—'ऐसे तो तुम आदमी नहीं बनोगे। मिल-मालिकों के दास बने रहोगे। अपना शोषण कराओगे।' इतना कहा और सभी पर निगाह डाल कर वेदना से भरा अपना मुँह ऊपर काले आसमान पर उठा दिया। उसी ओर देखते हुये, पण्डितजी ने फिर कहा, 'आज तुम लोगों ने अपने महीने भर के परिश्रम का फल पाया। तो उसे यों लुटाने लगे। देखता तो हूँ कि जब तुमने भगवान का दिया यह शरीर बर्बाद कर दिया, तो एक महीने की मेहनत का क्या मूल्य आँकोगे ! उस पैसे से तुम शराब पीते हो, जुआ खेलते हो, वेश्या के यहाँ···राम-राम !' उन्होंने अपने स्वर-भर झटका-सा खाया और उन्हें घूर कर कहा—सच, निरे पशु हो, तुम ! मिल मालिक तुम्हारे शरीर का खून निकालते

हैं और उसे पीकर अपना शरीर मोटा करते हैं और तुम तब भी अंधेरे में हो, उनके दास बने हो। तुम अपनी जिन्दगी को इसी प्रकार बिता देना पसन्द करते हो!'

एक मजदूर ने कहा—'पण्डितजी, हम क्षमा माँगते हैं।'

पण्डितजी ने अपना पैर पटककर कहा—'क्षमा अपनी आत्मा से माँगो, मुझसे नहीं। भला मेरा क्या आता-जाता है। पर कहे जाता हूँ, तुम चेते नहीं, तो जल्दी ही अपनी चिता बना दोगे।' और वह तुरन्त ही आगे बढ़ गये। वे अभी कोई आठ-दस कोठरियाँ छोड़कर आगे गये थे, कि तभी देखते हैं कि एक मजदूर नशे में चूर अपनी स्त्री को पीट रहा है। इतना देख सुदर्शनजी फिर रुक गये। वह चिल्लाकर बोले—'अरे, क्या मर्दमी दिखा रहा है, इस कमजोर औरत पर! जरूर, आज अधिक पी आया है। पैसे पा गया है।'

उसी समय कुछ और मजदूर भी पास आ गये। एक आदमी ने नमस्ते की और बोला—'हजरत जुए में सब हार आये हैं, पण्डितजी! पाई-पाई दे आये हैं। बीबी ने कुछ कहा, तो उस पर अपना डन्डा चला रहे हैं।'

सुदर्शनजी ने अतिशय ग्लानि और भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से उस मजदूर की ओर देखा। अब वह औरत को छोड़ बाहर आ खड़ा हुआ था। पण्डितजी के मन में आया कि हाथ में ली हुई बेंत से उसकी कमर उधेड़ दें। वे उसके मुँह पर थूक दें। चिल्लाकर कह दें, कायर! बुजदिल! निकम्मे! किन्तु उन्होंने इतना सब न कहकर उससे पूछा—'तुम्हें आज क्या मिला था?'

बात सुनते ही, उस दुर्बल और मैले बदन मजदूर ने अपना मुँह ऊपर उठाया। नशे से भरी आँखों से पण्डितजी की ओर देखा। उसने धीरे से कह दिया—'पैंतालीस रुपया।'

'तो तुम आज ही सब खर्च कर आये! एक घण्टे में अपनी सम्पदा

लुटा आये, शाबाश !' पण्डितजी ने कहा—'मैं कल मिल के सेठ से मिलूंगा और कहूँगा कि तुम कन्जूस हो। तुम्हारे मजदूर बादशाह हैं। तुम अपना सभी पैसा दो, तो मजदूर एक ही दिन में लुटा सकते हैं।' इतना कहते हुए, उन्होंने वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्तियों की ओर देखा और तब फिर उस व्यक्ति को लक्ष्य करके कहा—'तब औरत को क्यों मारते हो ! क्या इसलिए कि वह कमजोर है। तुम्हें रोटी बनाकर देती है। तुम्हारे बच्चों को पालती है। तुम्हारे पाप के साथ···'

एक व्यक्ति बोला—'पण्डितजी, यह बड़ा जल्लाद है। आये दिन ऐसा ही तमाशा करता है। औरत के बाल पकड़कर गलिहारे में खींचता है।'

पण्डितजी ने कहा—'मुझे तो तुम सभी जल्लाद लगते हो, अपनी जिन्दगी के ! अपना खून अपने हाथों से करते हो।'

कहने वाले ने श्रद्धा भाव से सिर झुकाया—'आप सत्य कहते हैं, पण्डितजी !'

पण्डितजी बोले—'यदि भगवान भी आसमान से उतर आये, तो वह तुम्हें नहीं समझा सकता। आदमी नहीं बना सकता।' उन्होंने तभी उस मजदूर को लक्ष्य किया कि जिसके द्वार पर खड़े थे। उसी से बोले—'अब महीना भर कैसे बिताओगे। कैसे रोटी चलाओगे ?'

उसने उत्तर नहीं दिया। मौन बना रहा। किन्तु उसके पड़ौसी ने कहा—'कर्ज ले लेगा। दूसरों के सामने गिड़गिड़ायेगा। आज भी कुछ कर्ज में गया। कुछ शराब और जुए में गया। तभी तो घर जब आया। मन का गुस्सा स्त्री पर उतारने लगा। आज रोटी भी नहीं बनी, आटा नहीं होगा।'

पण्डितजी ने कडुवे भाव से मुसकराया—'यह झुँझलाहट तो तुम्हारे जीवन में समा गयी है। अशक्त सर्प जिस प्रकार फन पटकता है, उसी तरह तुम सब की व्यवस्था है। सूझ नहीं पड़ता कि तुम पर दया की जाय, या घृणा की जाय। वैसे जानते तो होगे ही तुम, जिन सेठों की

तुम तिजोरियाँ भरते हो, वे भी तुमसे घृणा करते हैं। तुम्हारे पड़ौस से निकलना भी वे अशुभ मानते हैं। वे तुम्हें इस नर्क-लोक का कीड़ा मानते हैं।'

उस समय वे सभी मजदूर अवाक् थे, जैसे मूर्त्तिवत्। पण्डितजी की जेब में दस रुपये का नोट पड़ा था, वह निकाला और उस मजदूर की ओर बढ़ा कर कहा—'इसे ले। चाहो तो इसकी भी शराब पी लेना। जुआ खेल लेना। बाजार में जहर भी मिलेगा, पसन्द आये, तो वह भी खरीद कर खा लेना।'

इतनी देर में उस व्यक्ति का नशा उतर चुका था। उसने याचना-पूर्ण बनकर कहा—'महाराज—'

पण्डितजी बोले—'मेरी असमर्थता और तुम्हारी दीनता दोनों परेशान हैं। खिन्न हैं। तुमने अपनी जिन्दगी के साथ जो पाप किया, उसमें यह और बढ़ा रहे हो कि बेचारी स्त्री को मारते हो। अपना दोष उस पर डालते हो। तुम अपने पापों की झुंझलाहट उस निर्बल नारी पर निकालना पसन्द करते हो।' यह कहते हुए पण्डितजी वहाँ से चल दिये। वह उस रास्ते पर चढ़ लिये कि जिस पर चलकर वे अपने घर भी जा सकते थे और दरिया किनारे भी पहुँच सकते थे। उस समय सुदर्शनजी के मन की अवस्था घर जाने की नहीं थी। इसलिए वे सीधे दरिया पर पहुँच गये। उस समय चाँद निकल आया था। वह धीरे-धीरे आसमान की छाती पर चढ़ता जा रहा था। नगर में फैला हुआ विद्युत का प्रकाश उसके समक्ष हीन था। किन्तु नगर में चन्द्रमा की ओर देखना सुलभ नहीं था। दरिया का दूसरा किनारा साफ दिखायी दे रहा था। वहाँ दूर-दूर तक जंगल था। पण्डितजी को वह सब अच्छा लगा। मजदूर बस्ती में जाकर उनके दिमाग पर जो बोझ पड़ा, सिर में पीड़ा का आभास मिला, तो उस एकान्त में, शीतल चाँदनी के नीचे बैठकर मन और मस्तिष्क को आराम मिला। दरिया में कुछ नावें चल रही थीं। छोटी किश्तियों में दो-दो और चार-चार व्यक्ति बैठे हुए जल-

बिहार का आनन्द ले रहे थे। बीच-बीच में दूर खड़े स्टीमर का भोंपू भी बज उठता था।

सुदर्शनजी एक बेंच पर बैठे थे। उस समय उनके मन की अवस्था ऐसी कदापि नहीं थी कि वे सुख और संतोष अनुभव करें। उन क्षणों में ऐसा भी आभास नहीं हुआ कि मनुष्य जीवन ही श्रेष्ठ है, सफल है। अपितु, वे अनुभव कर रहे थे, यही जीवन क्षुद्र है, हेय है। अन्यथा, प्राय: उनके मन में आया कि इन्सान गौरवपूर्ण है, सफलताओं और अनुभूतियों का केन्द्र! लेकिन उस समय तो उन्हें लगा कि इन्सान भुनगे की तरह उड़ रहा है, नित-नित अस्तित्वहीन ही बनता जा रहा है। एक बार जब पण्डितजी ने एक कुत्ते को हड्डी चाटते और काटते हुए पाया, तो तब उन्हें सृष्टि-जगत में सबसे अधिक हीन जानवर कुत्ता ही लगा। परन्तु उस रात के समय वे जिस प्रकार के व्यक्ति-समाज से निकलकर उस दरिया के किनारे जा बैठे, तो अनायास ही, यह अनुभव करने लगे कि यदि उन्हें इस दरिया का किनारा न मिलता, यहाँ न आना होता, उन व्यक्तियों से जल्दी छुटकारा न मिला होता, तो निश्चय ही, उनका प्राण निकल जाता। साँस घुट जाता। क्योंकि वहाँ सड़ाँद थी, शराब की बदबू थी, इन्सान की हिकारत भरी नजरें और हरकतें दिखायी देती थीं। जिस मजदूर को वह दस रुपया दे आये, वह उन्हें इसलिए देने पड़े कि उसकी औरत कोठरी के अँधेरे में बैठी हुई सिसक रही थी। उन्होंने उसके आँसू तो नहीं दीख पाये, परन्तु कल्पना की कि अवश्य उसकी आँखें पीड़ा के आँसुओं से भरी होंगी। उन आँखों में क्षोभ की आग होगी। करुणा होगी। वह अपने जीवन को भार मानती होगी··· अभिशाप···

उस अवस्था में ही, पण्डित सुदर्शन को लगा कि जैसे इस धरती के कोने-कोने में आग जली है। इन्सान त्रस्त है, ग्रस्त है। अपमानवीय-तत्व सभी ओर बिखरे पड़े हैं। गाँव में भी···इस नगर में भी! और पण्डित सुदर्शन उन्हें हटा नहीं सकते, मिटा नहीं सकते! तब क्या अर्थ

है, उनके जीवन का ! वह मर जायें···नष्ट हो जायें···

पण्डितजी ने सिर के ऊपर खड़े चन्द्रमा की ओर देखा, उन्होंने अतिशय करुणा पूर्ण स्वर में कहा—'चन्द्रदेव, तुम्हीं इन इन्सानों के हृदय में प्रकाश करो। इन्हें बल दो। मैं तो हार गया। अशक्त बन गया।' यह कहते हुए सुदर्शन जी रुक गये। वे मरघट की चिता के समान अपने हृदय को जलता हुआ पाने लगे। उन्हें स्वतः ही अनुभव हुआ कि जिस उत्सर्ग की कामना उनके मन में थी, वह अब नहीं रही। वह तो छुप गयी। अब वह साधारण अपरिचित व्यक्ति से ऊपर उठ गये हैं, प्रसिद्ध बन गये। उसका सम्मान किया जाता है। गले में फूलों के हार पड़ते हैं। मान-पत्र दिये जाते हैं। स्वागत में सभाएँ की जाती हैं। भला क्यों ? किसलिए ? किन लोगों के कारण ?

पण्डित सुदर्शन के मन में कील चुभ-चुभ गयी। तड़प पैदा हुई। उन्हें लगा कि जैसे अपने शस्त्र से ही उनकी हत्या हो गयी। उनके मन में मजदूरों के प्रति जिस तीव्रता घृणा की भावना भरी लो उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि वह स्वतः ही अपने को दोषी मान बैठे। उन्हें सहज ही अनुभव हुआ कि इस विपिन्न इन्सान का दोष क्या ? उसे ऐसे वातावरण में लाकर खड़ा किया गया है ! ऐसी अवस्था में पहुँचाया है ! भला ये मदिरालय क्यों हैं···ये वेश्यालय क्यों ? ये सभी पूँजीवादी मनोवृत्ति के परिचय हैं। दिन भर का थका, लोह-दानव से लड़ने वाला मनुष्य जब 'साधन पाता है, तो वह भी, धनिकों द्वारा प्रचालित परम्परा का अनुसरण करता है···चुम्बक की तरह उस ओर झुकता है।

यों पण्डितजी के मन में कोलाहल व्याप्त हुआ। वह तीव्र हुआ। उन्होंने रोष भरे स्वर में कहा—'मजदूर निरीह है, निरपराध है। दोष ऊपर के समाज का है ! मेरा है ! मैं भी झूठी आत्म-प्रशंसा का शिकार बना हूँ। मजदूरों के नाम पर अपनी पूजा कमाने लगा हूँ और उन्हें देता क्या हूँ !' यह कहते हुए उन्होंने अपनी आँखें दरिया की लहरों पर डाल

दीं । उन लहरों से चन्द्रमा खेल रहा था । वह सैकड़ों लहरों से अठखेलियाँ कर रहा था । तभी उन्होंने कहा—'काश, मैं भी दरिया होता··· प्यासे की प्यास बुझा पाता···

उस अवस्था में ही पण्डितजी बोले—'इन्सान भी एक दरिया है, एक लहर है । वह एक से अनेक जीवन पर बार सकती है । पर मैं क्या ···मेरा अस्तित्व क्या···

और आदमी···इन्सान···सुदर्शनजी ने अपने हाथों की मुट्ठियाँ बाँध लीं और कहा—'इन्सान बनकर भी हम इन्सान नहीं । हैवान हैं । क्रीतदास हैं, इस जीवन के ! वह बोले—'मैंने भी अपना उद्देश्य भुला दिया । कल ही तो कहती थी कमला कि मैंने भी इन रईसों और धनपतियों के सम्पर्क में आकर अपनी वाणी को दबा दिया । राय जानकीदास ने अपना मकान दिया है, रुपया भी दिया है । इस नगर में रहना है, तो रुपया चाहिये । जीवन की भूख को तो मिटाता है ।

उसी समय पण्डित सुदर्शनजी ने बेंच के तख्ते पर अपने हाथ की मुट्ठी मारी और कहा—'मैं अपना यह रास्ता बदल दूँगा । राय जानकीदास का मकान छोड़ दूँगा । मैं भी मजदूरों के मध्य जाकर रहूँगा ।'

और वह बोला—ये मजदूर···ये अन्धेरे में पड़े प्राणी ! पण्डितजी के मन में जैसे सील भरी और दुर्गन्ध से पूर्ण गन्ध पैदा हुई, उन्होंने कुछ देर पूर्व की धारणा की फिर पुष्टि की और कहा—'मजदूर का कोई दोष नहीं । वह असहाय है । निरुपाय है । एक कुल्हड़ शराब पीकर वह अपनी पीड़ा को भूल जाना चाहता है । वह कुछ पैसा पाये, इसलिए जुआ भी खेलता है । ऊपर का समाज जो कुछ करता है, तो निम्न वर्ग उसी को सम्पादित करना चाहता है । गन्दे पानी का पतनाला ऊपर से गिरता है ।

एकाएक उनके मुँह से निकला—बेचारा इन्सान !

पण्डितजी खड़े हो गये । दरिया का किनारा भी जन-शून्य हो गया ।

दूसरे किनारे पर चकवा बोलने लगा। वह अपनी प्रेमिका को आवाज देने लगा। लेकिन जब सुदर्शनजी चले, तो बोल पड़े—सरकार चाहे, तो शराब भी बन्द हो सकती है। यह जुआ भी। चोरी भी। इससे किसी और वर्ग का उद्धार हो या नहीं, परन्तु मजदूरों का अवश्य हो सकता है। उन्हें जीवन मिल सकता है।

सत्तरह

नदी-तट से जब पण्डित सुदर्शन घर पहुँचे, तो उस समय रात का पहिला प्रहर बीत रहा था। जाकर देखा कि रजनीश सो चुका था और कमला पिता की प्रतीक्षा में बैठी-की-बैठी सो गयी थी। सोने से पूर्व वह जिस किताब को पढ़ रही थी, वह अब भी उसके हाथ में थी। पिता के आने की जब आहट पाई, तो कमला जाग गयी। देखते ही बोली—'अब आये हैं, आप! कितनी रात गयी!'

पण्डितजी ने कहा—'हाँ, बेटी! देर हो गयी। आज मन में ऐसी बात आई कि नदी पर जा बैठा। वहीं बैठा रहा।'

कमला ने पूछा—'कोई और भी था, साथ में?'

पण्डित ने कह दिया—'मैं अकेला था।'

वहाँ से कमला रसोई घर में गयी। थाली में खाना ले आयी। पण्डितजी जब भोजन करने बैठे, तो तभी कमला ने बताया—'यदुबाबू आये थे और उनकी माँ! वे दोनों देर तक बैठे रहे।'

पण्डितजी ने पूछा—'यदुनाथ की माँ क्या कहती थी?'

कमला ने कहा—'कहती थीं, पण्डितजी बहुत देर से घर नहीं आये।'

पण्डितजी भोजन करते हुए, इस बात पर टिके रहे कि यदुनाथ की माँ का आना निष्प्रयोजन नहीं होगा। उस नारी के मन में कुछ होगा। भोजन से निवृत्त हो वह चारपाई पर पड़ गये। उस समय कमला स्वयं रसोई में बैठी खाना खा रही थी। पिता को खिलाने के बाद वह खाती थी। जब वह लौटी, तो सुदर्शनजी जाग रहे थे। कमला अपने

बिस्तर पर पड़ गयी । उसका वह यौवनपूर्ण शरीर, विद्युत के प्रकाश में पुत्री के बदन की वह चमक देखकर, एकाएक ही, पण्डितजी को अपनी पत्नी का ध्यान हो आया । मानो उस दिवगन्त नारी ने अपना रूप और यौवन पुत्री को दान कर दिया । उन्हें इस बात का भी ध्यान हो आया कि जब उनका विवाह हुआ था तो कमला की माँ सोलह वर्ष की थी । अब कमला बीस वर्ष की है । छाया चित्र के समान पण्डित जी के समक्ष सभी कुछ आ गया । उन्हें लगा कि वह पुत्री के विवाह की ओर से उदास हैं, अपने स्वार्थ के लिये पुत्री का स्वार्थ पीछे छोड़ रहे हैं । अतएव, पण्डितजी ने सहज ही अनुभव किया मातृहीन पुत्री का यौवन जैसे सिसक रहा है, रो पड़ा है । उनके कारण ही वह भाग्यहीन बना है । फलस्वरूप, आँधी के समान पण्डितजी के मन में बात उठी कि कमला का विवाह करना आवश्यक है । कमला के हाथ पीले होने चाहियें ।

अपने मन में उठी बात को लिये ही, पण्डितजी के मन में यदुनाथ की बात आई और उन्होंने अपने-आप कहा, मैं इस नगर में आया, तो फिर यहीं का बन गया । यदुनाथ ने पकड़ कर बाँध दिया और पण्डित जी का इतना कहने का तात्पर्य यह था कि नगर में जितनी मिलें थीं, यदुनाथ के प्रयत्न से उन सभी मिलों के मालिकों ने एक सँघ निर्मित किया, जिसके अध्यक्ष पण्डित सुदर्शन बनाये गये । उस संघ का काम था मिल-मजदूरों की आर्थिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति का करना । उसके लिये नये-नये रास्ते निर्मित करना । इस कार्य के लिये मिल मालिकों ने फण्ड भी निश्चित कर दिया । जो काम यदुनाथ स्वयं करने में असमर्थ था, उसके लिये पण्डित सुदर्शन को आगे बढ़ा दिया ।

उसी समय कमला ने कहा—'यदु बाबू की माँ कहती थी कि उनका लड़का विवाह नहीं करता ।

पण्डितजी ने अपने मन में उठी हुई बात को छोड़कर कहा—'क्यों'

रुकावट क्या है ? यदुनाथ की क्या इच्छा है ?'

कमला बोली—'यह तो यदु बाबू जानें। उनकी माता की इच्छा है कि आप यदु बाबू से बात करें। माँ को भरोसा है कि आपका कहना मान लेंगे।'

सुदर्शनजी बोले—'बेटी, यह तो अपनी इच्छा की बात है। जीवन साथी चुनने का भी प्रश्न है। अब पुरानी रूढ़ियों की साँकलें टूट रही हैं। उनमें कुछ नयी जुड़ रही हैं। यह भी एक समस्या है कि आदमी पुराने को पसन्द नहीं करता और जो कुछ पुराना है, वह नये से मेल नहीं खाता।'

कमला ने कहा—'विवाह कुछ और हो, या नहीं एक सामाजिक परम्परा अवश्य है।'

सुदर्शनजी बोले—'धार्मिक भी है। परन्तु अब ऐसा कोई नहीं मानता, इसीलिये तलाक की प्रथा चली है। अब तो नारी अपने एक जीवन में कई विवाह कर सकती है। मेरा अपना मत है कि धर्म प्रति-हीन विवाह देर तक नहीं टिकते। उनमें कोई बन्धन नहीं होता।'

कमला बोली—'जिस रूढ़ि का प्रतिरोध पुरुष ने किया, अब नारी भी उसका समर्थन करती है। उनका दृष्टिकोण भी विस्तृत हो गया है।'

सुदर्शनजी बोले—'तभी तो घर-घर में धुआँ है। आग की लपटें उठ रही हैं। लोगों के जीवन जल रहे हैं।'

बात सुनकर, कमला अपना मत रोक गयी। कदाचित् उसने प्रस्तुत विषय को बढ़ाना पसन्द नहीं किया ?

लेकिन सुदर्शन जी के मन से तो बात उठ न पाई थी, वह उसी को लेकर फिर बोले—'इन्द्रियों के भोग, जीवन के भोग, आज सभी भोग रहे हैं। इसलिये पुराने संस्कार मर चुके हैं। पश्चिमी सभ्यता आज के युग का पथ-प्रदर्शन कर रही है।'

कमला ने कहा—परन्तु यदु बाबू यह नहीं मानते। वह किसी धनिक परिवार की लड़की लेना भी पसन्द नहीं करते।'

पण्डित जी मौन रह गये, बोल नहीं सके। क्योंकि जो बात देर से उनके मस्तिष्क में जग रही थी, वह उस समय जैसे स्पष्ट बन कर उनके सामने आ गयी। सुदर्शन जी इस बात को जानते थे कि इस बार नगर में आने की प्रेरणा उन्हें कमला ने दी। यदुनाथ के पीड़ित बनने का समाचार जब उन्हें गाँव में मिला, तो पुत्री ने ही उनसे कहा कि शहर जाकर यदु बाबू को देखा जाय। अतएव जब वह नगर में आकर अस्पताल में यदुनाथ से मिले, तो तब, कमला की आँखों में जिस प्रकार आँसू छलछला आये, गाँव में स्वप्न दिखायी दिया, तो ये सभी बातें पुत्री के भावना से भरे मन का तो प्रदर्शन करती ही थीं, साथ ही, पण्डित जी को लगा कि कमला के मन की अनुभूति भी उस यदुनाथ की ओर खिच गयी थी।

एकाएक उनके मन में प्रश्न उठा—'तो क्या यदुनाथ और कमला का सम्बन्ध हो सकेगा? यह उचित रहेगा? स्वाभाविक होगा?

पण्डित जी अपने मन के अन्धेरे में खो गये। वह बार-बार इस बात को दोहराने लगे, नहीं, नहीं, यह अस्वाभाविक है। असंगत है। यदुनाथ और कमला की समता कहाँ है। एक धनिक, एक निर्धन···धरती और आसमान का अन्तर है! आदर्श और है, व्यवहारिक और।

उसी समय कमला बोली—'पिता जी, यदु बाबू को अपने समाज में किसी निर्धन लड़की से विवाह करना चाहिए। प्रत्येक धनी को यही सोचना चाहिए। हमारे समाज में जो पैसे के नाम पर दहेज चलता है, लड़के और लड़कियों का क्रय-विक्रय होता है, तो वह इसी प्रकार बन्द होगा। धनिक माँ-बाप को अपनी लड़की गरीब लड़के को देनी चाहिए। इस रूप में उसकी सहायता भी होगी और लड़की भी सुखी रहेगी।'

पण्डित जी ने साँस भरी और कहा—'बेटी, यह बात नहीं निभेगी। फिर तो समाज की परम्परायें बदल जाएँगी। ऊँच-नीच का भेद नहीं रहेगा। समाजवाद का उद्देश्य अपने-आप पूरा हो जायेगा।' यह कहते हुए सुदर्शन जी के मन में जैसे पीड़ा उठी, जहरीला धुआँ घुट गया और

उन्होंने कहा—'बेटी, साँप का बच्चा भी मिट्टी चाटता है। हीरे-जवाहरात की कल्पना करने वाला स्वयं पत्थर होता है। यदुनाथ अभी युवक है, भावनावादी है। परन्तु यह न भूलो कि अन्ततः वह एक पूँजीपति का पुत्र है। जिसके पिता ने समाज को ठगा है, मूर्ख बना कर अपने घर में धन एकत्रित किया है। जिस प्रकार देश में जातियाँ हैं, वैसे ही एक जाति धनपतियों की है, वही उनकी बिरादरी है। उससे बाहर जाना उन्हें अशोभनीय लगता है। यदुनाथ की बहू किसी निर्धन परि-परिवार की नहीं हो सकती। समानता अपना सभी क्षेत्रों में अस्तित्व रखती है।'

सुनकर, कमला चिढ़ गयी। वह तुरन्त बोली—'पिता जी, यह तो समाज के साथ छल है, अपने दम्भ का प्रदर्शन करना है।'

ऊँचे स्वर में पण्डित जी बोले—'आज यही है। देर से है।'

खिन्न भाव में कमला बोली—'प्रकाश में चल कर भी मनुष्य अन्धा बना है। बात ऊँची करता है और काम छोटे।'

उसी समय बाहर म्युनिसिपैलिटी की घड़ी ने समय की सूचना दी। सुदर्शन जी बोले—'अब सो जाओ। यह हमारा विषय नहीं।'

किन्तु इस प्रकार, एकाएक सो जाने की चेष्टा दोनों की बेकार रही। सुदर्शन जी के मस्तिष्क में यह प्रश्न बार-बार उठ रहा था कि क्या सचमुच, यह मनुष्य-समाज इसी प्रकार छलता रहेगा···छला जायेगा। मानवता को छोड़ यह मनुष्य चाँदी-सोने की चमक में ही अपना मुँह देखता रहेगा और पण्डित जी का इतना सोचने का और कोई कारण हो या नहीं, कमला के विवाह का प्रश्न जरूर था। अब वह पुत्री की इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकते थे। किन्तु जितने गहरे दरार समाज में पड़ते देख रहे थे, उससे उन्हें पुत्री के लिए योग्य पात्र पाना सुगम नहीं था। कमला की शिक्षा भी ऊँची हो गई थी। अब उसके लिए साधारण योग्यता का वर प्राप्त करना उचित नहीं था। इसी से, जब उन्होंने समाज में विविध सीमाएँ और रेखाएँ निर्मित पायीं, तो उनके

मन में बरबस ही आया, ऐसे तो यह मनुष्य मर जायगा···इसका पतन हो जायगा···

इस ऊहापोह में ही, सुदर्शन ने करवट बदली और कहा—'मनुष्य का पतन तो हो चुका। अब किसी में आत्म-बल नहीं। नैतिक बल भी लोप हो गया, विवेकहीन समाज देर तक नहीं टिकेगा ! वह बोले, इसीलिए आदमी झुँझलाता है, परिस्थितियों का दास बना है।

संयोग से कमला भी नहीं सो पायी। उसके मन में भी बात उठी थी, आखिर क्या बात है, यदु बाबू के मन में ! वह कुछ मुझसे भी कहना चाहते हैं। उसे याद आया कि एक बार जब वह यदुनाथ के घर पहुँची, तो तभी अपने कमरे में यदुनाथ को बैठे देख कर कमला माँ के पास से उठ कर वहाँ भी गयी, जाते ही बोली—आप शिकायत न करें, इसलिए आपसे भी भेंट करने आई हूँ। कहिये, आज आप मिल नहीं गये···

यदुनाथ ने कहा—'हाँ, आज नहीं गया।'

उसी समय कमला ने हँसकर कहा—'अमीर आदमी आराम पसन्द होते हैं। गरीब रोटी का एक कौर भी मेहनत करके खाते हैं। विवश होते हैं।'

यदुनाथ बोला—'अवश्य। मैं इस सत्य का आदर करता हूँ। निर्धन पवित्र है। वह इस धरती का उपयुक्त प्राणी है।'

कमला ने फिर चुटकी ली—'आप लोग जिस बात को महत्व देते हैं, उसी को हीन बनाते हैं।'

सहज भाव से यदुनाथ बोला—'हाँ, यह भी होता है।'

कमला ने बात का रुख बदला और कहा—'आप हमारे यहाँ तो आ नहीं पाते। शायद समय नहीं मिलता।'

यदुनाथ ने कहा—'बात यही है। जीवन मिच गया है। चारों ओर कोलाहल उठा है।'

हँसकर कमला ने कहा—'माया जब आती है, तो अपने साथ कुछ

परेशानी भी लाती है ।'

यदुनाथ ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'कुछ नहीं, बहुत ।'

कमला के मन में रोमांच उठ आया, उसने कहा—'मैं तो कह बैठी, हँसी की बात—'

किन्तु यदुनाथ ने कहा—'सत्य यही है ।' वह बोला—'आज खाँसी जुकाम से घर पड़ा रहा । परन्तु यहाँ भी आदमियों का आना लगा रहा । व्यस्त रहा । तुम आयी हो, तो मुझे सुख मिला । लगा कि कोई अपना आत्मीय आ गया ।'

यदुनाथ से इतनी बात सुनकर कमला हंसी नहीं, गम्भीर बन गई । वह अपने आप में खो गई । वह चलने के लिये प्रस्तुत हुई ।

यदुनाथ बोला—'चलो, मैं छोड़ आता हूँ ।'

कमला ने कहा—'नहीं, धन्यवाद । मैं चली जाऊँगी ।' कमला लौट गयी ।

यों यह बात कई मास पुरानी हो गई । कमला के स्मृति-पट से भी उतर गयी । इस बीच में यदुनाथ से कई बार भेंट हुई । किन्तु जो चंचलता उस दिन कमला के मन में पैदा हुई, उतनी कदाचित ही कभी अनुभव हुई । इसीलिए, उस रात में भी, जब उसे यदुनाथ की बात याद हो आई, तो उसे इस बार पकड़ कर फिर नहीं छोड़ सकी । मानो वह बात स्वयं ही उसे पकड़ कर बैठ गई । वह उसके मन-मन्दिर के द्वार पर अड़ कर खड़ी हो गई ।

फलस्वरूप, जब देर तक कमला को नींद नहीं आई, तो वह अपने-आप बोली, इस जगत में सभी आकांक्षित हैं, अपना मन रखना चाहते हैं । यदु बाबू भाग्यवान हैं । जब इस जगत में पैसा ही सर्वोपरि है, तो वही उनके पास है ।

किन्तु इस पैसे के प्रश्न पर आते ही, जब कमला देर तक टिकी रही, सो नहीं सकी, तो तभी वह कमरे के अन्धकार में आँखें फेर कर बाहर की ओर देखने लगी । बाहर चाँद की उजाली छिटक रही थी

वह जाड़ों की रात थी । कमला को पता था कि गरीब की जवानी और जाड़ो की चाँदनी रात कोई नहीं देखता···कोई भी उसका आनन्द नहीं पाना चाहता । परन्तु जब कमला ने उसी चाँदनी को सर्वत्र फैली पाया । तो वह धीरे से कमरे के बाहर निकल गयी । वह मकान की छत पर चढ़ गयी । जाड़ों की पुरवैया बयार जैसे शरीर को फोड़ कर प्रवेश करना चाहती । कमला गरम चादर ओढ़े हुए थी । वह छत की मुंडेल पर बैठ गयी । चाँद की ओर उसकी दृष्टि लगी थी । उस मकान के सामने ही पार्क था । उस पार्क में विविध प्रकार के फूल खिल रहे थे । बीच में एक नेता की मूर्ति खड़ी थी । वह सफेद मूरत चाँद की चाँदनी में भली लगती थी । कमला को पता था कि वे नेता जीवन भर समाज-कल्याण के कार्य में रत रहे । उनके प्राण भी उसी हेतु विसर्जित हुए । एक ओर दूर तक जंगल दिखायी देता था । ओस पड़ रही थी । किन्तु कमला का ध्यान कहीं और था । वह तो मन की बात में डूबा हुआ था । वह कह रही थी, आखिर यदु बाबू की बात का अर्थ क्या । क्या प्रेम ? समर्पण ? जीवन-सम्बन्ध ?'

अपने मन की इस बात को लिए ही, कमला ने कहा —'निश्चय ही, यदु बाबू इसीलिए विवाह नहीं करते । आश्चर्य कि वह अपने मुँह से कुछ नहीं कह पाते । पैसा उपार्जित करना जानते हैं, पर नारी के मन में बैठना नहीं । उस समय सर्दी थी, परन्तु कमला के माथे पर गर्मी की उपस थी । उसने कहा—जो सम्भव नहीं, इस जन्म में सत्य नहीं, यदु बाबू उसी का यद्घोष करते हैं । वह भावनाप्रिय हैं न, तो कदाचित इसीलिए मेरे सामने इतनी बात कह सके । उसी समय उसने अनुभव किया कि वह जब भी मिले हैं, इस घर आये हैं, तो वे मानो सचमुच ही, अपने मानस में कोई बात छिपाये रहे । उसे कह नहीं सके ।

दिल में तो, यदुनाथ की माँ ने कमला को बताया कि उसका यदु कभी घर के नौकरों पर गुस्सा भी नहीं हुआ । बाहर भी किसी को नौकरी से हटाने का प्रयत्न नहीं किया ।

कमला ने कहा—'यदु बाबू की यही विशेषता है। सरल हैं, सात्विक हैं।

उसी समय पण्डित सुदर्शन जी कमरे की छत पर आये और बोले—'तुम यहाँ हो, बेटी!' उन्होंने कहा—'मेरी नींद भी उचट गई। देखता हूँ कि तुमने भी—'

एकाएक कमला ने कहा—'मैं परेशान हूँ, पिता जी! देखती हूँ कि आपके लिए भी बोझ हूँ।'

किन्तु पण्डित सुदर्शन ने कमला के सिर पर हाथ रख कर कहा—'तू शान्त बन, मेरी बच्ची! समझदारी से काम ले। जीवन-सागर गहन है, असीमित है, इसमें डुबकी मार कर चाहे जीवन प्राप्त कर लो, चाहे मौत! न भूल बेटी, तू ही मेरा सम्मान है!

कमला ने पिता के कन्धे पर मुँह रख दिया—'मैं उस सम्मान की रक्षा करूँगी, पिता जी!'

अठारह

और उन दिनों पण्डित सुदर्शनजी के मन में यह बात तीव्रता से जा रही थी, यह धारणा बन गयी थी कि धन और उसके मालिकों का विरोध करके सृजनात्मक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते। कदाचित् इसका एक कारण यह भी था कि देश की सरकार की कुंजी प्रत्यक्ष रूप से धनवानों की जेब में पड़ी थी। ऐसी स्थिति में देश का रोष, विध्वंसनात्मक प्रवृत्तियों का जोर समस्या का कोई समाधान उपस्थित नहीं करते थे। देश के जिन नेताओं ने अपूर्व बलिदान किये, तो अवसर पाते ही, वे स्वयं धन के लोभी बन गये। भौतिकवाद में डूब गये। मानो काजल की कोठरी में जाकर कोई भी अछूता नहीं रहा। इसलिए पण्डित सुदर्शनजी पुराने समाज सेवी होकर भी, नये युग के आगमन पर, जब उस रंग में नहीं रंग सके, तो वह पिछड़ गये। जहाँ थे, वहीं खड़े रहे। जिसका परिणाम यह हुआ न मन की इच्छा पूरी हुई, न शरीर की। आत्मा की खूराक भी नहीं प्राप्त हुई। घर में सयानी लड़की, पास में पैसा नहीं; शरीर बूढ़ा। समाज की भलाई के लिए जो विचार उन्होंने जीवन भर व्यक्त किये, उनका भी कोई सफल प्रयोग नहीं। मानो सभी कुछ वही मनुष्य, वही उसका रास्ता! वही विचार, वही कार्य-कलाप!

लेकिन पण्डित सुदर्शनजी के विचार और अवस्था इतनी आगे बढ़ गयी थी कि वे अब पीछे नहीं हट सकते थे। पीछे जीवन नहीं था, मौत थी। इसलिए वह बीच का रास्ता अपनाना चाहते थे। राय जानकीदास

से अब उनका कोई स्पष्ट विरोध नहीं था, परंतु यह पण्डितजी जानते थे कि वह बूढ़ा साँप यदि अब काट नहीं सकता, तो फुँफकारता अवश्य है। सिद्धांत का विरोध दोनों ओर ज्यों-का-त्यों है। अब स्थिति यह थी कि पिता-पुत्र में विरोध होता है। कभी-कभी पण्डित सुदर्शन को उसका मध्यस्थ बन जाना पड़ता है।

एक दिन जब पण्डितजी एक सभा से भाषण देकर लौटे तो घर जाकर देखते हैं कि गाँव का शंकर मिश्र चारपाई पर पड़ा है। वह बीमार है, बड़ी विभिन्न और दरिद्रावस्था को प्राप्त है। उसको तेज बुखार है, तो कमला माथे पर ठण्डे पानी की पट्टी रख रही है। यदुनाथ पास बैठा है।

पण्डित जी ने शंकर मिश्र की चारपाई के पास खड़े होकर कहा—'क्या हुआ, इसे ? यहाँ कैसे आया ?'

कमला बोली—'इस शंकर मिश्र के पास बुद्धि तो है नहीं, इसलिये मुसीबत मोल लेता है। अपने साथ एकाधी कहानी लिये फिरता है।

यदुनाथ बोला—'मैं उस कहानी को मिटवा दूंगा। कल ही पुलिस से कह दूंगा।'

पण्डितजी ने पूछा—'फिर भी क्या बात ! कोई नयी बात ! यह शंकर गलत आदमी है।'

कमला ने कहा—'गलत तो है, पर गाँव का है। अपना है। यह एक डाके में फँसा है !'

पण्डितजी ने विरक्तिपूर्ण बनकर कहा—'अपने सभी हैं। पर जो समाज का अपराधी है, वह जरूर दण्ड पायेगा। इसने डाके में भाग लिया होगा।'

उसी समय शंकर मिश्र ने हाथ जोड़े और विनीत बनकर कहा—'दादा, तुम्हें भगवान मानता हूँ। तुमसे झूठ बोलना पाप है। मैंने उस डाके में भाग नहीं लिया। गाँव वालों ने दुश्मनी से मेरा नाम लिखा दिया।'

कमला ने कहा—'ये महाशय उसी दिन से गाँव से बाहर हैं। इस नगर में भी चार दिन से आये हुए हैं। आज यहाँ आये हैं।'

पण्डित सुदर्शन ने बात सुन ली और विरक्ति के साथ अपना मुँह फेर लिया।

यदुनाथ बोला—'मैं पुलिस के आफीसर को यहाँ ले आऊँगा। आवश्यकता पड़ी तो इस मिश्र की जमानत करा दूँगा।'

पण्डितजी ने कहा—'भाई, ये लोग जमीन के लिये बोझ हैं। समाज के लिये खराब ग्रह हैं। इनका दण्ड पाना ही श्रेयस्कर है।'

कमला ने कहा—'पिताजी, हमारे समाज में एक यह भी रोग है कि लोग निठल्ले बनकर मुफ्त का खाते हैं। यह शंकर मिश्र भी ऐसा ही है। पर मैंने कह दिया है कि यहाँ आया है, तो अच्छे होकर जाना। आदमी बनकर।'

उसी समय पण्डित सुदर्शन ने देखा कि शंकर मिश्र की आंखों में आँसू हैं। वह बाहर भी निकल आये हैं। लेकिन जब कमला ने उस ओर देखा, तो वह पिता की तरह चुप नहीं रही, उसने अपनी धोती का आँचल उसकी आँखों पर रख दिया और कहा—'तुम पुरुष हो। रोया नहीं करते। हँसा करते हैं। कोई मुसीबत आती है, तो उसका सामना किया करते हैं।'

एकाएक शंकर मिश्र ने उद्वेलित बनकर कहा—'कमला बहिन—'

कमला ने सदय बनकर कहा—'भाई—'

यदुनाथ खड़ा हो गया और बोला—'मैं जाता हूँ। डाक्टर की दवा इस मिश्र को देना। कोई विशेष बात हो, तो डाक्टर को कहला भेजना। यह कहते हुए यदुनाथ चल दिया।

पण्डित सुदर्शन ने पूछा—'क्या डाक्टर बुलाया था ?

कमला ने कहा—'हाँ' पिताजी ! आप तो प्रातः के गये अब आये हैं। शंकर मिश्र की हालत अच्छी नहीं थी। संयोग से यदुबाबू आये और मेरी परेशानी देखकर ड्राईवर से डाक्टर बुलवा लिया। फिर वही

दवा लाया।

गम्भीर स्वर में पण्डित सुदर्शन ने कहा—'अब मैं यह मकान छोड़ दूँगा। आज मैं जिस सभा में भाषण दे आया। उसमें राय जानकीदास की भी आलोचना कर आया। वहाँ पर वह भी उपस्थित थे। विषय ही ऐसा था। मिल मालिकों को अध्यक्ष कहना मेरी आत्मा को पसन्द नहीं आया।'

कमला ने अप्रतिभ बनकर कहा—'आपके मन में जो कुछ आता है, उसे कहना क्या शोभता है। और जानते हैं, पैसा अस्तित्व हीन नहीं बनेगा। यों उपेक्षा का पात्र नहीं। जब आप आपनी आलोचना सुननी पसन्द नहीं करते, तो धनिक भला कैसे पसन्द करेगा। जिसका पुत्र आप का इस तरह सम्मान करता है, इस घर के प्रति विनीत बनता है, तो उसके पिता की सार्वजनिक रूप मे निन्दा सुनना पुत्र को भी पसन्द नहीं आयेगा।'

पण्डित सुदर्शन को पुत्री का वह विरोध अच्छा नहीं लगा। उनका मन और अधिक विक्षुब्ध बन गया। उस दिन वह दिन भर परेशान और व्यस्त रहे। घर आये, तो प्रथम शंकर मिश्र को देख उनका मन आकुल बन गया। किन्तु जब पुत्री ने स्पष्ट रूप से धनपतियों की हिमायत की, तो उनका दिमाग और भारी पड़ गया। फलस्वरूप, उन्होंने तुरन्त कहा—'मुझे उसकी चिन्ता नहीं कि किसको क्या पसन्द आता है। मैं अपना काम करता हूँ। आत्मा की आवाज सुनाता हूँ। तूने यह कैसे समझ लिया कि पैसा ही बड़ा है, आदमी कुछ नहीं?'

कमला ने पिता के स्वभाव और हठ पर ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—'पैसा बड़ा है, यह आप भी जानते हैं। उसका अस्तित्व मानते हैं। सदा तो उसके बगैर अभावग्रस्त रहे हैं।'

पण्डितजी चीख उठे—'कमला की बच्ची···'

कमला ने कहा—'अब आपको गुस्सा आया है।'

पण्डितजी गरज कर बोले—'तू मेरी चिता बनाना चाहती है··

मुझे बे-मौत...'

कमला ने फिर भी सहज भाव से कहा--'पिताजी, यह सत्य न भी हो, तो तब भी पैसे का बोलबाला है। और जानते तो हैं आप, आदमी अपनी चिता स्वयं बनाता है। आपदायें खरीदता है। आप भी यही करते हैं।

पण्डित सुदर्शन ने दाँत भींच लिये, क्रोध से होठ काटे और हाथ में ली बेंत और कमरे के फर्श पर मार कर कहा----'कमला, मैं तेरा सिर फाड़ दूंगा।'

आश्चर्य, कि कमला ने तब भी मुसकराया और कहा---'आप मेरा सिर फाड़ देंगे, तो फिर डाक्टर के पास भागे-भागे भी आप ही जायेंगे। मैं जानती हूँ कि आप कितने परेशान बनेंगे।' वह बोली---'आज आप को बहुत दिन में क्रोध आया है। किसी समय आपने ही कहा था कि क्रोध में आदमी का विवेक नष्ट हो जाता है। मैं अब कहती हूँ कि यदि आप राय जानकीदास तथा अन्य कारखानेदारों का अस्तित्व नहीं मानते, तो उनसे दूर रहिये। गाँव चलिये। यह नगर भी छोड़ दीजिये। यह नहीं हो सकता कि आप उन्हीं का खायें और उन्हीं को गुर्रायें...'

इतनी देर में पण्डितजी का क्रोध नीचे उतरा। एकाएक उनसे कुछ कहते नहीं बना।

कमला ने फिर कहा---'जीवन की इच्छाएँ तो पूरी करनी हैं। वे पैसे से पूरी होती हैं। बताइये, वह कहाँ से आये!'

पण्डित सुदर्शन जी फिर भी मौन। उन्हें इतना क्रोध आया कि सिर के बाल भी खड़े हो गये। उनका रंग साँवला था। आँखें प्रायः लाल रहतीं। लेकिन उस समय क्रोध में वे और अधिक सुर्ख बन गयी थीं। इसलिये चेष्टा भयानक थी। किन्तु उस आकृति को देख कोई और डर सकता था, किन्तु पुत्री नहीं। क्योंकि अपने पिता का स्वभाव जानती थी। इसी बीच में पण्डितजी ने कुर्सी छोड़ दी और कमरे में घूमने लगे। उनके दोनों हाथ पीछे की ओर बंधे थे, उनकी

मुट्ठियाँ भी बन्द थीं।

कमला ने कहा—'पिताजी आज आपने प्रातः से कुछ भी नहीं खाया। चलिये, मुँह-हाथ धो लीजिये। भोजन रखा है, खाइये। रजनीश अभी-अभी खाकर बाहर चला गया है।'

लेकिन उस अवस्था में पण्डित सुदर्शन भोजन नहीं कर सकते थे। अभी वे अशान्त थे। भूखे भी थे। किन्तु उस समय तो वह आत्म-पीड़ा से भरे थे। उनके मन में बात उठ रही थी कि क्या फिर गाँव जाया जाय। शहर में रहने के लिए तो पैसा चाहिए और उन्होंने अपने-आप कहा—'इस नगर में आना भी सुख कर नहीं रहा। गाँव में जा बैठा था। गुजारा चल रहा था। फिर इस दलदल में आकर फँस गया।'

पिता को चुप देख, कमला ने फिर पास आकर टंकोरा—'पिता जी, क्या सोच रहे हैं। क्या अभी गुस्सा है। चलिये, खाना खा लीजिये। मन को स्वस्थ कीजिये!' और उसने स्वतः ही साँस भर कर कहा—'पिता जी, जीवन के इस मैदान में शांति की कल्पना करना बेकार है। आदमी स्वभाव से संघर्षशील है। आपके जो विचार हैं, उन्हें छोड़ देना भी अहितकर है। इसलिए आपकी महत्ता है। इसी हेतु कारखानेदार प्रतिष्ठा करते हैं। इस दुनिया में कोई सम्मान देता नहीं कराया जाता है। आप उसमें सफल बने हैं।'

जैसे, पण्डित सुदर्शन को पुत्री की उस बात से शांति मिली। उन्होंने शंकर मिश्र की ओर देख कर कहा—'तो तुम डाके के अभियुक्त हो, भागे हुये हो?'

कठिनाई से शंकर मिश्र ने कहा—'दादा, डाका तो मैंने डाला नहीं, मैं बेगुनाह हूँ।'

कमला ने कहा—'मिश्र, तुम्हारा बुखार उतर रहा है। घबड़ाओ नहीं। तुमने अपराध नहीं किया, तो कुछ नहीं होगा।

शंकर मिश्र ने कहा—'मुझे इस नगर में कहीं भी ठहरने का स्थान नहीं मिला। यहाँ कोई अपना नहीं।'

कमला बोली—'यहाँ कोई किसी का नहीं। लोगों में आत्मीयता नहीं।'

शंकर मिश्र ने कहा—यहाँ के लोग पत्थर हैं। सजे-सजाये आदमी मोम का दिल नहीं रखते, लोहे का रखते हैं।'

इतना सुनकर, कमला ने सहज भाव से मुस्करा दिया—'अरे, शंकर मिश्र!'

शंकर मिश्र ने कहा—'ठोकर खा कर ही आदमी आँख खोलता है। अपनी राह पहचानता है।'

पण्डित सुदर्शन ने कमला को सुनाया—'स्वार्थ भी एक विष है। जो सहज में नहीं मिटता। साँप अपनी आदत नहीं छोड़ सकता।'

कमला ने पूछा—'आज कोई विशेष बात हुई?'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'राय जानकीदास बड़ा धूर्त्त है। मीठा चतुर है। आज जिस सभा में मैंने उसकी आलोचना की उसका सभा-पतित्व वे स्वयं कर रहे थे। वह सभा नगर के कुछ प्रगतिवादी तत्वों द्वारा आयोजित की गयी थी। मजदूर और मिल मालिकों के परस्पर सहयोग पर अधिक बातें हुईं। मैंने सुना उस सभा का आयोजन भी राय जानकीदास की प्रेरणा पर हुआ था। आश्चर्य कि मुझे पहिले नहीं बताया। उस सभा में अधिकाँश लोगों ने सेठ की प्रशंसा की। लेकिन जब एक वक्ता ने कहा कि राय जानकीदास की मिल में सबसे अधिक असन्तोष, कटुता है और मजदूरों के साथ पशुता का-सा व्यवहार किया जाता है, तो तब, मुझे यह देख कर अचरज हुआ कि जो सुधार-वादी व्यक्ति थे, उन्होंने ही इसका विरोध किया। एक ने तो राय जानकीदास को देवता बताया और सचाई थी यह कि वहाँ सेठ का पैसा बोल रहा था। यही देखकर मुझे झुंझलाहट आई। बोलने लगा, तो चेष्टा करके भी मन की बात रोक न पाया।'

कमला ने कहा—'तो इसमें आपत्ति क्या, पिता जी! आपने मन की बात कही, ठीक किया।' किन्तु तत्क्षण ही वह कहने लगी—'लेकिन

ऐसा निभता नहीं । आज के युग में चलता नहीं । समाज का कार्यकर्ता समझता है कि मैं धनवान को लूटता हूँ और धनवान समझता है कि मैं कुछ पैसा उसके मुँह पर मार कर मुँह बन्द करता हूँ । चोरों के इस समूह में आप सरीखे स्पष्ट वक्ता की कोई ठौर नहीं !'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'बेटी, मैं जानता हूँ मैं भी विवश हूँ । मजदूर अब भी अकेला है, दास है, शोषण की चक्की में पीसा जा रहा है । वह कराह रहा है ।' वह बोले—'राय जानकीदास इन्सान की जिस सूरत को अपने शीशे में देखते हैं, उसमें मजदूर का रूप नहीं आता उन्हीं का आता और उनके हृदय में दम्भ है, छल है । अधिक उपार्जन की कामना है ।

गम्भीर स्वर में कमला ने कहा—'यह स्वाभाविक है ।'

पण्डित जी ने कहा—'इधर से जब सभा में गया, तो राय जानकी-दास अपनी मोटर में ले गये । परन्तु उधर से मुझे पैदल ही आना पड़ा । मनुष्य अपनी प्रशंसा पसन्द करता है, बुराई नहीं ।' वह बोले—'बेटी, यह विपरीत बात है कि बाप मुझे अपना विरोधी माने और बेटा गुरू । यह निभने वाली बात नहीं ।'

कमला ने कहा—'हम इस मकान को छोड़ देंगे ।'

पण्डित जी ने कहा—'यह करना पड़ेगा । उचित होगा । यह कहते हुए पण्डित जी दूसरी ओर गये । हाथ-मुँह धोकर रसोई में पहुँच गये । जब वह भोजन करने लगे, तो कमला से बोले—'यह शंकर मिश्र आ गया है, तो ठीक होना चाहिए । गाँव का है ।'

कमला ने कहा—'इसकी सोहबत खराब है ।'

सुदर्शन जी बोले—'यहाँ रहेगा, तो आदमी बन जायेगा । कुछ काम भी करने लगेगा ।'

उसी समय रजनीश बाहर से आया । वह कमला के पास आकर बोला—'जीजी, दो पैसे !'

कमला ने कहा—'देख, रजनीश ! अब तू पिटेगा । बहुत पैसे खर्च

करता है । चटोरा बन गया है ।'

इतना सुनकर, रजनीश ने पिता की ओर देखा, वह बोले—'क्यों, पैसे का क्या करेगा !

रजनीश ने धीरे से कहा—'गुब्बारा ।'

पागल कहीं का ! अब तू बच्चा है कि गुब्बारा उड़ायेगा । उन्होंने जेब से अधन्ना निकाला और उसकी ओर फेंक दिया । रजनीश पैसा पाते ही फिर भाग गया ।

हँसकर सुदर्शन जी बोले—'बच्चा है, खिलाड़ी है ।

कमला ने कहा—'पढ़ने से जी चुराता है ।'

उस समय कमला के मन में आया कि कह दे, आपका प्यार इसे बिगाड़ता है । किन्तु इतना उसने नहीं कहा । क्योंकि वह जानती थी कि उसके पिता का अवलम्ब इस रजनीश के अतिरिक्त और क्या है ! यही तो एक सहारा है कि जिसे देखकर इन्हें सुख मिलता है । उसने कहा—'खाना दूं ।'

सुदर्शन जी ने पानी का गिलास उठाते हुए कहा—'बस, बेटी ! पेट भर गया ।'

कमला ने कहा—'अब आप बहुत कम खाते हैं, पिता जी !

सुदर्शन जी मुस्कराये—'बुढ़ापा आ गया, बेटी ? पाचन-शक्ति कम हो गयी ।'

कमला ने कहा—आप बरबस ही बूढ़े बनते हैं, बुढ़ापा नहीं आया ।'

इतना सुना, तो पण्डित सुदर्शन ने हँस दिया ।

कमला ने कहा—'आपका स्वास्थ्य फिर गिरने लगा है । न समय पर खाना खाया जाता है, न सोया जाता है ।

सुदर्शन जी ने अपना मत नहीं दिया । वह कमरे में पहुँच गये । उस दिन का अखबार उठाकर देखने लगे । जब रसोई की ओर से कमला भी कमरे में पहुँची, तो वह यह देखकर चकित रह गई कि उसके

पिता के पास राय जानकीदास बैठे थे। वे वृद्ध थे। कमजोर भी थे। परन्तु उस समय जैसे उन्हें जवानी आ गई थी। खून में उबाल आ गया था। संध्या के उस अँधियारे में वे पण्डित सुदर्शन की ओर अपना रिवाल्वर ताने हुए कह रहे थे—'तुमने ही मुझे समाज में गिराया है··· मेरा अपमान किया है। मैं तुम्हें मार दूंगा।'

लेकिन सुदर्शन जी गम्भीर थे। वे मौन बने थे। जब राय जानकीदास ने अपनी बात कही, तो वह उस काले लोहे के पिस्तौल को देख और राय साहब के क्रोध को लक्ष्य कर एकाएक बोले—'बस, इतनी बात राय जानकीदास! इसी के लिए यहाँ तक आने का कष्ट किया!' उन्होंने अपने कुरते के बटन खोल दिये और कहा—तुम्हारी आत्मा यदि यही कहती हो, तो मुझे गोली मार दो। मेरा अन्त कर दो!'

राय जानकीदास ने कहा—'मेरा रुपया···मेरी प्रतिष्ठा···

पण्डित सुदर्शन ने घूरकर उस ओर देखा और कहा—राय जानकीदास, लगता है, तुम सत्य नहीं समझ सकोगे। जीवन भर अन्धेरे में रहे, तो मौत भी अन्धेरे में पाओगे। तुमने रुपया तो पाया, पर मनुष्यता का पाठ नहीं पाया। सोचता हूँ, कुछ भी नहीं पाया।' वह बोले—'रुपया भी कोई पाने की चीज है, छीनने की चीज है, लूटने की। वही तुमने किया। तुमने पिस्तौल तो ले लिया, परन्तु मुझे मार देने की शक्ति नहीं प्राप्त की। जाओ, लौट जाओ, अपने घर।'

उसी समय वह पिस्तौल ख-न्-न् करके कमरे के फर्श पर गिर कर खनखना गया। राय जानकीदास कुर्सी पर गिर गये और चीख उठे—'मैं जल रहा हूँ, सुदर्शन पण्डित! मुझे बचाओ। इस आग से मेरा उद्धार करो।'

पण्डित सुदर्शन ने राय जानकीदास के कन्धे पर हाथ रखा, आप शान्त रहें। ईश भजन करें। इस माया से पल्ला छुड़ा लें, बस!

उन्नीस

राय जानकीदास का वह रूप अनैतिक तो था ही, अस्वाभाविक भी था। किन्तु पण्डित सुदर्शन ने जिस प्रकार उन्हें क्षमा दान दिया, वह भी दर्शनीय था। घटना बीत गयी। भुला दी गई। परन्तु अपने पीछे वह जिस प्रकार की दुर्गन्ध छोड़ गयी, उससे सुदर्शनजी को अतिशय आत्म-पीड़ा मिली। पण्डित सुदर्शन के मन में यह बात स्थिर बन कर रह गयी कि यह जगत पैसे का है। पैसे का महत्व है। इस धरती का इन्सान देवता नहीं बन सकता। पैसा एक दानवी शक्ति है, तो वह मानव में सदाशयता की भावना नहीं भर सकेगी। उनका मत था कि जब तक कोई अन्य व्यवस्था न हो, तब तक अर्थ-तन्त्र की यही प्रणाली रहेगी। मानो वह मनुष्य के सिद्धान्त और आदर्श को एक चुनौती थी, इस प्रणाली से पण्डितजी इसलिये भी परेशान थे कि उन्होंने नगर में आकर अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये कई लड़के देखे, परन्तु उन सभी के अभिभावक आर्थिक दासता का शिकार थे। वह उसका अस्तित्व मानते थे। पण्डितजी की पुत्री के सम्बन्ध स्वीकार करने से पहिले, वे यह समझ लेना अधिक पसन्द करते कि दहेज में क्या मिलेगा······ इतने प्रसिद्ध पिता की पुत्री से उनके पुत्र का विवाह हो, तो उन्हें दान-रूप में क्या प्राप्त हो जायेगा···और पण्डित सुदर्शन लोगों की इस परम्परा को देखकर खीज उठे थे। उन दिनों वह इसी समस्या को अधिक महत्व देने लगे थे।

उन्हीं दिनों की बात है कि पण्डित सुदर्शन जिस मकान में रहते

थे, उसके समीप ही, कुछ ऐसे मकान बने थे कि जो धनिक अथवा मध्यमवर्गीय लोगों के नहीं थे। उन मकानों में जुलाहे, धोबी और अन्य निम्न वर्ग के कुटुम्ब निवास करते थे। वे कुछ कच्चे मकान थे और कुछ झोंपड़ियों के रूप में फूँस के बने थे। किन्तु वह जमीन राय जानकीदास की थी। उनकी देर से इच्छा थी कि वहाँ एक बड़ी इमारत बनायी जाय। जिसका कई हजार रुपया प्रति मास किराया आ सकेगा। फलस्वरूप, उसी समय, देर से बना विचार बाहर आया और कार्य रूप में परिणत करने का निश्चय कर लिया गया। बसे हुए परिवारों को नोटिस दिये गये और जमींन खाली करने को कहा गया।

किन्तु वह इन्सान कहाँ जाये? वह अपने खेमे उखाड़ कर किस धरती के छोर पर जाकर बसे? अतएव, वह निरूपाय था, असमर्थ था। फलस्वरूप, राय जानकीदास ने उन परिवारों पर मुकद्दमा कर दिया। उन परिवारों को उठाने का सरकारी आदेश भी प्राप्त कर लिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उस समुदाय में बेचैनी फैली, रोष उठा और राय जानकीदास को खुले रूप में जल्लाद और हृदयहीन कहा जाने लगा।

आश्चर्य कि उस अवसर पर पण्डित सुदर्शन ने एक शब्द भी अपने मुँह से नहीं निकाला। मानो मौन रहकर उन्होंने उस धरती के मालिक की नीति का समर्थन किया। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि लोग सामूहिक रूप से पण्डितजी के उस परिवर्तित रूप को देख चकित भी हुए और सन्देहशील। लोग खुले रूप से कहने लगे बूढ़ा पैसे का दास बन गया है। कुछ का यह भी मत बना कि बूढ़े की लड़की ने सेठ के लड़के पर जादू किया है, तो उसी का समर्थन बाप भी करता है।

पण्डित सुदर्शन के कानों में भी ये बातें आई कदाचित् कुछ उन्हें जानबूझ कर सुनायी गयीं। फलस्वरूप, पण्डितजी उन दिनों अतिशय गम्भीर बने हुए थे। कमला से भी वह अधिक नहीं बोलते थे। समाज में भी वह कम-से-कम व्यक्तियों से मिलना पसन्द करते थे। मानो

सुदर्शन न अपनी ही दृष्टि में भ्रष्ट हुए, अपितु सार्वजनिक रूप से भी वह अपने को दोषी मानने लगे थे। लेकिन उस दिन जब पण्डित सुदर्शन नगर के किरायेदार-संघ की एक सभा में बोलने को खड़े हुए, तो मानो जनता का विरोध जहरीले धुएँ के समान बाहर फूट आया। वह एक से अनेकों मस्तिष्कों में भर गया। फलस्वरूप, इन्सान क्रोध और प्रति-शोध की भावना से भर उठा। क्योंकि उसका विश्वास छला गया था। पण्डित सुदर्शन ने जिस भावना और त्याग का पाठ जनता को दिया, मानो वह झूठा था, निर्बल था। समाज ने देखा कि यह जिस धनिक वर्ग का विरोध करते, तो उसी के सम्पर्क में रहकर वह जीवन बिताते थे। बात आदर्श और सिद्धान्त की करते, परन्तु व्यवहार में काले और घिनौने थे। लोगों को भरोसा था कि इस बूढ़े पण्डित के पास पैसा है। इसकी लड़की ने राय जानकीदास के पुत्र को अपने वश में किया है··· प्रेम के नाम पर उसे मूर्ख बनाया है···

फलस्वरूप, उस सभा में जब पण्डित सुदर्शन बोलने को खड़े हुए, तो एक ओर से शोर उठा, हम इस बूढ़े की बात नहीं सुनेंगे। यह पैसे वालों का दलाल है···उस राय जानकीदास का पिट्ठू···

लेकिन जब पण्डितजी के प्रति विरोध उठा, शंका व्यक्त की गयी, तो सभा के अध्यक्ष ने चाहा कि लोग शान्त रहें, पण्डितजी का भाषण सुनें। किन्तु जब विरोध उठा, वाणी के द्वारा लोगों ने रोष व्यक्त किया, तो वह जहरीला धुआँ सभी ओर फैल गया। पण्डितजी बोले नहीं, मंच से उतर गये। चल दिये। जिसका परिणाम हुआ कि सभा हो—हल्ले में भंग हो गयी। लेकिन जब पण्डितजी चले, तो लोगों की भीड़ भी चली। किसी ने उन पर कीचड़ फेंकी, किसी ने कंकड़-पत्थर। पण्डितजी गिर गये। वह उठ नहीं पाये, उत्पाती कुछ और न कर दें, इसलिये जो सुदर्शनजी के हितेच्छु थे, वे आगे बढ़े। लेकिन तब तक तो उत्पात करने वाले पण्डितजी को कुचलते हुए भाग खड़े हुए। उस क्षत अवस्था में ही वह घर पहुँचाये गये। जो लोग पण्डितजी को उठा

कर ले गये, उन्हीं में से एक ने कमला को सुनाकर कहा—'लोग पागल हो गये···आदमी से भेड़िया बन गये। हम लोग आगे न बढ़ते, तो लोग···

एकाएक चीखकर कमला ने कहा—'लोग इन्हें मार देते, यही न! जाकर कह दो उनसे, वह अब भी मार सकते हैं।'

एक व्यक्ति बोला—'बहिनजी, आप शान्त रहें। पण्डितजी को आराम करने दें।'

लेकिन लोगों के जाते ही, कमला ने देखा कि उसके पिता की आँखें बन्द हैं और उन बन्द पलकों के नीचे से रिस-रिस कर कुछ आ रहा है···पानी···आँसू···

देखते ही, कमला ने कहा—'पिताजी—'

पण्डितजी, ने अपने बन्द पलक ऊपर उठा दिये। वे आँसू बाहर निकल आये। मुँह पर प्रवाहित हो गये।

कमला ने कहा—'आप रोते हैं, पिताजी! आखिर क्यों! किसलिये! जानते तो हैं कि जनता मूर्ख है! वस्तुस्थिति से दूर रहती है!'

पण्डितजी ने पीड़ित बनकर कहा—'नहीं, बेटी! जनता मूर्ख नहीं, उन्होंने आँसू पोंछ लिये और कहा—'जनता के लोगों ने अपना क्रोध प्रदर्शित करके बता दिया कि मैं गलत दिशा में जा रहा हूँ।'

इतना सुनकर कमला ने एकाएक अपना मत व्यक्त नहीं किया। परन्तु इतना उसने अवश्य अनुभव किया कि पिता के मन में पीड़ा है। जनता ने जो कुछ किया, वह अमानवीय है। दुःसह है। उसी समय मकान के बाहर मोटर आकर रुकी और उससे उतर कर यदुनाथ अन्दर प्रविष्ट हुआ। आते ही उससे कहा—'पण्डितजी, यह बताइये, यह किस-किस व्यक्ति का काम था।'

पण्डितजी ने कहा—'मैं उन्हें नहीं जानता।'

यदुनाथ बोला—'उनके नाम पुलिस को प्राप्त हों, तो वे लोग सजा पा सकते हैं।'

पण्डितजी ने कहा—'कानून और पुलिस का शासन लोगों के मन पर आतंक बैठा सकता है, मन परिवर्तित नहीं कर सकता। मेरे मन का दम्भ आज खण्डित हुआ। जनता ने मुझे सबक दिया। मैं जनता जनार्दन की सेवा करने का ढोल पीटता रहा, परन्तु मैंने किया क्या···हाँ···।'

यदुनाथ बोला—'पण्डितजी, आप खिन्न हैं। यह स्वाभाविक है। परन्तु आपने जिस प्रकार निस्पृह बनकर समाज की सेवा की, उसका सभी को पता है। सभी वर्ग सराहना करते हैं। कल मैं कलक्टर से मिला, तो वे भी आपकी प्रशंसा करते थे। किन्तु आज जो कुछ आपके साथ घटित हुआ, उसे सुनकर पिताजी भी अतिशय दुःखी हुए। उन्हें आज ज्वर है, आ नहीं सके। उन्होंने मेरे द्वारा आपके पास यह सन्देश भेजा है कि जिन किरायेदारों को जमीन से उठाना था, वह विचार स्थगित कर दिया गया। निश्चय ही पिताजी का यह आपकी प्रेरणा पर हुआ।'

पण्डितजी ने साँस भरी और कहा—'सेठ जी को मेरा धन्यवाद देना।'

यदुनाथ खड़ा होकर बोला—'मैं फिर आऊँगा।' वह चल दिया।

किन्तु कहावत है कि विपत्ति आती है, तो अकेली नहीं आती, वह अपने साथ कुछ और भी लाती है। यद्यपि राय जानकीदास ने अपने किरायेदारों को आत्मदान दे दिया, परन्तु उनके सिर पर तो विपत्ति मँडरा रही थी, वह कहीं-न-कहीं चोट करना चाहती थी। अतएव अगले दिन जब पण्डित सुदर्शन अपने मन में यह निश्चय कर चुके कि वह अब नगर में नहीं रहेंगे, जल्दी ही गाँव लौट जायेंगे, तो जिस बस्ती में फूँस के झोंपड़े पड़े थे, वहाँ एकाएक आग लग गई। दिन का समय था। आदमी मजदूरी पर गये थे। झोंपड़ियों में औरतें और बच्चे थे। तेज हवा चल रही थी। किसी एक झोंपड़ी में आग लगी, तो बढ़ती गयी। सभी ओर फैल गयी। संयोग से कमला उस समय घर पर थी। पंडित जी कहीं गये थे, रजनीश स्कूल में। जब अपने मकान के समीप आग

फैली, तो कमला घर में नहीं बैठी रही, वह भी उस ओर गयी। चारों ओर हा-हाकार था। चीत्कार उठा था। उसी समय कमला ने देखा कि एक बालक झोंपड़ी में रह गया। उसकी माँ चीख रही थी, मेरा बच्चा! कमला ने देखा कि उस आग में कोई भी जाने की शक्ति नहीं रखता था। किन्तु वह आगे बढ़ी और उस जलती हुई झौंपड़ी में से बालक को ले आने में समर्थ हो गयी। किन्तु उसका वह प्रयत्न सराहनीय तो था ही, दुस्साहसी भी था। क्योंकि यदि वह एक पल भी वहाँ और रुक जाती, तो उसका बच निकलना असम्भव था। दर्शक कमला के उस साहस को देख अचम्भित रह गये। जैसे शरमा गये। किन्तु बालक को बचा कर बाहर आते ही कमला खड़ी नहीं हो सकी। उसका शरीर कई स्थानों से जल गया था। आँखों पर आग की लपटों ने प्रहार किया था। इसलिए कमला तुरन्त ही अस्पताल पहुँचाई गई, आग बुझ गई। कई सौ झोंपड़ियाँ राख का ढेर बन गयीं। लोग निराश्रित कंगाल हो गये। उसी अवसर पर पण्डित सुदर्शन भी वहाँ पहुँच गये। देखते ही, लोगों ने उन्हें घेर लिया और कहा—'आप अस्पताल जाइये पण्डित जी! आपकी पुत्री ने एक बालक को बचाया। बड़ा साहस प्रदर्शित किया।

किन्तु पण्डित जी ने यह बात उस स्थल से दूर रहकर भी सुन ली थी। यह बात बिजली के समान नगर भर में फैल गयी थी। उस समय तो पण्डित सुदर्शन के मन में यह बात थी कि इन बच्चों, स्त्रियों और बच्चों का क्या होगा···इनकी सुरक्षा का प्रबन्ध···

अतएव, उन्होंने कहा—'ये बच्चे और स्त्रियाँ भी मेरी कमला हैं। ये भी अनाथ बन चुके हैं। इस शीतकाल में ये आसमान के नीचे···

सहस्रों व्यक्तियों का समुदाय वहाँ एकत्र था। उसी के समक्ष स्त्रियों और बच्चों का हा-हाकार उठा था। उसी समय यदुनाथ वहाँ आया। उसने भी देखा कि वे निराश्रित बने लोग अपने जले हुए झोंपड़ों को इस प्रकार देख रहे थे कि जैसे उनकी चिता से आग के शोले उठ रहे थे और वे चट-चट चटख रहे थे।

परन्तु लोग चकित थे कि पण्डित सुदर्शन ने पुत्री के पास जाने की बात भूल कर उन निराश्रित वर्ग लोगों को समझाना आरम्भ किया, उस समय उनके चेहरे पर उदासी नहीं थी, गर्व था। उन्होंने लोगों को सुनाया, मेरी पुत्री ने पुरुषार्थ का प्रदर्शन किया, यह सुनकर मुझे सुख मिला। पुत्री ने पिता के विचारों का प्रतिनिधित्व किया। उस स्थान से कुछ दूरी पर ही ऊँचे-ऊँचे महल खड़े थे। मानो वे गर्बित और सुरक्षित थे। किन्तु जिनके झोंपड़े, जले, वे बालक, स्त्री और पुरुष जैसे जीवन की भरी दोपहरी में लुट चुके थे। इसलिए वे बुद्धि शून्य थे। विपत्ति के गर्व में समा गये थे।

जब पण्डित जी उस स्थान से यदुनाथ के साथ अस्पताल की ओर चले, तो वे गम्भीर थे, मौन बने थे। उनके मन में केवल एक बात थी कि जाने विपति को क्या स्वीकार है। उन्होंने एक दिन पूर्व ही कमला से कहा था कि राय जानकीदास का पुत्र भी साँप का बच्चा है। मैं नगर छोड़ दूँगा और पिता की उस भावना को जैसे बरबस ही पिता की बात को स्वीकार कर लिया था।

अस्पताल में पहुँच कर देखा कि कमला की आँखों पर डाक्टर ने पट्टी बाँधी थीं। शरीर के अन्य भागों पर भी जलने के निशान थे। पण्डितजी धीर और गम्भीर थे। उसी समय डाक्टर ने पास आकर कहा—'चिन्ता की बात नहीं। आँखों पर मामूली लपटें आई हैं।'

किन्तु पण्डित सुदर्शन ने कमला से कहा—'बेटी, मुझे प्रसन्नता है कि तुमने बच्चे की रक्षा की। तुम्हें यही करना था।'

कमला ने कहा—'पिताजी, मैं दो-चार दिन में घर आ जाऊँगी। आप गाँव चलने की बात कहते थे न, तो अब कुछ देर न लगेगी।'

पण्डितजी ने आतुर बनकर कहा—'हाँ, बेटी! अभी गाँव नहीं जायेंगे। अब मेरे सिर पर नया काम आ गया। जिनका सामान जला है, झोंपड़े जले हैं, तो उनके लिये भी···ये यदुबाबू भी तुम्हें देखने आये हैं।'

कमला ने कहा—'धन्यवाद !'—वह बोली—'रजनीश स्कूल से आता होगा।'

यदुनाथ ने कहा—'रजनीश को मैं ले जाऊँगा। वहाँ रहेगा।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'अच्छा बेटी, मैं जाऊँगा।'

कमला ने कहा—'हाँ, पिताजी ! निर्धन लोग निराश्रित बन गये !'

पण्डितजी बोले—'नियति ने उन पर गहरी चोट मारी है; वे तड़प उठे हैं। इस जाड़े में वे सड़क के किनारे पड़े हैं। वे भूखे हैं, नंगे हैं, गृह हीन हैं।'

यदुनाथ बोला—'चिन्ता न कीजिये, उनका प्रबन्ध होगा।'

पण्डितजी लौट चले। वह यदुनाथ के साथ फिर अपने मकान पर आ गये। यदुनाथ अपने साथ रजनीश को ले गया। घर जाते ही उसने पिता से कहा—'उन निराश्रितों के लिये हमें कुछ करना चाहिये।

पिता ने बात सुनी, तो चकित बनकर पुत्र की ओर देखा। उन्होंने कहा—'यह एक व्यक्ति का काम नहीं, पूरे समाज का है। यह सरकार का काम है !' वह बोले—'और पण्डित सुदर्शन कहाँ है ? यह उनका पुत्र···?'

यदुनाथ बोला—'यह रजनीश यहाँ रहेगा !' उसने कहा—'जिनके घर जले हैं, उन्हें भी कुछ देना पड़ेगा !'

राय जानकीदास ने इतनी बात सुनी, तो तड़प कर कहा—पण्डितजी ने कहा होगा।' वह बोले—'पण्डितजी समझते हैं कि इस घर में धन का अम्बार लगा है। यह कोई नहीं जानता कि हम इज्जत ढक कर चल रहे हैं। व्यापार में निरन्तर घाटा हो रहा है। बैंक का रुपया चढ़ रहा है।'

उसी समय पत्नी ने ताना दिया—'पण्डितजी की आँखें तो आसमान में उठी हैं।'

राय जानकीदास बोले—'वह कोरे ब्राह्मण हैं। दुनियादारी से भी दूर रहते हैं।'

यदुनाथ ने कहा—'कुछ तो देना पड़ेगा।'

राय जानकीदास ने कहा—'सोचा जायेगा।' वह बोले—'और यही क्या अच्छा है कि किसी के लड़के को यहाँ ले आना। हमारे उन से सम्बन्ध क्या है!'

यदुनाथ इतना सुनकर जैसे सन्न रह गया। एकाएक बोल नहीं सका।

किन्तु माँ ने सहारा दिया—'चलो, बहन अस्पताल में है, तो भाई यहाँ रह जायगा।' उसने यदुनाथ को लक्ष्य किया—'पर बेटा, ऐसे लोगों से मिलकर बैठने में भी टोटा है।'

तुरंत ही राय जानकीदास ने कहा—'पण्डित सुदर्शन जिस डाल पर बैठता है, उसी को काटता है। उसकी आँख में सुअर का बाल है।'

एकाएक यदुनाथ लाल पड़ गया—'पिताजी, आपने उन्हें समझा नहीं।'

पिता ने कहा—'मैं बूढ़ा उसे नहीं समझा, तो तुमसे भी नहीं समझा जायगा। सुदर्शन पण्डित मेरे टुकड़ों पर पला है। फिर भी वह गुर्राता है। समाज में बुराई करता है। इस आदमी ने मुझे लाखों रुपये का नुकसान पहुँचाया है।'

उस समय रजनीश उस कमरे से बाहर था। वह दरबान के साथ लॉन में चला गया था। किंतु कमरे में जब यदुनाथ ने पिता की बात सुनी, तो वह खड़ा हो गया और बोला—'आपने यही कहना सीखा है। जाने किस नपैने से आपने पण्डित को नापा है।'

पत्नी ने देखा कि यदुनाथ गुस्सा नहीं करता, परंतु उस समय उस का मुँह लाल था। उसी अवस्था में वह बाहर चला।

तभी राय जानकीदास ने पत्नी को लक्ष्य करके कहा—'देखा तुमने! यह लड़का अस्पताल भी गया है। मेरी बात झूठी नहीं उस ब्राह्मण

की छोकरी ने अपना कौशल दिखाया है। यह यदुनाथ तभी विवाह से खिंचता है।'

पत्नी ने साँस भरी और कहा—'सूझ नहीं पड़ता, भगवान क्या सोचता है!'

राय जानकीदास ने खड़े होकर कहा—'कहे देता हूँ, यह साहब-जादे ऐसे रहे, तो मेरा किया-धरा सब चौपट हो जायेगा···यह घर कूड़ी का ढेर···' और तभी उन्होंने वह कमरा छोड़ दिया।

बीस

उन दिनों पण्डित सुदर्शन के घर पर शंकर मिश्र टिका था । वह स्वस्थ होकर गाँव गया और फिर लौट आया । जिस दिन पण्डितजी के पड़ौस में आग लगी, तो उन निराश्रितों के लिये भोजन और जाड़े की रात में सिर छुपाने का प्रबन्ध करने में सुदर्शनजी को अधिक रात बीत गयी । वे घर लौटे, तो देखा कि शंकर मिश्र जाग रहा था । जब पण्डित जी अपने बिस्तर पर पड़े, तो तभी मिश्र ने कहा—'दादा, आज कमला ने जिस पौरुष का परिचय दिया, वह अपूर्व था । सैकड़ों आदमियों के मुँह पर उसने तमाचा मारा था । सभी को अपने प्राणों का मोह बना था ।'

पण्डितजी ने पूछा—'अब तुम्हारी तबीयत तो ठीक है रे, मिश्र !'

शंकर मिश्र ने कहा—'गाँव गया, तो फिर बुखार आने लगा । मैं शरीर से पुष्ट होता, तो क्या कमला को आग में कूदने देता ! मैंने शहरी समाज की निर्लज्जता और कायरता को आज देख लिया ।'

पण्डितजी ने कहा—'कमला ने जो कुछ किया, ठीक किया । यह उसका भी काम था । उसे विपत्ति का सामना करना था ।'

शंकर मिश्र बोला—'बाबू यदुनाथ आये थे । देर तक आपकी प्रतीक्षा करते रहे । कहते थे, रजनीश उन्हीं के घर सो गया ।'

पण्डित जी ने बात सुन ली तो अपना मत नहीं दिया । वह कमरे की जलती हुई बत्ती की ओर देखने लगे । उनके मन में उस समय शाँति नहीं थी, बेचैनी थी । यह तो उनके लिये सन्तोष की बात थी

कि मजदूरों के झोंपड़े जले, उन्हें सरकार से, जनता से तुरन्त सहायता मिल गयी। किन्तु इसके लिये उन्हें दिन भर जिस प्रकार की भाग-दौड़ करनी पड़ी, वह सचमुच ही, उनके लिये शक्ति से बाहर की बात थी। परन्तु इससे तो शरीर थकता था, मन नहीं। लेकिन पण्डित सुदर्शनजी का उस दिन शरीर भी थका था और मन भी। मन में इस बात की अकुलाहट थी कि वे समाज की दृष्टि में गिरे हैं। राय जानकीदास और उनका वर्ग उन्हें अच्छा व्यक्ति नहीं मानता। विरोधी समझता है। अपने रास्ते का पत्थर···काँटा! और पण्डित सुदर्शन के मन में इस बात की पीड़ा थी। उन्होंने जब किसी का अहित किया, तो फिर ऐसा क्यों! वह धनिक-वर्ग की दृष्टि से गिरे हैं, मजदूर और निम्न वर्ग के लिये भी उपेक्षा का पात्र बने हैं। तो फिर इतना झंझट क्यों···यह सिर-दर्द क्यों! उनके मनः प्रदेश में बार-बार विषैला धुआँ उठ रहा था, वह उन्हें परेशान कर रहा था कि वह ऐसे निन्दक बनकर भी, स्थिर क्यों···समाज में जीवित क्यों!

परन्तु मानो पण्डित सुदर्शन असमर्थ थे। कायर बन चुके थे। वे जैसे सब ओर से छूटकर अपनी पुत्री की इच्छा पर टिके थे। उसका सुख और दुःख ही सर्वोपरि मानने लगे थे। क्योंकि वह देखते कि उनकी पुत्री मातृहीना है। सन्तान के प्रति जो प्यार एक पिता अर्पित कर सकता है, वही पण्डितजी ने सर्वप्रथम कमला को दिया। परन्तु आज उसी कमला के लिये पण्डितजी चिन्तित थे।

उसी समय देखा कि शंकर मिश्र सो गया। रात आधी से अधिक बीत गयी थी। पण्डितजी की आँखों में नींद नहीं थी। उनके मकान के सामने ही देवालय था। कमला ने कई बार उनसे कहा था कि मन्दिर के देवता की प्रतिमा बड़ी सुन्दर है। किन्तु पण्डितजी कभी भी उसे देखने नहीं गये। क्योंकि उन्हें किसी मन्दिर में जाने की इच्छा नहीं होती थी। यद्यपि पण्डित सुदर्शन ईश्वर भक्त थे, भगवान के पुजारी थे, परन्तु मन्दिर में जाकर देवता की पूजा करना वह जैसे दिखाना

मानते। किन्तु उस रात के समय, जब कि उनका मन अतिशय आकुल और व्यथित बना था, वह जाने किस प्रेरणा पर चारपाई से उठे और धीरे से कमरे के किवाड़ खोल उस शीत भरी रात में मन्दिर के द्वार पर पहुँच गये। लोह के सींकचों के अन्दर देवता की प्रतिमा मुसकरा रही थी। उस पर दीपक की हल्की रोशनी पड़ रही थी। पण्डितजी एक टक इधर ही देखते रहे। उनके मन में हिलोर उठ रही थी और वे एकाएक इतने अधीर बने कि आँखों से रोते हुए, बोले, 'मेरे देवता, मेरे जीवन का जो पुण्य हो, यह पुत्री को दे! उसे जीवन दे! भगवान मेरी कमला को बुद्धि और शक्ति प्रदान कर दे!

उस अवस्था में ही, पण्डितजी मंदिर की सीढ़ियों पर बैठ गये और बोले—'मैं कमला की इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकता···इन दुर्बल हाथों से उसका अन्त भी नहीं कर सकता···'

सुदर्शनजी की जेब में वह कागज का टुकड़ा पड़ा था कि जो उस दिन ही उन्हें अपनी मेज पर मिला था। जब वह अस्पताल से लौट कर घर आये, कागज के उस टुकड़े को देख पाया था। वह कमला का लिखा था। जिसका अर्थ था कि वह यदुनाथ के साथ विवाह करना चाहती है। दोनों की यही इच्छा है।

जेब में पड़े उस कागज को पण्डित सुदर्शन ने फिर बाहर निकाल लिया। उसे मुट्ठी में भींच लिया। उनकी आँखें भरी थीं। मुँह पर आ गयी थीं। जैसे वह कागज का टुकड़ा काल-कूट के समान उनकी ओर निहार रहा था। उस अवस्था में ही पण्डित सुदर्शन काँप रहे थे। जैसे उनके प्राण सुन्न पड़ते जा रहे थे।

उसी समय चौकीदार आया और मन्दिर की सीढ़ियों पर आदमी को बैठा देख, उसने ऊँचे स्वर में कहा—'कौन ?'

सीधे-स्वभाव पण्डितजी ने खड़े होकर कहा—'मैं सुदर्शन ?'

'कौन सुदर्शन! यहाँ कैसे! इस रात में मन्दिर पर!' चौकीदार पास आ गया। पहचानते ही, वह तुरन्त बोला—'अरे, पण्डितजी तुम!

पालागन, महाराज !'

पण्डितजी ने कहा—'खुश रहो !'

चौकीदार बोला—'पण्डितजी, आज तो ठण्डहै ! आज सर्दी अधिक है। कहीं ओले पड़े हैं ?'

पण्डितजी ने कहा—'हाँ, भाई !' वह चल दिये। फिर अपने घर में पहुँच गये। रजाई ओढ़ ली और वह गठिया की तरह पड़ रहे। किन्तु उनकी आत्मा में तो अशाँति थी। रोदन था। चीत्कार भरा था। जब वह ठण्ड की बात सामने आई, तो वह अनायास ही, उन लोगों की अवस्था पर टिक गये कि जिनके दिन में मकान जले थे। जिनके बच्चे नंगे थे। भूखे थे।

उसी समय शंकर मिश्र की आँख खुलीं और बोल पड़ा—'नींद नहीं आई, दादा !

दादा ने कहा—'नहीं !'

शंकर मिश्र ने कहा—'आपके मन में भी जाने क्या डोलता है और मैंने दादा तुम्हें यह तो बताया नहीं कि बाबू यदुनाथ की कृपा से मैं पुलिस की निगाह से उतर गया। उसने मुझे मुक्त कर दिया।'

पण्डित सुदर्शन ने जैसे अनजाने कह दिया—'अच्छा तो है, अब भले आदमी बनना।'

आतुर बनकर शंकर मिश्र बोला—'हाँ, दादा ! तुम्हारे चरणों की सौगन्ध, अब मैं बुरे लोगों से दूर रहूँगा।'

उस समय पण्डित सुदर्शन ने कहा—'मैं कल इस मकान को छोड़ दूँगा। दूसरा देख लिया है, वहाँ चला जाऊँगा।'

चकित बनकर, शंकर मिश्र ने कहा—'क्यों दादा, यह मकान तो अच्छा है। हवादार है। नया बना है।'

जैसे चिढ़कर पण्डित सुदर्शन ने कहा—'नहीं, नहीं, यह मकान मेरे लिये अशुभ है। यह मगरूर आदमी का है।'

'यह किसका है ?'

'राय जानकीदास का !'

आश्चर्य से शंकर मिश्र ने कहा—'बाबू यदुनाथ का ?'

'हाँ, रे !' पण्डित सुदर्शन ने कहा—'बेटा उदार है, बाप कसाई है। कौड़ी-कौड़ी पर मरता है।'

सुनकर, शंकर मिश्र चुप रह गया। वह उस पहेली को समझ नहीं सका। उसी में खो गया। तदुपरान्त वह फिर खो गया। किन्तु अजीब परेशानी थी कि पण्डितजी को न नींद आती थी, न चैन मिलता था। उसी समय आसमान में चाँद निकल आया। चारों ओर चाँदनी फैल गयी। पण्डितजी को कमरे में गरमी भी अनुभव हुई। उन्होंने गरम चादर ओढ़ लिया और मकान की छत पर चले गये। वहीं से उन्होंने उस ओर देखा कि जहाँ झोंपड़ियाँ जली पड़ी थीं। कितने परिवारों का परिश्रम और आशाएँ उस जगह जल कर राख का ढेर बन चुकी थीं। जैसे उन झोंपड़ियों के अंग-अंग से पीड़ा फूट रही थी। मानो उनके शरीर पर जो छाले पड़े थे, वे भी फूट चुके थे। वे रिस रहे थे। कराह उठे थे।

उस ओर देखते ही पण्डितजी अतिशय कातर और उद्विग्न बन गये, उस अवस्था में ही उन्होंने आसमान के जग-मगाते हुए चाँद की ओर देखा। वह जैसे हँस रहा। मुसकरा रहा था। मानो उस चाँद का अन्तर्मन हर्ष से भरा था। जब पण्डितजी उस चाँद से अपनी तुलना नहीं कर सके, तो उन्होंने फिर झटके के साथ अपना सिर झुका लिया मुँह को घोंटे पर रखते ही, एकाएक कहा—'मेरे प्रभो ! तुम क्यों इस सृष्टि का निर्माण करते हो ! तुम क्यों ये सुन्दर मूर्तियाँ बनाते हो। फिर उन्हें तोड़ते हो। उनका संहार करते हो !

परन्तु इतना कहकर तो पण्डित सुदर्शन के मन का सन्ताप हल्का नहीं पड़ा। वह और अधिक बढ़ गया। अंतर का उद्वेग अन्दर ही घुमड़ता रहा। उस स्थिति में उन्होंने जैसे नितान्त कठोर और क्षुण्ण बने हुए स्वर में फिर कहा—और इन्सान की आत्मा में पीड़ा है।

कड़वाहट भरी है। इन्सान ने ही इंसान के लिये मौत निर्मित की है। इन्सान की यातना पुकार रही है। चीख रही है। यह इन्सान को झकझोर रही है···और मेरी कमला, मेरे जीवन के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र को प्यार करने लगी है। वह भी मेरा उपहास करती है। विपत्ति जैसे ठहाका मारकर मुझ पर खिलखिलाती हँसती दिखाई देती है······"

यह कहते ही पण्डित सुदर्शन ने अपने हाथों की मुट्ठियाँ भींच लीं। वे मुट्ठियाँ अज्ञात अवस्था में ही अपने घोंटों पर मारीं। तभी फिर मन में आई बात कही—और पुत्री जो अशुभ बात सोचती है, तो उसमें आश्चर्य क्या है! मैंने भी यही किया है। यदुनाथ की दया और सदाशयता पर मुझे बहुत कुछ मिला है। ठगा गया है। पत्थर के बदले हीरा देने को विवश हो गया है, तू!

उसी समय शंकर मिश्र वहाँ आ गया। वह पास आते ही बोला, "दादा, आज क्या तुम्हारे मन में है। बहुत बेचैनी है! इस ठण्ड में, इस अरी रात में इस खुली छत पर! राम-राम! शाम को जब मैं अस्पताल गया, तो कमला ने बस एक ही बात कही कि पिता जी का ध्यान रखना। पर मैं तो देखता हूँ कि तुम······

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'रे, शंकर, तू आराम कर! मुझे आज चैन नहीं। आत्मा में टीस उठी है। मेरी जिन्दगी लुटी जा रही है।'

शंकर फिर बोला—'और दादा, कमला ने कहा था कि मेज पर कोई लिखा परचा मिलेगा। तो उसे आप सत्य न समझें। झूठ समझें।'

एकाएक सुदर्शन जी ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'क्या मतलब।'

शंकर मिश्र बोला—'यह तो कमला बहिन जाने। उसने कहा था कि जो कुछ लिखा, गलत लिखा।'

'अरे, शंकर!' पण्डित सुदर्शन ने अपने स्वर पर झटका-सा खाया और कहा—'जैसी माँ वैसी बेटी! बाप को नाराज नहीं करना चाहती, अपने मन को मारना चाहती है।' उन्होंने उत्साह के भाव में शंकर मिश्र

ने दोनों कन्धे पकड़ लिए और कहा—'कमला को यही कहना था। यही शोभता था। मैं अपनी बिटिया को जानता हूँ न! उसकी माँ भी यही करती थी।

शंकर मिश्र ने कहा—'कमला बहिन को देखने इस मोहल्ले के सभी आदमी गए। स्त्रियाँ भी गयीं।'

पण्डित जी ने बात सुनी, तो हलके भाव से मुसकरा दिया।

शंकर मिश्र ने सिर के ऊपर खड़े चाँद की ओर मुँह उठाकर कहा, बाबू यदुनाथ अस्पताल में कई बार गए। उन्हीं का नौकर दूध दे गया। फलों का रस देकर आया।'

पण्डितजी ने बात सुन ली, तो अपना मत नहीं दिया। उसने अपनी बात लेकर कहा—'दादा, आज कहता हूँ, मेरी बीमारी में कमला बहिन ने जो मेरी सेवा की, वैसी मेरी माँ भी नहीं कर सकती थी। कमला बहिन ने मेरे पेशाब और पाखाने तक उठाये।'

पण्डित जी ने हर्ष से भर कर कहा—'अरे पगले, मेरी बेटी को कोई गैर नहीं लगता। पराया नहीं दिखाई पड़ता।'

किन्तु शंकर मिश्र आकुल बना था। उसने बलात् अपने मुँह में आई बात को उगल दिया—'दादा, मैं इस योग्य नहीं था। मैं तो बहिन कमला को केवल औरत समझता था—आदमी का टुकड़ा!' यह कहते हुए शंकर मिश्र ने पण्डित जी के पैर पकड़ लिए। उसने तभी अतिशय विनीत बनकर कहा—'दादा, मैं नराधम हूँ। चाहो तो मुझे मार दो। मेरा अन्त कर दो। मैं समाज का गुण्डा हूँ न,—बदमाश; एक दिन मैं भी बहिन कमला को ठगना चाहता था। वह मेरी इच्छा स्वीकार न करती, तो मैं उसे मार भी देना चाहता था। इस शहर में आने का मेरा एक यह भी उद्देश्य था। यह चोर भी मेरे मन में बैठा था।' यह कहते हुए शंकर मिश्र ने अपनी वे आँखें चाँद की ओर उठा दीं और बोला—'दादा, तुम्हारी कमला ने एक दिन मेरे गाल पर तमाचा मारा था। बात गाँव की थी, नदी किनारे की। उस तमाचे की पीड़ा

मेरे दिल में भरी थी। तभी से मैं प्रतिशोध की आग में जल रहा था। बदला लेना ही मेरा उद्देश्य रह गया था किन्तु मैं तो प्रतिकार की बात सोचता ही रहा, अहिन कमला ने मुझे सहज ही इन्सानियत का पाठ दे दिया। दादा, अब मुझे अपने से अलग न करना। मुझे अपनी सेवा करने देना।'

पण्डित सुदर्शन का हाथ अनायास ही शंकर मिश्र के सिर पर पहुँच गया। वह उसके सिर को सहलाते हुए बोले—'आज तेरी आत्मा बोली है। सत्य का बखान कर सका है। तू निर्भय रह।'

शंकर मिश्र ने कहा—'मैं पहले कमला से कह आया हूँ कि अब मैं यहीं रहूँगा। आपकी रोटी बनाऊँगा। सेवा करूँगा।'

सुदर्शना पण्डित उठ चले। वे फिर बिस्तर पर जा बैठे। उनके हाथ-पैर ठण्डे थे। बर्फ के समान थे।

पास जाकर शंकर मिश्र के कहा—'दादा, पैर दबा दूँ।'

चंचल बनकर सुदर्शन जी बोले—'नहीं रे! आराम कर। देख, सुबह मकान बदलना है। सामान बाँधना है।'

शंकर ने कहा—'सब हो जायेगा।' वह बोला—'रजनीश यहाँ नहीं, यह अभाव खटकता है। उसकी शैतानी से घर बोलता है।'

पण्डित जी बोले—'उसे सुबह ले आना। साथ रखना।'

उसी समय शंकर मिश्र ने कमरे का प्रकाश बुझा दिया।

प्रातः आ गया। पण्डित सुदर्शन जी अपने समय पर उठ गए। वह अन्धेरे में ही स्नान करके बाहर चले गए। दिन में सूरज चढ़े जब वह लौटे, तो देखते हैं कि शंकर मिश्र घर का सामान इकट्ठा कर चुका है और फिर खोल रहा है। चीजों को उनकी जगह रख रहा है। यह देख पण्डित जी ने कहा—'अरे, यह क्या!'

शंकर मिश्र बोला—'दादा, बाबू यदुनाथ आये और कह गए कि सामान यहीं रहेगा, कहीं नहीं जायगा। रजनीश भी यहाँ नहीं आयेगा।'

पण्डित जी ने बात सुनी, तो सहज भाव से मुसकरा दिया।

उन्होंने अपना मत नहीं दिया।

शंकर मिश्र ने कहा—'यदु बाबू ने आते ही जब घर की अवस्था देखी, तो चकित हुए। बोले, इस घर में यदि पण्डित जी का आदेश चलता है, तो हमारा भी चल सकता है। यह अधिकार मैंने लिया है।'

पण्डित जी ने हँस कर कहा—'यह तो ठीक है, भैया! यदुनाथ ने अधिकार लिया है।'

शंकर मिश्र बोला—'उन्हें क्रोध भी आया और दुःख भी।'

पण्डित जी ने फिर बेंत उठा ली और कहा—'अच्छा, तुम खाना बनाकर खा लेना। मेरी प्रतीक्षा न करना। मैं अभी अस्पताल गया था। कमला से मिल आया।'

सुदर्शन जी अभी घर से निकलने वाले थे कि तभी मोटर आकर रुकी। राय जानकीदास, उनकी पत्नी उससे उतरे। रजनीश भी आया, सुदर्शन जी को जाने के लिए तैयार देख, राय जानकीदास ने कहा—मैं सामने खड़ा हूँ, आप जा नहीं सकते।'

पण्डित जी हँस दिए—'आप बलवान हैं।'

राय जानकीदास कमरे में बैठ गए और बोले—'मैं देखता हूँ कि आप शरीर से दुर्बल होकर भी आत्मा से बलवान हैं।' हम अभी अस्पताल से लौट रहे हैं। नगर में आम चर्चा है कि आपकी पुत्री ने ऊँचे आदर्श को चरितार्थ किया।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'उसने जो कुछ किया आप लोगों के आशीष से किया।'

रजनीश ने कहा—'पिताजी मैं जीजी के पास गया था। वहाँ अंगूर खाये थे।'

राय जानकीदास ने कहा—'कहिए, जिनके स्थान जले, उनके लिए कितना रुपया एकत्र हुआ?'

पण्डित जी बोले—'रुपया मुझे कौन देगा। पैसा तो पैसे वाले को मिलेगा।'

राय जानकीदास ने कहा—'आप भी इस सिद्धान्त को मानते हैं ॥ कहते हैं।'

अप्रतिभ बन कर पण्डित जी ने कहा—'परम्परा ऐसी है। पैसे वाले निर्धन पर भरोसा नहीं करते। उसे पैसा नहीं देते।'

राय जानकीदास ने कहा—'मैं इसे नहीं मानता। यह बात रात भी मेरे मन में डोलती रही कि सेवा और त्याग सबसे बड़ा आधार है। इस मार्ग में न खटका है, न कांटा है। आपकी पुत्री को कल जितने आदमियों ने सराहा, ऐसा क्या किसी और को प्राप्त हुआ।'

सुदर्शन जी ने बात सुन ली, तो अपना मत नहीं दिया।

उसी समय राय जानकीदास ने फिर कहा—'मैं आपको नहीं जीत पाया।'

चंचल भाव में सुदर्शन जी बोले—'राय साहब, जिन्दगी के जिस खेल में मैं लगा हूँ, उसमें जीत और हार का प्रश्न नहीं उठता। भला आप ऐसा क्यों सोचते हैं। हम दो वर्गों और दो धाराओं में बँटे हैं। परन्तु यह निश्चित है, हमारी जो आकांक्षाएँ हैं, वह आप सरीखे व्यक्तियों पर ही निर्भर करती हैं। क्योंकि आप धनिक हैं।'

राय जानकीदास ने कमरे के फर्श पर हाथ की बेंत बजायी। उन्होंने कहा—'पण्डित जी, पैसा सभी जगह काम नहीं आता। जिन्दगी की पूरी सफलता प्राप्त नहीं करता। मैं तो देखता हूँ कि मैं बाहर ही नहीं हारा, घर में भी हार गया। यदुनाथ आपके ही शिविर में प्रविष्ट हो गया।'

पण्डित जी ने कहा—'यदुबाबू आपके पुत्र सुयोग्य हैं। उदार हैं। वह अपने युग का प्रतिनिधित्व करते हैं।'

राय जानकीदास की पत्नी बोली—'पण्डित जी, यदि वह अपना व्यापार नहीं देखेगा, तो भला इतना बड़ा कारबार कैसे चलेगा।'

पण्डित जी ने कहा—'हाँ, माँ जी! यह तो देखना चाहिए।'

मा जी बोली—'आप यदुनाथ से कहिए। उसे समझाइये। अब हमें उसके विवाह की की चिन्ता है, पण्डित जी!'

पण्डित जी बोले—यह घरू मामला है। आपके अधिकार का है। मै कहूँगा।'

माँ जी बोली—'पण्डित जी, हमारी यही चिन्ता है।'

राय जानकीदास ने कहा—'मेरा लड़का भी आज विद्रोह करता है। देखिए, यह कैसा जमाना है।'

पण्डित जी गम्भीर बने थे। उसी अवस्था में बोले—'राय साहब, इस युग की पुकार है कि सब अपना अधिकार समझे और आपका पुत्र तो जवान है, सम्पन्न है। उस पर केवल आपका ही अधिकार नहीं, समाज का है, देश का है। उसे बाँधिये नहीं, मुक्त कर दीजिए। अन्तत: आप दोनों को एक दिन जुदा होना है।

राय जानकीदास ने बात सुनी और कड़वे घूँट के समान गले के नीचे उतार ली।

इक्कीस

लगभग एक मास बाद जब कमला अस्पताल से घर लौटी, तो उसने देखा कि उसका भाई रजनीश अधिक सैलानी और आवारा बन गया है। पण्डित सुदर्शन के रहन-सहन में भी परिवर्तन आ गया। मानो पण्डित जी ने दुनिया से वैराग्य लेने या निश्चय कर लिया। एक तो पहिले ही उनकी सूरत अच्छी नहीं थी, और जब दाढ़ी बढ़ा ली, तो वह शक्ल अधिक कठोर बन गई। शंकर मिश्र जैसे जीवन भर के लिए उन्हीं के पास बँध गया। बचपन से ही, कमला ने अपने पिता के ऊपरी रूप को नहीं देखा, उसने सदा ही, उस सौन्दर्य को देखने का प्रयत्न किया कि जो उनकी आत्मा में समाविष्ट था। पण्डित जी की उदारता और मेघावी प्रतिभा का प्रभाव किसी और पर पड़ा हो या नहीं, कमला पर अवश्य पड़ा था। उसे अपने पिता पर घमण्ड था।

अस्पताल से लौट कर कमला इस योग्य नहीं थी कि घर के और अपनी पढ़ाई के काम में लगे। अभी वह अशक्त थी। किन्तु इतने बीच में घर की जो अव्यस्था बन गयी, उसे देखकर वह चिन्तित थी। उसे सबसे अधिक क्षोभ रजनीश पर हुआ। वह उसका भाई था। उस घर का दीपक था। पिता की आशाओं का केन्द्रस्थल वही था। अपने भाई को अच्छा देखना कमला का मौलिक अधिकार था। परन्तु उसने देखा कि रजनीश सिनेमा जाने लगा है। चोरी से सिगरेट पीता है। वह मुहल्ले और स्कूल के लड़कों के साथ ताश खेलता है। उन ताशों पर पैसे भी लगाता है। इतना पाकर कमला का माथा ठनक गया। उसने

अनुभव किया कि अब तक उसने जितना परिश्रम किया, वह व्यर्थ गया। ऐसे तो यह रजनीश पिता के नाम पर स्याही फेर देगा। घर का प्रतिनिधित्व न सम्भाल सकेगा।

यदुनाथ इस बीच में कमला के और निकट आ गया। अस्पताल में प्रतिदिन जाता, घण्टे-दो-घण्टे बैठता, यद्यपि कमला ने स्वतः ही अनेक बार कहा कि यह उचित नहीं, आपके अनुरूप नहीं। किन्तु यदुनाथ बात को सुनता और टाल देता। लेकिन एक बार जब संध्या के धुँधले प्रकाश में यदुनाथ अस्पताल में पहुँचा, तो कमला ने अत्यधिक अधीर बन कर कहा, 'यदुबाबू, ऐसे तो मैं जीवित नहीं रहूँगी। मर जाऊँगी! आप मुझे अकेली छोड़ दीजिए, आप अपना विवाह कीजिए। जानते तो हैं कि मैं एक स्वाभिमानी और विचित्र पिता की पुत्री हूँ, अब अधिक मुझे लोक-चर्चा का विषय न बनाइए। आप समझिये कि यह संगति नहीं, हम दोनों के अनुरूप नहीं।'

उस समय जब अस्पताल में यदुनाथ पहुँचा, तो वह प्रसन्न था। किन्तु जब कमला ने अपनी बात कही, तो वह गम्भीर बन गया। उसी अवस्था में उसने कहा—'भरोसा रखो, मैं अब तुमसे कुछ नहीं कहूँगा। विवाह करना मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ है, आवश्यक हुआ तो कर लूँगा।'

कमला ने कहा—'देखिये, मेरे पिता जी आजकल अधिक क्लिष्ट हैं। मैंने एक भूल की, तो निश्चय ही, वह स्वयं उसका प्रायश्चित करते प्रतीत होते हैं। वे अब दुर्बल भी हो गये हैं। अपना मानसिक द्वन्द्व मन में लिए फिरते हैं। और जानते हैं आप, पिता को असन्तुष्ट करके मैं जीवन में सुख नहीं पा सकती। आपकी सद्भावना पाना हमारे लिए श्रेष्ठ है, परन्तु लोक-चर्चा की बात क्या कभी दृष्टि से दूर हो सकती है। आज शंकर मिश्र मुझे बता गया कि पिता जी रातों-रात जागते हैं, पीड़ित बने रहते हैं। कुछ लोगों ने शंकर मिश्र से भी कहा है कि पण्डित जी की लड़की पैसे वाले के लड़के को अपने वश में कर चुकी है···वह जादूगरनी······'

उसी समय एकाएक यदुनाथ बोला—'कमला देवी, विवाह की बात को महत्व मत दो। लोक-चर्चा की ओर भी मत ध्यान दो। ये सभी छोटी-मोटी आँधियाँ हैं, उठती हैं और चली जाती हैं। दो प्राणियों के मिलने की बात भला किसे पसन्द आती है। तुम अस्पताल में हो, शान्त रहो। पण्डित जी जिस लिये मकान खाली कर रहे थे, मैंने स्वतः ही उसका अनुमान कर लिया था। इस बात को मैंने भी सुन लिया था।'

कमला ने कहा—'तो···हे राम! बताइये, ऐसे क्या मैं जीवित रह सकूँगी। मर जाऊँगी। मैं तो अपने पिता के लिए कलंक बनूँगी।'

उसी समय यदुनाथ ने कमला के गरम हाथ पर अपना ठण्डा हाथ रखा और कहा—'धीरज से काम लो, कमला देवी! हम दोनों ही विपरीत धारा में बहे जा रहे हैं। परिस्थिति से अभिशप्त हैं। तुम अपने को विभिन्न पिता की पुत्री समझती हो और मैं धनिक पिता का पुत्र! ये दोनों ही गलत धारणाएँ हैं। कह सकती हो कि यह समाज की विषमता है। दुर्भावना है। हमारे इसी दृष्टिकोण ने मनुष्य को दूर-दूर कर दिया है।'

किन्तु उस दिन की वार्ता के बाद यदुनाथ अपने में कोई परिवर्तन कर सका हो, अस्पताल जाने से रुका हो, ऐसा भी नहीं हुआ। अपितु हुआ यह कि इस बीच में उसकी माँ ने भी कमला के प्रति अपना विशेष स्नेह भाव प्रदर्शित किया।

उस दिन संध्या बीत गयी थी। नगर की सड़कों पर प्रकाश हो गया था। पण्डित सुदर्शन किसी कार्य से बाहर गए थे। रजनीश दूसरे कमरे में मास्टर जी से पढ़ रहा था। शंकर मिश्र किसी वस्तु को लेने बाजार गया था। उसी समय यदुनाथ वहाँ आया। वह कई दिन से बाहर गया हुआ था। कमला को अस्पताल से आए एक सप्ताह हो गया था कि तब से यदुनाथ उससे नहीं मिला। जब वह आया, तो कमला को देखते ही, एकाएक हँस दिया। उसने कहा—नगर के लोग

समझते हैं कि पण्डित जी की पुत्री कमला देवी अन्धी बन गयी··· आग से एक बच्ची को बचाने में अपनी आँखें दे बैठीं। पर यहाँ तो पहिले से ताजगी है। शरीर मोटा है। आँखें भी ठीक हैं। मुफ्त में शाबाशी मिली, वह अलग।'

कमला ने हँसकर कहा—'तो आप मुझे अन्धा देखना चाहते थे!'

यदुनाथ बोला—'मेरी चाह का अर्थ क्या! पर देखता हूँ कि सेवा की आड़ में तुम्हारा प्रचार खूब हो गया। बच्चे-बच्चे की जबान पर कमला नाम चढ़ गया है।'

कमला ने कहा—'भाग्य की बात है। आप को ईर्ष्या है!'

यदुनाथ बोला—'जी हाँ, मुझे ईर्षा है। सौदा अच्छा है।'

कमला ने हँसकर कहा—'तो आप भी ऐसा कर देखिये। अनुभव कीजिये।'

यदुनाथ ने कहा—'कठिनाई यह है कि मैं लड़की नहीं। तुम्हारी अवस्था को प्राप्त नहीं। काश! मैं तुम्हारी जगह होता!'

कमला ने ताना दिया—'तो श्रीमान जी, इसीलिये नित्य अस्पताल जाते थे। मेरे लिए समर्पित होने की बात कहते थे।'

यदुनाथ बोला—'मैं भी आदमी हूँ। कमजोरियों से भरा हूँ। जानती तो हो कि मैं एक व्यवसायी का पुत्र हूँ। किसी समय मेरे पिता सूदखोर थे। दस रुपये का माल लेकर पाँच रुपये देते थे।'

'ओह, तो यह कहिये, आप यहाँ भी सौदा करने आते हैं···राम-राम! आप बड़े कठोर हैं। पत्थर हैं!' कमला ने आँखों से हँसा और अपने मधुर होठों से मुसकरा दिया।'

किन्तु यदुनाथ बोला—'निश्चय ही, मैं टोटे का सौदा नहीं कर सकता। अपने जातिगत स्वभाव को नहीं छोड़ सकता!' उसने कहा—'लोग अस्पताल में तुम्हारे दर्शन करने जाते थे, मैं पूजा करने।'

एकाएक आतुर बन कर कमला बोली—'आप आज पी आये हैं, क्या!'

हँसकर यदुनाथ बोला—'जी हाँ, आया हूँ। पीता हूँ। आजकल बे छनी पीने लगा हूँ।'

कमला ने मानों अप्रतिभ होकर कहा—'यह बतलाइये, कब आये, बाहर से!'

यदुनाथ कुर्सी पर पीछे हो गया और बोला—'आज ही आया।'

'बम्बई गए थे, व्यापार के काम से?'

'जी, नहीं, विवाह के लिए, पत्नी देखने।'

'तो देख आए? पसन्द कर कर आए?'

'जी, नहीं। वह लड़की पसन्द नहीं आयी, आँखों में वह तस्वीर उतारनी तो चाही, पर न उतर सकी। पहले ही एक तस्वीर आँखों में थी, उस पर वह अपना अस्तित्व नहीं जमा सकी।'

कमला ने इतनी बात सुनी, तो वह एकाएक बोल नहीं सकी। भारी बन गयी, यदुनाथ ने देखा कि कमला बरबस लजा गयी। उसके दुर्बल मुँह पर लाली दौड़ गयी, आँखें झुक गयीं।'

किन्तु अबकी बात कहने के साथ यदुनाथ फिर बोला—'कमला देवी, निश्चय ही मैं उस सेठ की लड़की को देखने गया था कि जो बम्बई के बाजार में करोड़पति कहलाता है। उसकी एक ही लड़की है। मेरे पिता को भरोसा है कि उस घर से सम्बन्ध बनाकर हमारा घर और आफिस धन से भर जायगा। किन्तु मैं तो बम्बई जाकर भी उस घर नहीं गया। उस सेठ से नहीं मिल सका। मैंने सहज ही यह अनुमान लगा लिया कि मेरा विवाह उस सेठ की पुत्री के साथ होना सुख का विषय नहीं रहेगा।'

एकाएक कमला ने भारी बनकर कहा—'आखिर क्यों? किस कारण?'

यदुनाथ कुर्सी से खड़ा हो गया और बोला—'यह बताना भी मेरे लिए संगत नहीं है। केवल मन की बात है।'

कमला भी कुर्सी से खड़ी हो गई और बोली—'यदुबाबू, आपको

मन की यह समस्या सहज नहीं, जटिल है। दुराग्रह से भरी है। जानते तो हैं आप कि विवाह सामाजिक प्रथा है, घरू-जीवन की एक रीत, तब क्यों न उसका निर्वाह किया जाय, ऐसे तो आप माता-पिता के आदेश की अवहेलना करते हैं। कहिये, क्या आपको विवाह नहीं करना। बताइये, आपके मन में क्या है? अजीब समस्या है। आपने मुझे भी पागल बना दिया है। इतना आभारित किया है और आप जानते हैं व्यावहारिक रूप से मेरी और आपकी कोई समता नहीं। पिता जी स्वयं दुखी हैं। वह मुझे कितना प्यार करते हैं, इसका मुझे पता है। अपने मानस का समस्त स्नेह उन्होंने मेरे ऊपर उँडेला है। लेकिन आज मैं उनके चिन्तन का पात्र बनी हूँ। शंकर मिश्र ने मुझे बताया है कि पिता जी रातों-रात जागकर जाने क्या सोचते हैं, अपने मन की कितनी गहराई में डूबे रहते हैं। बताइये, यह मेरे लिये शोभनीय है। आपके पिता जी इस परिवार के प्रति सद्भाव्य नहीं। फिर भी वह दिखावा करते हैं। आते हैं। मैं कहती हूँ यह तमाशा है। आपको यह अनुभूति और सद्भावना किसी और के लिए बोझिल न हो, परन्तु मेरे लिए यह कितनी भारी है, क्या आपने कभी इसका अनुमान लगाया है। आपने सोचा है कि नारी जीवन में केवल एक को ही स्नेह-दान देती है। और जब उसका दुरूपयोग हो, तो वह नारी अपने जीवन को अभिशाप मानती है, और मेरे समक्ष पिता जी का प्रश्न है, उनकी प्रतिष्ठा की बात है। उसे ठेस पहुँचाकर, आपके समीप पहुँचना मेरे लिए कठिन है। असम्भव है। यह आप भी जानते हैं कि मेरे पिता भले ही मौन हो जायें, परन्तु आपके पिता इस जीवन में ऐसा सम्बन्ध न स्वीकार कर सकते हैं, न ऐसी कल्पना करने की बात ही सोच सकते हैं। मेरी आपसे विनय है, आप उनकी बात सुनें। मानें।'

यदुनाथ का मुँह उस समय बाहर सड़क की ओर था। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'कमला देवी, विवाह करना मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है। इसका निर्णय करना मेरा काम है। मैं इसे जहाँ सामाजिक

परम्परा मानता हूँ, वहाँ एक जीवन की आस्था भी स्वीकार करता हूँ। भरोसा रखो, मैं उन्हें या तुम्हारे पिता को कोई मानसिक कष्ट नहीं दूँगा।'

एकाएक आँखों में आँसू भरकर अवरुद्ध स्वर से कमला ने कहा—'वे कष्ट में हैं, पीड़ित हैं, यदुबाबू! उनके मन की व्यथा मैं पहचानती हूँ। अब लोग उनके मुँह पर कहने लगे हैं कि······'

'ओह, यह समाज तुम्हें नष्ट कर देगा! मुझसे भी लोगों ने कहा है कि मैं······'

कमला चीख पड़ी—'ऐसे तो आप मुझे मार देंगे, मेरे पिता को...'

यदुनाथ ने स्वयं जोर से कहा—'ऐसी अशुभ बात मत कहो, कमला देवी!'

उस क्षोभपूर्ण अवस्था में ही कमला का स्वाँस फूल गया। छाती में धड़कन उठ आयी। उस अवस्था को लक्ष्य करके ही यदुनाथ बोला—'तुम बैठ जाओ। परेशान न बनो। आज तुमने बहुत कुछ कहा। अधिक कहा।' यह कहते हुए उसने कमला के दोनों कन्धे पकड़ लिए और उसे कुर्सी पर बैठा दिया। किन्तु कमला के मानस में तो उस समय क्षोभ था, उत्पीड़ा थी, भावना भी थी। उसने धोती के आँचल से अपनी आँखों को पोंछ लिया। उसी अवस्था में उसने अपनी लाल-सी आँखों को यदुनाथ की आँखों पर टिका कर कहा—'मैं भी नारी हूँ, इच्छा रखती हूँ। उनको पोसना चाहती हूँ। परन्तु मैं अपनी विवशता समझती हूँ। जिस डाल की ओर ताकती हूँ, उसे नहीं पकड़ सकती। इतनी ऊपर नहीं उठ सकती। हम दोनों के रास्ते में रुकावटें हैं। पहाड़ खड़े हैं। शंकर मिश्र ने एक दिन मुझसे कहा था कि लोग कहते हैं भूखे ब्राह्मण की लड़की ने धनपति के लड़के पर डोरे डाले हैं, उसे अपने रूप-जाल में······'

एकाएक जोर से यदुनाथ बोला—'ऐसे लोग बकवास करते हैं। वे निर्लज्ज हैं, कुत्ते हैं।'

कमला ने कहा—'मारने के हाथ पकड़े जा सकते हैं, कहने की जबान नहीं। पर आप मुझे क्यों ऐसी चर्चा का विषय बनाते हैं।'

यदुनाथ फिर कुर्सी पर बैठ गया और बोला—'कमला देवी, तुम्हारी बात संगत भी हो, तब भी सबल नहीं। यह मत भूलो, स्वार्थ सभी के हैं। तुम तो जानती हो, मैं पैदा अवश्य ही एक व्यवसायी के घर में हुआ, परन्तु मेरे मन के संस्कार तुम्हारे पिता द्वारा बने हैं। उन्होंने बचपन में ही मुझे जिस भावना से भरा वह आज भी मेरे मस्तिष्क में फल-फूल रही है। मैं जानता हूँ कि मेरे पिता पण्डित जी से चिढ़ते हैं। वह जितना मेल-मिलाप रखते हैं, वह केवल लोक-चर्चा से बचने के लिए। कुछ मुझे भी प्रसन्न रखने के लिए करते हैं। क्योंकि मैं उनकी एकमात्र सन्तान हूँ, आशा हूँ। इसलिए पुत्र से असहमत होकर भी वह अपने मन के विपरीत चलते हैं। मुझे पता है कि मेरे पिता दुराचारी और विलासी रहे हैं। पैसा भी उन्होंने कठोरता से उपार्जित किया है। वे दम्भी हैं। परन्तु मेरी भी यह विवशता है कि वे मेरे पिता हैं। मैं अपने विवाह के लिए सुन्दर नारी की कामना नहीं करता। धन मेरे पास है। मैं जानता हूँ कि आज का धनिक कल निर्धन भी बन सकता है। इसलिए मैं सोने-चाँदी की अधिक कल्पना नहीं करता। देर हुई, पण्डित जी ने मुझे यह बता दिया है कि जीवन का वास्तविक धन क्या है। तुम लोग मेरे कारण दुःखी बनो, यह मैं पसन्द नहीं करूँगा। ऐसे तो मैं इस घर का आना बन्द कर दूँगा। नहीं आऊँगा।'

चंचल बनकर कमला ने कहा—'यदुबाबू, कुछ और न समझें। मुझे अपनी समझें। परन्तु अपने पिता की लाश पर पैर रखकर मैं आपके घर पहुँचूँ, यह मेरे लिए कदापि शोभनीय नहीं रहेगा!'

यदुनाथ खड़ा हो गया और कठिन स्वर में बोला—'कमला देवी, कठोर मत बनो। इतनी भारी बात मत कहो। विश्वास करो, विश्वास करो, तुम जिस घर भी जाओगी, मेरे लिए तब भी स्नेह और अनुमति की वस्तु रहोगी। इस यदुनाथ को तुम ऐसा ही पाओगी।' उसने कहा

'मैं विवाह को महत्व नहीं देता। नारी का भोग, जीवन का भोग तो आदमी भोगता है, पाता है। उस सड़ाँद में जीवन का अन्त करता है। उसमें क्या जीवन का सत्य पाया जाता है। मैं वही पाना चाहता हूँ। पा चुका हूँ, भले ही तुम निर्धन हो, असुन्दर हो, परन्तु मेरे लिए अनुपम हो। तुम्हारे मन में जो कुछ है, वह क्या एक धनिक परिवार में पली लड़की में मैं पा सकता हूँ। इसी से कहता हूँ, तुम रूप की परी हो, लक्ष्मी हो, जीवन के रस से भरपूर हो।'

कमला ने जैसे निढ़ाल बनकर अपना सिर कुर्सी पर डाल दिया। उससे एकाएक बोला नहीं गया। जब यदुनाथ भी बाहर आसमान की ओर देखता रहा, तो तभी साँस भरकर कमला ने कहा—'आह, यदुनाथ।'

जैसे चौंककर यदुनाथ ने कमला की ओर देखा। उसने कहा—'कमला देवी, तुम मुझे सुखी मानती हो। पर मैं तो अकेला हूँ, जीवन के सुख से वंचित बना हूँ। मेरे मन में भरा कोलाहल मुझे अशान्त बनाता है। यही मेरी विवशता है। मैं जानता हूँ घर के नौकर वेतन पाने के लिए मेरी सेवा करते हैं, मानवीयता या अपनत्वता के नाते नहीं। समाज के लोग मेरा सम्मान करते हैं, केवल इसीलिए तो कि मैं एक करोड़पति का लड़का हूँ। मेरे कई कारखाने हैं, वहाँ हजारों मजदूर काम करते हैं। पर उनमें कौन मेरा है। सभी मुझे उपेक्षा का पात्र मानते हैं। मेरी शक्ति हो, तो धन लुटा दूँ, समाज की वस्तु समाज को सौंप दूँ और उसकी सद्भावना पाने का प्रयत्न करूँ। पर इतना त्याग करने की भी मुझमें शक्ति नहीं है। मेरे शरीर में भरे खून की एक-एक बूँद, जब कि मेरी नहीं, तो सचमुच, वह मुझे पराई लगती है, उसमें बदबू और सड़ाँद आती है···पाप की गन्ध······

यदुनाथ को अतिशय भावुक और तन्मय देख, कमला ने अपना हाथ बढ़ा दिया और यदुनाथ का हाथ पकड़ कर कहा—'आप भी मेरे समान बनते हैं, इतने भारी······'

यदुनाथ बोला—'कमला रानी, मैं व्यक्त नहीं कर सकता, मेरे जीवन में भी हाहाकार भरा है। वह कभी मुझे भी परेशान करता है। मुझे यह स्वीकार नहीं कि आदमी जीवन में केवल पैसे का चिन्तन करे···जीवन भर इन्सान की लाशों पर सोने-चाँदी के ढेर लगाता रहे! यह तो अमानवीयता है! जंगलीपन है!'

कमला बोली—'आप भी ऐसा समझें यह आश्चर्य है।'

यदुनाथ बोला—पैसा सभी कुछ नहीं। हमारी सीमा नहीं! वह एक माध्यम हो सकता है, लेकिन जीवन पर एकाधिकार उसका नहीं। वे और तत्व हैं कि जो जीवन को उठाते हैं। वह दुर्बल और जर्जर बने तुम्हारे पिता के पास हैं। उनके मन में कितना स्वाभिमान है, मैं उसे समझता हूँ। वह किसी से दान नहीं लेते। इसी से, घर का खर्च चलाने के लिए उन्हें एक काम सौंपा है। मिल कर्मचारियों के संघ का सेक्रेटरी बनाया है। पण्डित जी ने इस बीच में बहुत काम किया है। मजदूर जीवन में अनेक सुधार किये हैं। शराब पीना और जुआ खेलना जाने कितने मजदूरों ने छोड़ दिया है। जिस सभा में उनका अपमान हुआ, लोगों ने आवेश में आकर जो कुछ किया, मुझे पता है, बाद में एक-एक ने पण्डित जी के समक्ष अपना सिर झुकाया। पश्चात्ताप प्रकट किया। और जानती हो तुम, मेरे माता-पिता भी पुत्र के लालच को बड़ा मानते हैं। वह इस मोह से घिरे हैं, मुझे ध्यान है कि मैं उनकी आकांक्षा का आदर करूँ। पिता जी को पता चल गया कि मैं बम्बई जाकर भी सेठ से नहीं मिला। उसकी पुत्री को देखकर नहीं आया। लेकिन पिता ने मुझसे कुछ नहीं कहा। इस बस्ती के जितने मकान जले, पिता जी निराश्रितों के प्रति उदार नहीं थे, परन्तु मेरे कारण ही उन्होंने एक बड़ी राशि देकर उन्हें उपकृत किया।' यह कहते हुए यदुनाथ ने सांस भरी और बोला—'देर से, यह इन्सान जिस नपैने से अपने को नापता आया है, वह गलत है। इसीलिए मनुष्य अनेक वर्गों में, समूहों में बँटा है। दम्भी और अनुदार क्यों है। संग्रह की भावना

ने इस इन्सान को ग्रस लिया है। यह जहरीला धुआँ सभी ओर फैला है।

कमला ने कहा—'यह अन्तहीन है।'

यदुनाथ बोला—'हाड़-माँस का इन्सान पाषाण बना है। इन्सानियत को चबाये जा रहा है।'

उसी समय शंकर मिश्र बाजार से लौटा! उसने यदुनाथ को नमस्ते किया।

यदुनाथ ने पूछा—'कहो मिश्र, अब तो कोई चिन्ता नहीं।'

शंकर मिश्र बोला—'न बाबू! आपकी कृपा से कुछ नहीं।'

कमला ने कहा—'शंकर मिश्र गाँव जाने की बात कहता है।'

यदुनाथ ने कहा—'क्यों मिश्र ?

शंकर मिश्र ने कहा—'हाँ, बाबू! वहाँ जमीन है। उसके अनाज को हिसाब करना है।

यदुनाथ ने कहा—'हम भी आयेंगे तुम्हारे गाँव में! नदी पर घूमेंगे।

शंकर मिश्र ने कहा—'बाबू आओगे, तो आनन्द रहेगा। उस स्वर्ग का आनन्द क्या यहाँ मिलेगा। यहाँ तो शोक है, अशांति है, बाजार में निकलो, तो प्राणों की खैर नहीं। कहीं मोटर, कहीं बग्घी···पों-पों, हटो-हटो···राम रे! कान ही फूट जाते, सुनते-सुनते!'

सुनकर, यदुनाथ हँस दिया। कमला भी हँस पड़ी। उसी समय पण्डित सुदर्शन भी घर आये। यदुनाथ को देख, वह हँस दिये। जब यदुनाथ ने खड़े, होकर उनका अभिवादन किया, तो वह बोले—'तुम बम्बई गये और लौट आये। तुम्हारे पिता जी मिले थे। सब कैफियत बताते थे। कहते थे, मैं लड़के पर काबू नहीं पा सकता।' वह बोले—माता-पिता की आज्ञा मानना उचित है। उनकी आकांक्षा को महत्व देना ही श्रेयस्कर। अब तुम्हें विवाह कर लेना चाहिये।

यदुनाथ बोला—'पण्डित जी, समय आयेगा, तो हो जायेगा।

उसी समय पण्डित जी ने कमला की ओर देखा। तनिक हँस दिया। उन्होंने कहा—'बेटी, खाना पक गया ?'

कमला ने कहा—'जी बन गया।'

पण्डित जी बोले—'तो ले आओ! यदुनाथ के लिए भी।

यदुनाथ ने कहा—'मैं इतनी देर से बैठा रहा।

परन्तु काम की बात आपने की, मुझे भी भूख लगी है।

कमला ने कहा—"आपको कह देना था।"

यदुनाथ बोला—'यह खिलाने वाले का काम था।'

पण्डित जी बोले—'हां, बेटी! यह तुम्हारा काम था।'

कमला ने कहा—'पिता जी मैं कैसे पूछती। यहाँ एक साग बना है और इन्हें घर पर कई साग खाने की आदत है। रसोइया जाने क्या-क्या बनाता है—ऊपर से आचार मुरब्बे···?

यदुनाथ बोला—'आदमी परिवर्तन माँगता है। खाना भी नहीं माँगता है। कभी-कभी तो आदमी चने की नमकीन रोटी खाकर आनन्द पाता है। और भूख में तो किवाड़ भी पापड़ लगता है।'

कमला रसोई में चली गई। उसने दो थालियों में खाना लगाया। शंकर मिश्र बाजार से रबड़ी लाने गया। उसी समय रजनीश पढ़ने से छूटा। वह भी उस कमरे में आगा। देखते ही यदुनाथ बोला—'कहो! दोस्त।'

सुनकर, रजनीश झेंप गया। खाना आया, तो वह यदुनाथ के साथ बैठ गया। रबड़ी आ गयी वह दो कटोरियों में दोनों थालियों में रख दी गयी। रजनीश ने तुरन्त ही रबड़ी में टुकड़ा लगाया, तो यदुनाथ हँस कर बोला—यह पक्का लक्षण है। पहिले मीठा खाता है। यही पहचान है।'

सुदर्शन जी बोले—'यह पक्का शैतान बन गया है।'

यदुनाथ बोला—'अभी बच्चा है कुछ घट रहा है, कुछ बढ़ रहा है।'

सुदर्शन जी बोले—'यह लड़का अच्छा नहीं बनेगा।'

यदुनाथ ने कहा—'कुछ नहीं कहा जा सकता। अभी तो बंधी मुट्ठी है, जब खुलेगी, तो पता चलेगा। वैसे भी आदमी बदलता है। पानी के समान चलता है।'

उसी समय कमला रोटी लेकर आयी! यदुनाथ बोला—'मैं आज तुम्हारा सभी खाना समाप्त कर दूँगा।'

कमला ने कहा—'अभी आटा है। चूल्हे में आग है।'

सुनकर, यदुनाथ हँस दिया।

और जब यदुनाथ भोजन करके वहाँ से विदा हुआ, तो द्वार तक साथ आकर कमला ने कहा—'क्षमा कीजिये, कुछ अन्यथा भी न समझियेगा, मैंने आज बहुत कुछ कहा।'

यदुनाथ मुस्कराया—'मैं भी चुप नहीं रहा! नहले पर दहला बन गया।' वह चला गया।

बाईस

लेकिन यदुनाथ उस घर से हँसता हुआ चला तो गया, परन्तु कमला के समक्ष एक समस्या उठा गया। मानो उसने नाटक का परदा उठा दिया और अब कमला को अपना अभिनय प्रदर्शित करना आवश्यक बन गया। अब तक उसने जिस बात को हल्केपन से देखा था, अनायास ही लगा कि वह उसके जीवन की सबसे बड़ी समस्या है, जीवन-मरण की बात है। और स्थिति यह थी कि उसने माँ के मरने के बाद पिता के घर की सेवा करना ही अपना कर्तव्य माना था। उसने विवाह को महत्व नहीं दिया था। सोचा था समय आयेगा तो हो जायेगा। उसे कहीं भी चले जाना होगा। किन्तु अब लगा कि कहीं जाना आसान नहीं है। एक तरफ पिता की इच्छा का प्रश्न है और दूसरी ओर अपनी इच्छा और आकाँक्षा का प्रश्न। जब यदुनाथ बम्बई से खाली वापिस आया, तो उसने यह भी समझ लिया था कि वह कहीं और विवाह के प्रति आकाँक्षित नहीं बनेगा। जो यदुनाथ धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ता आ रहा था, अपने व्यवहार से, स्वभाव से और विचारों से अनायास ही कमला के मानस में स्थान पाने का अधिकारी बन गया था, वह विवाह करने के लिए भी, कमला के प्रति आतुर और आकाँक्षित बनेगा, इतना उस यौवनमयी बाला ने एक दिन भी अनुभव नहीं किया था। परन्तु अब यही बात उसके समक्ष थी। वह मानों परीक्षा के लिए आग के समक्ष बलात् पहुँच चुकी थी। खड़ी की गई थी। यद्यपि उस यौवनमयी कमला में परोक्ष अथवा अपरोक्ष

रूप से यह पुकार अवश्य उठती कि उनके जीवन का भी कोई अंग है, परन्तु वह इतनी समस्याओं से घिरी थी, घर के उत्तरदायित्व से दबी थी, कि अपने तईं कुछ सोचने का अवसर ही नहीं पाती थी। संयोग से, यदुनाथ उसके जीवन के द्वार पर आकर रुका, तो वह जैसे वहीं टिक गया। मानो उस मुसाफिर का लक्ष्य ही वह था। वह आगे नहीं बढ़ा। आश्चर्य तो यह कि वह आँधी नहीं बना। बल्कि हल्की···हल्की बयार के सदृश कमला के मानस में प्रवेश करता गया। उस जीवन में शीतलता का राज्य स्थापित करता गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि आरम्भ से ही, यदुनाथ स्वतः ही कमला के लिए प्रेरणा और अनुभूति का केन्द्र बन गया। वह उसके हृदय में समा गया। किन्तु जब उसी यदुनाथ ने स्पष्ट रूप से अपनी अभिव्यक्ति को प्रगट किया और उसने बता दिया कि वह कमला के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र विवाह का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकेगा, तो सचमुच उस सकल और भावनामयी कमला के मानस में जैसे तूफान उठ आया। उसके अन्तर में जिस प्रकार का कोलाहल उठा, तो उससे, उसे किंचित भी यह नहीं सूझ पड़ा कि अब उसका कर्म क्या है···उसका विवेक किस कर्तव्य की उससे अपेक्षा करता है। मानो वह स्वयं उस आँधी में उड़ जाने के लिए आतुर बन उठी। वह निर्बुद्धि हो गयी। कमला के मन में बार-बार आया कि वह यदुनाथ को पाये और अपने सम्मान को भूल, उसके चरणों में अपने सिर को झुका कर कहे, मुझे छोड़ दो···भूल जाओ, यदुनाथ! किन्तु इतना कहना और करना तो दूर, कमला को लगा कि उसके मानस का समुद्र स्वयं तरंगित हो उठा है। ठाठें भर रहा है। कमला ने सहज ही अनुभव किया कि यह यदुनाथ भले ही पैसे वाला हो, दूसरी जाति का हो, परन्तु जिस भावना से अनुप्राणित बनकर वह जीवन के प्रथम प्रहर में उससे आ मिला, निश्चय ही, यह संयोग की, संसकार की और जीवन के उस अनुष्ठान की सन्धि है कि जो जीवनोत्तर शृंखलाबद्ध बनी एक दूसरे को मिलाती है, जोड़ती है।

चूंकि कमला के संस्कार ऐसे थे कि वह स्वभाव से धार्मिक प्रवृत्ति की पूजक थी, इसलिए उसके लिए 'पूर्व जन्म' का मानना भी अप्रत्याशित बात नहीं थी। अतएव, उसके मन में बार-बार यह बात आती कि जरूर यह यदुनाथ उसका पूर्व जन्म का साथी होगा। उसे मिला होगा। किसी-न-किसी रूप में साथी रहा होगा। मन में उठे इस विचार के साथ वह मस्त कली के समान थिरक जाती। उसे लगता कि वह अकेली नहीं। उसकी हृदतन्त्री के तार सूने नहीं। उनकी लय है, वाणी है और स्वर है। फलतः उसकी आँखों में जो खुमार आता, वह उसे नैसर्गिक सुख का आभास देता। हृदय में समाहृत हुए उस नशे में कमला झूम-झूम उठती उसका रोम-रोम पुलकित हो जाता।

दिन गया, रात आ गयी। शहर सो गया। कमला का भाई रजनीश और पिता भी सो गये। पण्डित जी उस दिन भी खामोश रहे। रात में सोने के समय घर में आये। किन्तु उस दिन कमला का ध्यान इस ओर नहीं गया कि वह अपनी बात के साथ यह भी सोचे कि पिता के मन में क्या है। क्योंकि कमला इस बात को पूर्णरूप से जानती थी कि उसके पिता ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए न आदेश देंगे, न स्वयं तत्पर होंगे। यद्यपि कमला इस बात को देर से जानती थी कि उसके पिता जातिवाद के पोषक नहीं, परन्तु समाज में धनिक और निर्धन की जिस प्रकार परिभाषा की जाती थी, उसे वे अवश्य मानते थे। इसलिए यदुनाथ के साथ उनकी पुत्री की प्रणय-बन्धन हो जाना इसे वे अस्वाभाविक और उपहास का विषय समझते थे।

रात आधी से ऊपर जा चुकी थी। दूसरी चारपाई पर सोये हुए पण्डित सुदर्शन जी खुर्राटे ले रहे थे। चारों ओर निस्तब्धता थी। मकान के बाहर मोहल्ले में कहीं कुत्ते भोंकते और कहीं रात के चौकीदार आपस में बोलते और गाते हुए सुन पड़ते थे। ऐसे ही समय कमला के मन की अवस्था अतिशय दयनीय और भयावनी बनी थी। उसने जीवन में जिस बात की कल्पना नहीं की अब वही उसके सामने

थी। उस रात में उसके समक्ष कई विकल्प थे। वह किसी निश्चय पर पहुँचने के लिए आतुर थी। एक ओर पिता और उनके विचार थे और दूसरी ओर समर्पण के लिए प्रस्तुत विनीत बना यदुनाथ था। वह कितना सरल, निराभिमानी और भावुक बना था। मानो उसे अपने धन का, प्रतिष्ठा का तनिक भी दम्भ नहीं। कमला के समक्ष उसकी दृष्टि में कोई मूल्य भी नहीं। ऐसे सहृदय, निस्पृह और सरल से भरे सपाट युवक की उस आकांक्षा को कि जिसका नाम प्रेम था, समर्पण और अनुकरण से उसका मानस उद्वेलित हो उठा था, उसे वह तरुणी किस तरह ठुकराये, उससे मुँह मोड़े, यह उसे नहीं सूझ रहा था। उस स्थिति में ही उस यौवन से पूरित कमला को लग रहा था कि उसका मानस फट जायेगा, उसमें जो एक बड़ा सागर हिलोरें ले रहा है, तो उसकी गहराई के अन्तराल में उसका सभी कुछ समा जायेगा···क्योंकि पिता की इच्छा के समक्ष उसका कोई अस्तित्व नहीं था। उस सुमेरु पर्वत से टकराना उस कमला की शक्ति से बाहर था। वह जानती थी कि तनिक उसने गलत कदम उठाया, तो पिता का प्राण उनके शरीर को फोड़ कर निकल जायगा। उनकी वेदना, व्यथा और कड़वाहट जब वह किसी पर व्यक्त नहीं करेंगे, तो स्वयं ही उसके शिकार बन जायेंगे···उस आग में अपने को झोंक देंगे।

कमला के मन की यह अवस्था थी कि जो उसका मन्थन कर रही थी। वह बार-बार करवटें बदल रही थी और सो नहीं पा रही थी।

उसी समय कमला के मन में बात उठी कि अब पिता जी का स्वास्थ्य अधिक गिर गया है। इनके मन को जहाँ समाज और देश की अवस्था से पीड़ा मिली है, वहाँ मेरा भी अपराध है···मैंने भी अपने को समस्यात्मक बनाया है। पिताजी के लिए चिन्तन का विषय बनी हूँ। वही तो इनके मन को कचोटती है। दीमक की तरह चाटती है। अस्पताल से लौटी हूँ, तो पिता जी ने एक बार भी अपनी ओर से उल्लेख नहीं किया कि मैंने क्या सोचकर यदुनाथ से विवाह करने का

विचार व्यक्त किया। मानो शिव के समान पिता जी ने उस जहर को पी लिया। तभी उसने करवट बदली और कहा—'यह रजनीश भी अब दूसरे रास्ते पर जा रहा है। पढ़ने से जी चुराता है। यही तो मेरी माँ की निशानी है। पिता जी की आशा है। यदि ऐसा ही रहा, तो यह आशा भ्रष्ट हो जायगी। पिता जी की पूजा बिखर जायगी। इस रजनीश को आदमी बनाना मेरा काम है। माँ के बाद मैंने ही इस घर का बोझ अपने सिर पर लिया है।

यद्यपि बाहर के समान, कमरे में भी सर्दी थी, परन्तु कमला को गर्मी की उमस मनुभव हो रही थी। उसने कमरे के किवाड़ खोल दिये। वह मकान के बाहर आँगन में चली गयी। वहीं पर एक संग-मरमर के पत्थर की चौकी थी, कमला उसी पर जाकर बैठ गयी। वह जगह अतिशय ठण्डी थी। उस पर ओस भी जमी थी। उस समय आकाश के तारे टूट रहे थे। जैसे वे एक-दूसरे से आँख-मिचौनी खेल रहे थे। आसमान का शुक्र तारा दूर चमक रहा था। चाँद भी अपना मुँह निकाल कर धीरे-धीरे आ रहा था। चादर ओढ़े हुए, और घोंटों पर मुँह रखे हुए कमला बैठी थी। उस समय उसकी दृष्टि आसमान की ओर थी। आसमान की कालिमा धीरे-धीरे मिट रही थी, तो उसके साथ धरती भी ऊपर का प्रकाश पाकर निखरती जा रही थी।

कुछ देर बैठकर कमला फिर कमरे में पहुँची। वह सीधी पिता की चारपाई के पास जा खड़ी हुई। वह पैरों की ओर थी। दूर सड़क की बत्ती का प्रकाश खिड़की के रास्ते उसके पिता के मुँह पर पड़ रहा था। उस क्षीण ज्योति में ही कमला ने देखा कि उसके पिता का चौड़ा ललाट जैसे उसे रात के प्रहर में भी चमक रहा था। उनके मानस में भरी प्रतिमा और आज मानो उस मस्तक में आकर बैठ गये थे और परस्पर खिलौड़ियाँ कर रहे थे। इतना देख, कदाचित जीवन में पहिली बार, उस कमला को अनुभव हुआ कि हाय! हाड़, माँस की इस नश्वर काया में कितना भूचाल भरा है, मानव के लिये

कितनी पीड़ा है, समाज की विषमता से कितनी कड़वाहट है। इतना अनुभव करते ही, इस कमला ने सहज ही पाया और अनुभव किया कि यदि ये मेरे पिता चाहते, तो इनके पास प्रचुर धन होता। ये सम्पन्न होते। पर इन्होंने तो पापी जीवन की पीड़ा, व्यथा और क्षोभ! आह! अपने स्वार्थ के लिए इन्होंने किसी को नहीं ठगा। इन्सान को मूर्ख बनाने का प्रयत्न नहीं किया।

एकाएक अपने पिता के प्रति गर्वित और अभिमानिनी बनी कमला के मन में प्रश्न उठा—'तो···तो···?'

उसने अपने होंठ फड़फड़ाये और कहा—'मैं यदुबाबू को रोक दूँगी। उनसे स्पष्ट कह दूँगी, वह मेरी कल्पना न करें। मुझे पाने की इच्छा न करें।'

सचमुच, उस अवस्था में कमला इतनी भावातिरेक हुई कि उसकी आंखें भर आई। वह उन्हीं आँखों से पिता के चरणों पर झुक गयी। और उन आँखों को उन्हीं पैरों पर रखकर फूट-फूट कर रो पड़ी।

पण्डित सुदर्शन गहरी नींद में सो रहे थे। एकाएक जाग गये। वह छूटते ही बोले—'कौन!'

किन्तु कमला की हिचकियाँ बँधी थीं, वह खुल कर रो पड़ी थी।

एकाएक आतुर बन, पण्डित जी उठ कर बैठ गये। वह तड़पकर बोले—'अरे, तू कमला···मेरी बिटिया···?'

कमला ने कहा—'पिता जी, मैं अपराधिनी हूँ। मैं आपके लिए चिन्ता का विषय बनी हूँ।'

पण्डित सुदर्शन ने बत्ती जला दी और उस रोती हुई कमला को अपनी छाती से लगा लिया। उन्होंने अतिशय व्यग्र बनकर कहा—'बेटी, मैं तेरे मन की बात और पीड़ा समझता हूँ। तू यह क्यों भूलती है कि अब मैं न केवल तेरा पिता हूँ, माँ भी हूँ। तू धीरज से काम ले। परिस्थितियों के द्वार खुलने दे। होगा वही, जो भगवान को

स्वीकार होगा। मैं बस इतना कहता हूँ कि कर्तव्य और भावना की हत्या मत होने दे। जल्दबाजी में जीवन के बड़े स्वार्थ को दृष्टि से ओझल न कर दे।'

पिता से इतना सुनते ही, कमला का अन्तर्मन चीख उठा। उसने आहत भाव में पिता की ओर देखा और कहा—'मैं देखती हूँ कि आप अब अधिक गम्भीर रहते हैं। पहले के समान न हँसते हैं, न कुछ बोलते हैं।''

पण्डित सुदर्शन ने जैसे काँपते हुए कहा—'हाँ, बेटी! अब मेरी अवस्था बदल रही है। कमजोरी अधिक आ गयी है। पर तू ऐसा क्यों सोचती है कि तेरी किसी बात के कारण···बोल, क्या यदुनाथ की बात के कारण तू मुझे यों परिवर्तन हुआ पाती है!, बेटी! विवाह, विवाह है। कहीं भी हो सकता है। यह तो शरीर की भूख मिटाने का साधन मात्र है। यह तेरी इच्छा का प्रश्न है। मैं पिता बन कर रास्ता नहीं रोकूँगा। देखती है, अब मैं हार गया। यह जीवन ही हार गया। जब से तेरी माँ गयी, जिस अवस्था में वह गयी, तो तभी से······

एकाएक कमला ने पिता की छाती पर सिर रखकर कहा—'आप रो पड़ना चाहते हैं, पिताजी!'

और सचमुच पण्डित सुदर्शन के मन का ममत्व उस क्षणों में एकाएक ही विद्रूप बनकर बाहर आ गया। वह उसकी आँखों में छलछला आया। फिर उनके सूखे गालों पर निकल आया। उसी अवस्था में उन्होंने कहा—'मैं रोता नहीं, मेरी बच्ची! पर जब याद करता हूँ कि तेरी माँ मेरी सनक का पहिला शिकार बनी, बुरी तरह मौत को प्राप्त हुई, तो मैं कभी नहीं चाहूँगा कि मेरी बच्ची भी उसी उसी पथ का, उसी कठिनाई और जीवन की दुःसह पीड़ा का अनुभव करे और अनुगमन करे! मैं तो चाहूँगा कि तू जीवन भर हँसती रहे, सुखी रहे।' वह बोले—'कमला बेटी, तू अपनी माँ पर गयी है। वही आँख, वही

नाक, तुझे देखकर ही, मुझे तेरी माँ याद आ जाती है। अपनी भूल भी स्मरण हो आती है।'

कमला ने कहा—'आप क्या कहते हैं पिता जी! आपकी भूल क्या थी · कोई नहीं! माँ मरनी थी, मर गयी। पर आपके प्राणों में सम्मान की और इन्सान के गौरव की जो पुकार थी, वह तो नहीं मरी। जब मेरी माँ ने उसकी रक्षा की, तो मैं भी उसी की रक्षा करूँगी। भरोसा रखिये, पुत्री के रूप में, मैं आपके पथ पर अपना जीवन बिछा दूँगी!'

एकाएक आलोड़ के साथ पण्डित जी ने अपना काँपता हुआ हाथ कमला के सिर पर रखा और कहा—'मेरी बच्ची!'

कमला ने कहा—'पिता जी, मुझे आशीश दीजिये, मैं अपने पथ से भ्रष्ट बनी हूँ। लगता है कि मैं चलते-चलते भटक चुकी हूँ।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'नहीं, नहीं, तेरी पूजा अक्षत है, बेटी! किसी के साथ अनुभाग करना बुरा नहीं। समर्पण की बात सोचना भी असंगत नहीं। किन्तु जिसे लोग प्रेम कहते हैं, वह वासना है, सड़ाँद है। उसमें गिरकर न आदमी बचता है, न नारी। यदुनाथ धनिक का पुत्र है, इसलिए वह अनुपयुक्त है, मैं इसे नहीं मानता। परन्तु यह सत्य है कि धन की शक्ति और धनिक की दृष्टि दोनों ही सन्देह से पूरित हैं। वह आसुरी शक्ति है। कभी अपने अस्तित्व की दुहाई दे सकती है। आदमी को विवेक शून्य बनाने में समर्थ होती है। यही एक बात है, जो मुझे चुभती है। आज तुम्हारा सम्बन्ध हो और कल टूटने की स्थिति में हो, तो मरकर भी मेरी आत्मा चैन नहीं पायेगी। इस जीवन में मैंने अनेक धनिक देखे हैं, वे सभी समय पर बदलते पाये हैं। जो यदुनाथ आज तुम्हारे लिए माता-पिता का भी विरोध करता है। वह कल अपने बदले हुए मन का भी विरोध करे, ऐसी सम्भावना मैं अपने में नहीं पाता। भावना और आदर्श स्थायी नहीं रहते, परिस्थिति के झँझावात में पड़कर तुरन्त बदल जाते हैं। इस समाज में समता का

व्यापार और व्यवहार चलता है, असमता का नहीं···निर्धन और धनिक का नहीं······

कमला का सिर झुका था। उसके पैर का एक अँगूठा कमरे के फर्श पर चल रहा था, घूम रहा था। निश्चय ही, पिता की बात सुनकर, उसके मन में भी कुछ आ रहा था, कुछ जा रहा था।

उसी समय पण्डित सुदर्शन ने फिर कहा—'वस्तुत: मैं आजकल तुम्हारी समस्या को अधिक अनुभव करता हूँ। मैं स्वयं चाहता हूँ कि तुम्हारा विवाह हो जाये। तुम जहाँ जाओ, यह रजनीश भी तुम्हारे साथ चला जाये। मैं जीवन के इस गोरख धन्धे से दूर होना चाहता हूँ। मैं गाँव में लौटना पसन्द करता हूँ। अकेला रहूँगा और जीवन काट दूँगा। मैं तुम्हें यह बताने में असफल रहा कि जीवन भी अनुभूतियों से भरी एक दुकान है। लेकिन ऐसी दुकान कि कोई मालिक सुख शांति से दिन काटता है और कोई परेशानियों से! मैं ऐसा ही रहा। तुम्हारी माँ को सदा अभावों के अन्धेरे में भटकाता रहा। पर आश्चर्य मुझे इस बात का है कि उस देवि ने भी कभी मुझे नहीं रोका। उसने सदा मुस-करा कर और हँसकर मुसीबतों का आलिंगन किया।' यह कहते हुए पण्डितजी ने साँस भरी और कहा—'कमला बेटी, देखो तो, कैसा व्यापार है यह, कि तेरी माँ मेरे इस जीवन में आँधी की तरह आयी और चली गयी। केवल पुत्र और पुत्री के रूप में तुम दोनों को छोड़ गयी। ऐसी ही एक हो तुम, कि आज हो कल नहीं। तुम्हें कहीं भी चले जाना है। और एक दिन मुझे तो पूर्णरूप से इस धरती से उठ जाना है। तब भला, मेरे लिए अब क्या कहना रह गया। मेरा अस्तित्व ही मिटने के किनारे पहुँच गया। मैं···तुम···यह जीवन-व्यापार···री, कमला!'

कमला ने अपनी रोती हुई आँखें ऊपर उठा दीं और कहा—'यह तो बड़ा पीड़ा दायक विषय है, पिताजी!'

पण्डित जी साँस भर कर कहा—'हाँ, बेटी ! पर सत्य यही है। आश्चर्य कि आदमी फिर भी नहीं चेतता। नीचे की ओर नहीं देखता।'

कमला ने कहा—'मानव अब अमानव हो गया है'''उसका ममत्व मिट गया है !'

उसी समय दूसरे कमरे से उठकर शंकर मिश्र आया और प्रातः का नमस्कार करने के लिए पण्डित जी के चरणों में झुक गया।

तेईस

शंकर मिश्र के आने से पिता-पुत्री की वार्ता में अवरोध तो आया, परन्तु वह प्रसंग स्थगित नहीं हुआ। जब शंकर मिश्र वहाँ से हट गया, तो तभी, कमला ने कहा—'पिताजी, आत्मा में जिस ज्योति का प्रकाश है, उसे मेरी माँ ने देखा था, अनुभव किया था। माँ ने मुझसे अनेक बार कहा था।'

उसी समय प्रात: की हवा आने लगी थी। बाहर सड़क पर आदमियों का आवागमन आरम्भ हो गया था। पण्डित जी ने कमला की बात सुनी, तो अत्यन्त भावपूर्ण बनकर कहा—'बेटी, इस प्रभात बेला में, मैं उस सत्य का उद्घोष करते हुए हर्षित हूँ कि मेरा निर्माण तुम्हारी माता के द्वारा हुआ। सचमुच वह देवि थी। उसके प्राणों में अपूर्व ज्योति जगती थी। वह संसार के भौतिक पदार्थों से भले ही अभाव भरी रही, परन्तु विचारों से कभी भी हीन नहीं बनी। उसके मुँह पर कभी उदासी नहीं आयी। सदा ही मुझे प्रोत्साहन देती रही।' पण्डित जी रुक गए और बोले—'आज तेरे आँसू देखकर, बरबस ही, मुझे तेरी माँ याद आ गयी। मैं अनुभव करता हूँ कि तुम्हारे ये आँसू मेरे हैं। मेरे द्वारा ही प्राप्त हुए हैं। मैं तुम्हारा पिता हूँ न, तो मेरे मानस की पीड़ा, क्षोभ तुममें भी आ गया है और मैं अनुभव करता हूँ कि सांसारिक दृष्टि से मैं पिछड़ा हुआ हूँ। जीवन में पीड़ा पाई, तो पैतृक सम्पत्ति के रूप में यही तुमने भी प्राप्त की। तुम भी कातर बनी ···अभाव से पूर्ण······'

कमला स्वयं भावना से भरी थी। पिता की बात सुनी, तो वह चंचल बन कर बोली—'आप ऐसा क्यों कहते हैं, पिता जी ! मुझे आप पर गर्व है। आपने आग के अंगारों पर चलकर इस जीवन का सम्मान किया है। आपने हार नहीं मानी। यही आपकी सफलता है। प्रत्येक अवस्था में अपने को स्थिर रखा है।'

सुदर्शन जी ने साँस भरी और कहा—'पर बेटी, मैंने पाया क्या ! इस जीवन से दिया क्या ! जो चेतना मुझमें जागी, उससे दूसरों ने कोई लाभ नहीं उठाया। मैं कुछ नहीं दे पाया।'

कमला की आँखों में अपेक्षाकृत अधिक चमक आ गयी थी। उस अवस्था में ही उसने कहा—'आप जितना दे सकते थे, दिया। इन्सान ने भी आपसे प्राप्त किया।'

पण्डित सुदर्शन की दृष्टि बाहर की ओर उठी। धीरे-धीरे प्रकाश फैल रहा था। उन्होंने कहा—'मैं सदा अनुभव करता हूँ कि तुम्हारी माँ मुझसे दूर नहीं हुई। वह छाया के समान मेरे साथ रहती है, जैसे मर कर भी मेरा पथ-प्रदर्शन करती है। मुझे सहारा देती है।'

कमला ने कहा—'पिताजी, मैं आपकी अपराधिनी हूँ। अपने लिए आपको चिन्तित बनाती हूँ।'

सुदर्शन जी बोले—'बेटा, यह मेरा ही काम है, तुम्हारी माँ होती तो उसे भी इसी प्रकार बनना पड़ता। वह तुझे छाती से लगाती। अपनी बेटी का मर्म समझती। वह नारी थी। पर मैं आदमी हूँ न, बहुत कुछ अनर्गल और अशुभ भी मान बैठता हूँ। सचमुच, मैं परिस्थिति से दूर रहता हूँ।'

कमला ने आलोड़ित बनकर अपना मुँह पण्डित सुदर्शन के कन्धे पर रख दिया और कहा—'पिताजी, मेरे पास कुछ नहीं है—सच, मुझे कुछ कहना भी नहीं। कुछ होगा, तो आपसे नहीं छिपाऊँगी। ऐसा अशुभ कर्म नहीं करूँगी।'

सुदर्शन जी ने उसके मुँह पर अपना दुर्बल हाथ रखा और बालों को थपथपाते हुए कहा—'पगली, ऐसा क्यों सोचती है। हाँ, बोल तो, क्या यदुनाथ तुझसे विवाह करना चाहता है ? ऐसा कहता है ?'

कमला ने कहा—'हाँ, पिताजी, उन्होंने कहा था, कल भी यही कहा।'

सुदर्शन जी बात सुनकर भी, कमला के मुँह पर अपना हाथ फेरते रहे। निश्चय ही, उनके मन में यदुनाथ की बात डोल रही थी। वह सहज ही इस बात को समझ रहे थे कि यदुनाथ भावना की दरिया में बहा जा रहा है। उसी समय उन्होंने कहा—'बेटी, मैं भी ऐसी सम्भावना करता था। अपने मन में कई बार इस को आई-गयी कर चुका। मैं सोच नहीं पाता कि क्या निर्धारित करूँ। वैसे समझता हूँ कि यदुनाथ सभी प्रकार योग्य है। उसकी शिक्षा भी ऊँची है।'

कमला ने कहा—'पिता जी, यह तो सत्य है कि यह सम्बन्ध समानता पर आधारित नहीं, भावना पर आश्रित है। आप निर्णय करें।'

सुदर्शन जी बोले—'बेटी, मेरी कठिनाई है कि मैं तुम्हारा पिता हूँ, सभी की तरह मैं भी आकांक्षित हूँ कि तुम सुखी रहो, सम्पन्न घर में जाओ।'

कमला ने अपना मत नहीं दिया। उसने अपना मुँह बाहर की ओर उठा दिया। उसी अवस्था में उसने कहा—'पिता जी, इस विवाह की बात को अभी छोड़ दिया जाय। अभी आपको मेरी आवश्यकता है।'

पण्डित सुदर्शन कड़ुवे भाव से मुसकरा दिए—'यह आवश्यकता तो सदा बनी रहेगी। तुम अपने पिता का कब तक ध्यान रखोगी। तुम्हारा पिता तो जीवन के दरिया में पड़ा है। बहा जा रहा है।'

कमला ने कहा—'पिता जी, आपकी शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं। आये दिन की समस्याएँ आपके मन को कीलती हैं। देखती हूँ कि यह काया जर्जर पड़ती जा रही है।'

सुदर्शन जी मुसकराये—'बेटी, अब मोटा नहीं बनूँगा। तुम तो मेरी काया को जर्जर बताती हो और कुछ लोग मुझे पागल भी कहते हैं। इस सुदर्शन को मूर्ख भी समझते हैं।'

कमला ने कहा—'लोग दूसरों के लिए अपनी धारणा तुरन्त बना लेते हैं। वे कल्पना पर आधारित होते हैं। दूसरे को मूर्ख और अपने को बुद्धिमान मानते हैं।'

पण्डित जी के माथे में बल पड़े थे। आँखें चढ़ी थीं। वह गम्भीर स्वर में बोले—'बेटी, लोग भी ठीक कहते हैं। सचमुच ही मैं पागल हूँ। तभी तो जर्जर और दीन हूँ। यदि मैं संग्रह करने की इच्छा पाता, तो आज मेरे पास भी रुपया होता। पर मैंने तो निर्वाह करना ही पसन्द किया। इस जीवन के लिए इतना ही पर्याप्त समझा।'

कमला ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'आपकी यही विशेषता है। गौरव की बात है।' वह बोली—'पिता जी, अधिक संग्रह और अधिक उपार्जन की प्रवृत्ति मानव को ऊपर से सजाती है और अन्दर से खोखला करती है। इन्सान को पत्थर बना देती है। धार्मिक और सामाजिक मनुष्य अधार्मिक बनता है। क्रूर और मदान्ध हो जाता है। वह अपना स्वार्थ देखता है। समाज का व्यक्ति चोर और डाकू बनता है।'

सुदर्शन जी बोले—'बेटी, परन्तु दुनिया यही मानती है। देख तो इस धरती पर कितने सन्त और महात्मा पैदा हुए, उनके प्रवचन हुए, पर क्या किसी ने उन पर ध्यान दिया। इस काजर की कोठरी में आकर कोई भी नहीं बचा। इस संसार का यही स्वरूप है। महत्वाकांक्षी बनना ही इन्सान की स्वाभाविक गति है। ऊँचे वर्ग की बात तो क्या कहूँ निम्न वर्ग यही मानता है।'

साँस भरकर कमला बोली—'गन्दे पानी का पतनाला ऊपर से

गिरता है। जो ऊपर किया जाता है, नीचे भी वही होता है। इस धरती के इन्सान का स्वार्थ नहीं मरेगा।'

प्रातः की अरुणिमा पूर्णरूप से निखर आई थी। सड़क के पेड़ों की चिड़ियाँ चहकने लगी थीं। कारखानों के भोंपू बज रहे थे। उनकी चिमनियों से निकलते धुएँ आसमान के नीचे फैलते जा रहे थे। हवा में जहर भर रहा था। उसी समय पण्डित सुदर्शन ने कहा—'बिटिया, तुम अपने घर जाओ, यही मेरी एकान्त निष्ठा है। मुझे तुम्हारी चिन्ता है। रजनीश को जो कुछ बनना है, बनेगा। वह अपने भाग्य के साथ चलेगा। इस संसार में बहुत से घर हैं, तुम उनमें से एक चुन लो। यही नारी की परिणति है। यदि पसन्द हो, तो यदुनाथ के जीवन से सम्बन्ध जोड़ लो। मैं इस नगर के कोलाहल से दूर जाना चाहता हूँ। मैंने यह अनुभव कर लिया है कि जब तक जातिवाद, सम्प्रदायवाद और वर्गवाद इस मानुष्य समाज में रहेंगे, तब तक इन्सास पीड़ित रहेगा। पूँजी सब से बड़ा बल है, इसे पाने के लिए इंसान मरेगा और दूसरे को मारता रहेगा।'

कमला ने कहा—'मेरे मन में प्रायः बात उठती है कि सभी वर्गों में धर्म का नारा लगता है, मन्दि, मस्जिद और गिरजों का निर्माण किया जाता है, लेकिन व्यवहार में कोई उन धर्म-सूत्रों को नहीं मानता।'

पण्डित सुदर्शन ने झुँझलाकर कहा—'यही होगा। इन्सान सदा ही दो रूपों में दिखाई देगा। मुँह में राम और बगल में छुरी लेने वाला आदमी क्या सहज में समझा जा सकेगा।'

कमला ने कहा—'अजीब बात है कि इन्सान का शोषण करके धन एकत्र करने वाला धनपति भगवान की प्रतिमा स्थापित करता है, ऊँचे-ऊँचे मन्दिर बनवाता है। यह सामने जो मन्दिर है, सुना आपने, इसके निर्माता ने धन के लालच में अपने दिवंगत भाई के पुत्र को कत्ल करवा

दिया था।'

पण्डित जी ने जैसे तड़पकर कहा—'मुझे पता है। वह व्यक्ति आज भी इस नगर का सबसे बड़ा धनपति बना हुआ है उसकी प्रतिष्ठा है। बड़े-बड़े पण्डित और समाज के नेता उसके द्वार पर चक्कर लगाते हैं। वह 'खूनी' के नाम से प्रसिद्ध है।'

कमला ने कहा—'राम ! राम ! कितना बेहया और बेशर्म बन गया है, यह इन्सान ! घर में पाप करता है और मुँह से राम कहके समाज में सिरमौर बनता है। बताइये, कहीं भगवान हैं। वह यह सब देखता है। लोग कर्म की दुहाई देते हैं, पर मुझे तो यह भी भूलभुलैयाँ का तमाशा लगता है।

पण्डित जी ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर तीखे भाव में कहा—'सभी ढोंग है। इन्सान को ठगने की प्रणाली है।'

कमला ने कहा—'गरीब भगवान को मानता है, पर धनिक नहीं।'

सुदर्शन जी कड़ुवे भाव से मुसकरा दिये—'वह उपहास करता है। इन्सानियत की लाश पर सोने-चांदी की दीवारें चिनता है।'

कमला बोली—'पिताजी, यह हमारे पूर्वजों का पाप है, हमें भोगना पड़ रहा है। इस धरती को नरक बनाया गया है।' उसने कहा—'एक दिन यदुनाथ कहते थे कि मशीन के साथ आदमी भी मशीन बन गया है। वे अपने कारखानों को बन्द कर देने को बात कहते थे।'

उसी समय सुदर्शन जी का मुँह आसमान की ओर उठा था। उसी ओर देखते हुए वह बोले—'यह नहीं होगा। यंत्र-युग ही आज के संसार का नेतृत्व करेगा। संसार अभी और सजेगा। भौतिक पदार्थों के ढेर लगेंगे। आदमी लालायित बनेगा। संघर्षशील होगा। आदमी अधार्मिक बनकर पैसे के पीछे तीव्रता से भागेगा। देखती हो न, आज का आदमी कितना तेज है। मोटर पर भागता है। हवाई जहाज में उड़ता है। एक दिन का काम एक घण्टे में करता है। इस छोटे से जीव नमें

आदमी बहुत कुछ करना चाहता है। इस जीवन को पूर्णरूप से सजाना चाहता है। इसीलिए भगवान और भावना को कार्यरूप में नहीं लिया जाता।'

कमला ने साँस भरी—'समस्या जटिल है। विषम है।'

सुदर्शन जी ने दूर आकाश में उड़ते हुए कुछ सफेद पक्षियों की ओर देखते हुए कहा—'बेटी, तुम पुरखों को दोष मत दो। उन्होंने हमें जीवन दिया, भावना प्रदान की। परन्तु आज का मनुष्य बुद्धि का अधिक उपयोग भौतिक पदार्थों के लिए करता है। इसी हेतु संघर्ष है, कलह है। यही स्थिति रही तो महानाश निकट है। जिस विज्ञान ने अपना प्रदर्शन किया है, वह इसी परिणाम को लेकर अवतरित हुआ है। उसका उपयोग यों हो, यह इन्सान का दुर्भाग्य है। मनुष्य संदिग्ध है, भयभीत है। विश्वास उठ गया। पाप और व्यभिचार सर्वत्र फैला है।'

कमला ने कहा—'इंसान की इमारत के कंगूरे गिर रहे हैं। पतन के द्वार खुले हैं।'

सुदर्शन जी खड़े हो गए और बोले—'हाँ, बेटी!' उन्होंने कहा—'आज रात भर तुमने जागने में बिता दी। जाओ, कुछ आराम कर लो।'

कमला बोली—'अब तो सवेरा हो गया। अंगीठी जलाती हूँ। रजनीश को भी उठाती हूँ। वह स्कूल जायेगा।'

उसी समय पिता-पुत्री यह देखकर चकित हुए कि राय जानकीदास की गाड़ी द्वार पर आ रुकी। वे उससे उतरे। पण्डित जी ने आगे बढ़ कर कहा—'आप राय साहब—'

राय जानकीदास ने कहा—'हाँ, पण्डित जी! मुझे इसी समय आना था। यह शुभ समय था। मुझे आपसे कुछ माँगना था।' राय जानकीदास कुर्सी पर बैठ गये और बोले—'पण्डित जी, इन्कार न करना।' उन्होंने पास खड़ी कमला को देखकर कहा—'मैं इस बिटिया

को माँगने आया हूँ । बोलिये, आप देंगे न ?'

सुदर्शन जी बात सुनकर एकाएक स्तब्ध रह गये । वह बोल नहीं सके । उन्होंने राय जानकीदास की ओर से मुँह फेर कर कमला की ओर देखा ।

राय जानकीदास ने कहा—'पण्डित जी, मैं जानता हूँ कि आप जाति-प्रथा को स्वीकार नहीं करते । और मैं तो हूँ ही. रूढ़िवादी, मैं उसे मानता हूँ । परन्तु मैं सन्तान के समक्ष हार गया । मुझे उसकी माँ ने भेजा है । मैं बूढ़ा हो गया । मौत के द्वार पर पहुँच गया ।' यह कहते हुये उन्होंने अपने कोट की जेब से एक हार का डिब्बा निकाला और कमला की ओर देखकर कहा—'यहाँ आओ बेटी, मैं अपनी रीत पूरी कर दूँ ।' ये चार चूड़ियाँ तुम्हारे हाथ में डाल दूँ । ये हार भी…'

उसी समय पण्डित सुदर्शन बोले—'राय साहब, यह कमला आपके उपयुक्त नहीं । यह गरीब ब्राह्मण की बेटी है । असमानता की प्रतीक ।'

राय जानकीदास ने कहा—'पण्डित जी, यह मेरे समझने की बात है । जो रीत मैं करने चला हूँ, यह यदु की माँ को करनी थी । पर उसे रात से बुखार है । बेचैन है । मैंने इस जीवन में समझ लिया है कि धन पाकर ही आदमी सुख नहीं पाता । बड़ा आदमी नहीं बनता । उस परिभाषा में आप बड़े आदमी हैं । आप जब पैसे वालों को उनके मुँह पर चोर और डाकू कह सकते हैं, तो सचमुच, आप निर्भीक हैं, स्पष्ट हैं । मैं जानता हूँ कि मैं सदा ही आपके प्रति विद्वेषी रहा, लड़ता रहा, परन्तु विश्वास कीजिये, आपका आदर भी करता रहा, मैं आपके पास सत्य देखता रहा । आपकी कन्या को पाकर मैं भी अपने घर में प्रकाश करना चाहता हूँ ।' उन्होंने फिर कमला से कहा—'मेरे पास आओ बेटी । मुझे अभी यदु की माँ को जाकर बता देना है कि पण्डित जी ने मुझे भीख दे दी, मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया ।'

पण्डित जी ने कहा—'आओ बेटी ! राय साहब के पैर छुओ ।'

कमला आगे बढ़ आई। राय जानकीदास ने उसके गले में हार डाल दिया, हाथों में चूड़ियाँ। तभी उन्होंने उल्लसित बनकर कहा—'मैं अपनी बहू को ऐसी सजधज के साथ उस घर में ले जाऊँगा कि यह नगर देखता रह जायेगा। वह बोले—'पण्डित जी, आप इस जोड़ी को आशीष दें कि फले-फूले !' यह कहते हुए वह उठे और मोटर की ओर बढ़ गये।

लेकिन पण्डित सुदर्शन थे कि जो मौन बने खड़े थे। बरबस, उनकी आँखों में ममत्व से भरे आँसू छलछला आये थे। वे उन्होंने कमला से छिपा लिये थे।

चौबीस

आशा के प्रतिकूल, एकाएक ही, अभिनय के समान रायजानकीदास जिस प्रकार अपनी भावना का प्रदर्शन करके लौट चले, वह देर तक पण्डित सुदर्शन और कमला को कौतुक के अतिरिक्त और कुछ नहीं जान पड़ा। मानो वह एक स्वप्न था। राय जानकीदास के जाने के बाद पण्डित जी और कमला मौन बने रहे। एक-दूसरे से बोल भी नहीं पाए। उसी समय शंकर मिश्र जो कमरे के द्वार पर खड़ा होकर वह सब देख चुका था, आगे आकर बोला—'दादा, भगवान जो कुछ करता है, अच्छा, करता है। उसका विधान अटल है। बहिन कमला को ऐसा ही घर मिलना था—ऐसा ही वर !

पण्डित सुदर्शन ने बात सुनी और साँस भर कर शंकर मिश्र की ओर देखा। उन्होंने अपनी बात को पसन्द किया, ऐसा आभास भी उनके चेहरे पर नहीं आया। मानो जो कुछ भी उस प्रभात में हुआ, राय जानकीदास द्वारा सम्पादित हुआ, वह उन्हें रहस्य से खाली नहीं दिखाई दिया। जैसे उस धूर्त्त धनिक के द्वारा कोई बड़ा षड्यन्त्र रचने का सूत्रपात किया जा रहा था।

किन्तु शंकर मिश्र ने अपनी बात लेकर ही फिर कहा—कमला बहिन का भाग्य जाग गया। दादा, तुम्हारा भी।

इतना सुनना था कि पण्डित सुदर्शन ने रुक्ष बन कर भारी आवाज में कहा—'रे, शंकर ! मुझे अब भी लगता है कि राय जानकीदास किसी बड़े हथौड़े से चोट खाकर तिलमिला गया है। यह भी हो सकता

है कि वह मेरा पूर्णरूप से पतन कर देना चाहता हो। उसे कोई नया उपाय सूझा हो।' वह बोले—'मैं इसे भाग्य या गौरव की बात नहीं मानता। यदुनाथ निर्धन होता और कमला उसे पसन्द करती, तो मुझे नयी भावना का अध्ययन मिलता। पर अब क्या, वही हुआ, जो होता आया है। आज नहीं तो कल लोग मुझे धिक्कारेंगे और कहेंगे कि पण्डित सुदर्शन ने जीवन भर गीत तो गरीबों के गाये, पर जब लड़की के विवाह की बात सामने आयी, तो बड़े आदमी का पल्ला पकड़ लिया। वे लोग क्या इतना कहते भी चूकेंगे कि पण्डित सुदर्शन गाय की खाल ओढ़े हुए भेड़िया निकला।'

शंकर मिश्र ने कहा—'दादा, लोग तो कहते हैं। मूर्ख को देखकर हँसते हैं। वे दूसरे के आँसुओं का भी तमाशा बनाते हैं।

उस समय कमला का सिर झुका था। पिता की बात का एक-एक शब्द उसके मानस में उतर रहा था।

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'पैसे का भूखा मैं भी रहा, मेरी बेटी भी। आखिर मैं भी उसी हड्डी को चूसने के लिए उद्यत हुआ कि जिसे जन्म भर त्याज्य मानता रहा।' यह कहते हुए पण्डित सुदर्शन ने अपने सिर के बालों में उँगलियाँ दे लीं। उनके मन का लक्ष्य और कसैला भाव मुँह पर आ गया। सूखे हुए होठ हिलने लगे। उस अवस्था में ही वह एक टक बाहर की ओर देखने लगे।

किन्तु उस अवस्था में ही, कमला अपने स्थान से आगे बढ़ी और उन चूड़ियों तथा हार को पिता के समक्ष रखकर बोली—आप इन्हें वापिस कर दीजिये। भरोसा रखिये, मैं सदा की भाँति आगे भी आपके आदेश का पालन करूँगी।'

लेकिन सुदर्शन जी नहीं बोले! उन्होंने उस रत्नों से जड़े हार की ओर भी नहीं देखा। वह अपने मन से उस अन्तर तथा खिन्न अवस्था में ही जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँच गये।

यह देख शंकर मिश्र की इच्छा आई कि कुछ कहे, सुदर्शन जी को शांत करने की बात कहे। लेकिन उस समय वह उन्हें जिस परिस्थिति में देख रहा था, वह ऐसी कदापि नहीं थी कि जिसमें उसका हस्तक्षेप स्वीकार होता। वह बाप-बेटी की बात थी, निजी बात। अतएव, वह मौन बना रहा। उस कमरे से लौट पड़ा। उसने दोनों को अकेला छोड़ दिया।

किन्तु पिता को मौन और गम्भीर मुद्रा में देख, कमला ने कहा—'पिता जी, आप बोल नहीं रहे हैं। मुझे अपना निर्णय दीजिये। अपनी पुत्री के जीवन से न खेलिए। जानते तो हैं आप कि नारी की स्थिति दृढ़ नहीं होती। कच्चे धागे के समान इसकी आबरू होती है। जिस अनुराग और प्रेम की बात आप लेते हैं, उसे प्रलाप के प्रचार की संज्ञा देते हैं, मैं कहती हूँ यदि सही हो, तो हो; मुझे उसके प्रति कोई ममता नहीं। मैं आजन्म अविवाहित भी रह लूँगी। अपने पैरों पर चलकर जिन्दगी काट लूँगी।'

किन्तु पण्डित सुदर्शन ने कमला की बात पर अपना मत नहीं दिया। उन्होंने कपड़े पहन लिये। हाथ में बेंत ले ली और बाहर जाने को प्रस्तुत: हो गये। जब वे बिना कुछ कहे जाने लगे, तो तभी, एकाएक क्षोभपूर्ण बनकर कमला ने कहा—'पिता जी, आप कुछ न कह जायेंगे। याद रखिये, यदुनाथ आये तो उनसे कह दूँगी कि वे इस घर न आयें। मैं उनके पिता का हार लौटा दूँगी।'

इतना सुन, सुदर्शन जी रुक गए। वह कमला को देखकर बोले—'बेटी, मेरे मस्तिष्क की अवस्था विपरीत है, इस समय अनुकूल नहीं। तुम जो कुछ करो, सोचकर करो। बेटी, तुम स्वतंत्र हो।

कमला चीख पड़ी—'आप यह क्या कहते हैं, पिता जी!'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'इस समय मैं यही कह सकता हूँ। मुझे सन्देह है कि यदि मेरे घर में सुशिक्षित युवा लड़की न होती, तो कदाचित यह सुधारवादी यदुनाथ भी इस घर में न आता। हो सकता है,

मेरा सहायक न बनता। वह अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध कार्य न करता। वह यदुनाथ—'

कमला और अधिक खिन्न बनकर चिल्लायी—'आज आपको क्या हो गया है, पिताजी ! ऐसे तो आप इस कमला को मार देंगे।'

सुदर्शन जी कमला के पास लौट आए और बोले—'मेरे हाथों में अब ऐसी शक्ति नहीं कि अपनी बेटी का गला घोंट दूँ। परन्तु तुमसे यह कहे देता हूँ कि आज वह राय जानकीदास मेरे मुँह पर तमाचा मार गया है। अपने जीवन में उसने दूसरों को घायल किया, खून किया, तो आज हम दोनों पिता-पुत्री को भी एक ही तीर से चोट पहुँचा गया है। आखिर जीत उसकी हुई, मैं हार गया। तुम न होतीं, तो उसके मुँह पर थूक देता। फटकार देता। यह कहते हुए उन्होंने बाहर की ओर देखा और कहा—'राय जानकीदास समझता है कि सोना-चाँदी ही सब कुछ है, आदमी पत्थर है, और मैंने उससे सदा यही कहा कि सोना पत्थर है, आदमी सोना है। आदमी की कीमत है और उसी पत्थर का हार वह तुम्हारे गले में डाल गया। यह चमचमाता हार ! वह झूठी चमक दे गया और असली का सौदा कर गया। इस सुदर्शन का सम्मान छीनने में सफल हो गया। इसकी बेटी की लाज लेने में सफल बन गया।'

कमला ने कहा—'यह सब तो आपकी इच्छा पर हुआ। चाहें, तो आप अब भी टाल दें। इन्कार कर दें।'

सुदर्शन जी के होठों पर जैसे कसैली मुस्कान आयी। बड़ी तीव्र। उसी अवस्था में उन्होंने कहा—'जब तीर तरकस से बाहर हो गया, तो वह नहीं लौटता। तुमने स्वीकार कर लिया। मैंने भी तुम्हारी इच्छा का समर्थन कर दिया। कह सकती हो कि मैं बेटी की इच्छा के समक्ष झुक गया।' वह बोले—'कमला बेटी, जो नाटक आज खेला गया, मैं देर से इसकी कल्पना करता था, मैं समझता था कि साँप का बच्चा भी साँप बनेगा। सो, यदुनाथ वही बना। उसने तुम्हें इस

लिया। इस सुदर्शन को भी नि:शक्त कर दिया। और मैं इतना मूर्ख रहा कि एक दिन भी यह न समझ पाया कि बेटी की इच्छा का भी कोई महत्व है। मैं पिता था, तो मुझे यह समझना था। मैं सोचता था कि मेरी बिटिया अन्य लड़कियों के समान प्रेम का, समर्पण का अभिनय न कर सकेगी। इस थोथी और हीन यौवन की परम्परा का अनुसरण न करेगी। पर तुमने भी नहीं किया। तुम भी लैला बनीं······ वह मूर्ख यदुनाथ मजनूँ···मैं कहता हूँ तुम दोनों ने बहिन-भाई का अभिनय क्यों नहीं किया। आखिर मोरी में पड़े कीड़े के समान तुमने भी अपना जीवन बिताना पसन्द किया और तुमने इस बात का किंचित् अनुभव नहीं किया कि यह जीवन भी एक सौदा है, एक अनुभूति है कि जिसका मोल समझ-बूझकर किया जाता है। अनुराग और वासना जिन्दगी का वह सैलाब है कि जिसमें बहकर कोई जीवित नहीं रहता। अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता। राम-राम! इन्द्रियों की वासना का पेट भरना लोग प्रेम के नाम से पुकारते हैं। भला कितना बड़ा छल है, यह। तुमने तो शास्त्री किया है। इतना पढ़ा है। वह सब भुला दिया। यही तो स्थल है कि जहाँ मानस के हृदय में आँधी उठती है और उसे उड़ाकर ले जाती है। उसी में इन्सान का परम तत्व लुप्त होता है। पण्डित रुक गये। वह बेंत को कमरे के फर्श पर मारने लगे और बोले—'मैं अपनी पुत्री से यह आशा नहीं करता कि वह मुझसे सलाह ले। अब तुम योग्य हो। अपना भला-बुरा समझ सकती हो। इस दुर्बल और बूढ़े बाप पर इतना बोझ डालकर क्या तुम न्याय करती हो। अब बैठो। साँप निकल गया, लकीर मत पीटो।' यह कहते हुए पण्डित सुदर्शन कमरे से बाहर हो गये। वह चले गये।

पिता के जाते ही, कमला कटी डाल की तरह चारपाई पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी। इसी बीच में शंकर मिश्र बाजार चला गया था। रजनीश उठ बैठा था। जब कमला चारपाई पर पड़ी रो रही थी, तो तभी, रजनीश उठकर उसके पास आया और पास खड़ा

होकर बोला—'जीजी—'

किन्तु जीजी नहीं बोली, वह रोती रही।

रजनीश ने कहा—'कोई बात तो बताओ जीजी! तुम क्यों रोना ओ।'

कमला ने अपना मुँह उठाया और उन वेदना से भरी आँखों को उसके मुँह पर पसार कर कहा—'अरे, देख तो, पिता जी कहाँ गए हैं। उन्हें लौटा ला।'

रजनीश ने कहा—'अब वे नहीं मिलेंगे।'

कमला बोली—'जा, यदुनाथ के घर न गये हों। देख कर आ।'

रजनीश ने कुरता पहन लिया। जूते पैर में डालकर वह बाहर निकल गया। उसी समय कमरे में अकेली बैठी हुई कमला ने अपना मुँह हाथ की हथेली पर रखे हुए, बरबस ही अपने-आप कहा—'अजीब बात है! मेरा भी जाने कैसा भाग्य है! जरूर, मैंने पिता जी को आज तक नहीं समझा पाया। कौन कह सकता है कि इनके मन में कब क्या आया, क्या गया। इसका कोई मूल-किनारा नहीं। इस दरिया की गह-राई का मुझे पता नहीं चला।

उसी समय शंकर मिश्र बाहर से लौट आया। उसने कमला के पास आकर पूछा—'दादा कहीं दूर गए हैं क्या! वे ताँगे में गए हैं।'

कमला ने वेदना से पूरित आँखें शंकर मिश्र की ओर उठा दीं। जैसे अपने अन्तर की बात भी उन आँखों में उडेल दी।

किन्तु शंकर मिश्र बोला—'कमला बहिन, मैं आज गाँव चला जाऊँगा। अब इस शहर को छोड़ दूँगा।'

कमला ने साँस भर कर कह दिया—'तुम्हारी मर्जी!'

शंकर मिश्र बोला—'आज दादा बेचैन थे। मैंने दूर से ही देखा कि वे अपने मन में कुछ दबाए लम्बे-लम्बे डग रख रहे थे।'

कमला ने आतुर बनकर कहा—'उन्हें लौटा लाते। कह देते, कमला बुलाती है।'

शंकर मिश्र ने अनायास मुसकराया—'वह तुम्हें छोड़कर तो गये थे। ऐसे क्या जाते ! न, इतना सुनकर भी वह न लौट पाते।'

कमला ने कहा—'अरे, तुम मेरे पिता का दिल नहीं समझते वे कठोर भी हैं और मोम भी हैं।' यह कहते हुए कमला के मुँह पर बरबस ही आत्म-गौरव का भाव झलक आया। वह बोली—'पिता जी मुझे कितना प्यार करते हैं, इसे मैं जानती हूँ। मैं समझती हूँ कि वे मेरे लिए कितना बड़ा त्याग करने चले हैं। इस सम्बन्ध को पिता जी क्या पसन्द करते हैं !'

शंकर मिश्र ने कहा—'तो तुम क्यों अपने पिता को परेशान करती हो ! क्यों इस शहर में बसी हो। गाँव में चलो। रूखा-सूखा खाओ और शांति से रहो।'

कमला ने साँस भरी और कहा—'शांति वहाँ भी नहीं है। वहाँ भी नर्क है। कलह और द्वेष है। तुम भूल गये अपनी बातों को ! कल का हैवान आज देवता बने, तो क्या उसे भूला जा सकता है। ऐसे ही लोग उस गाँव में हैं।'

शंकर मिश्र ने कहा—'अब मुझे शर्मिन्दा न करो।'

उसी समय रजनीश लौट आया। उसने बता दिया कि पिता जी वहाँ नहीं हैं, कहीं दूसरी जगह गये हैं।

कमला ने पूछा—'किसी ने कुछ कहा था ? पूछा था ?'

रजनीश बोला—'यदु बाबू थे। वे अपने कमरे में बैठे हुए अखबार पढ़ रहे थे। उनकी माँ पास बैठी थी।'

'और उनके पिता जी ?'

'वे उस कमरे में नहीं थे।'

अच्छा, तू स्कूल जा। आलमारी में पैसे रखे हैं, कुछ ले जा। खा लेना। आज खाना देर में बनेगा।'

रजनीश ने कहा—'मेरे पास कापी नहीं है। कलम भी नहीं।'

कमला बोली—'तू रोज पैसे लेता है। बहाने करता है। अमीरों

के बच्चों में बैठकर तू भी उन जैसा बनना चाहता है। अरे, तू क्यों अपना रास्ता छोड़ता है।'

शंकर मिश्र हँसा—'हमारे दादा ने कभी अंग्रेजी बाल नहीं कट-वाये, पर यह रजनीश जाने कैसे टेढ़े-तिरछे बाल कटाता है। माँग भी टेढ़ी काढ़ता है।'

बात सुनते ही, रजनीश ने शंकर मिश्र की ओर घूरा। उसने तुरन्त ही कहा—'अंगूर खट्टे हैं न, तुम गाँव में रहते हो। शहर में रहो, तो जानो!'

कमला ने कहा—'चुप, गुस्ताख! बड़े से जबान लड़ाता है।'

शंकर मिश्र ने कहा—'इन शहरों में यही तो सिखाया जाता है। यहाँ का लड़का अपने बाप के भी कान काटता है।'

किन्तु उस वार्ता में कमला को कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसके मन में तो और ही बात उठ रही थी। उसके समक्ष एक ओर कुआँ था, तो दूसरी ओर खाई। वह पिता की बात स्वीकार करती है, तो यदुनाथ को ठुकराती है और यदि यदुनाथ को अपना पति स्वीकार करती है, तो वह सदा के लिए अपने पिता की दृष्टि से गिरती है। अतएव, वह उस समस्यात्मक पहेली को नहीं सुलझा पा रही थी। यद्यपि, जिस प्रेम अनुभूति का विश्लेषण पिता ने अपने शब्दों द्वारा व्यक्त किया, कमला उससे सहमत नहीं थी, फिर भी, वह उस कटु आलोचना का निरादर नहीं कर सकती थी। किन्तु कमला को जो सबसे अधिक खटकने वाली बात लगती वह यह कि जिस बात को पिता ने स्वयं स्वीकार किया, अब उसी के प्रति उनमें भर्त्सना और ग्लानि की भावना थी। ऐसी स्थिति में कमला क्या कहे? वह क्या करे! कैसे कहे कि उसके मन के जहाज का लँगर भी उठ गया है। वह जहाज गहरे समुद्र की लहरों से खेलने लगा है। उसे रोकना अब कमला की शक्ति से बाहर है। समुद्र अगाध है। लंगर का टिकना असम्भव है।

ऐसे तो जहाज भी बहेगा,···लंगर भी अस्तित्वहीन रहेगा···यदुनाथ को भूलना उस कमला के लिए असह्य नहीं रहेगा······

किन्तु वह कमला पिता की इच्छा का अनादर नहीं कर सकती थी। यह उसकी स्थिर भावना थी। वह जानती थी कि यदि पिता के सम्मान को ठेस लगी तो वह जीवित नहीं रहेगी। पिता की लाश पर वह भी अपने सुहाग का महल नहीं खड़ा कर सकेगी। उसे यह भी पता था कि पिता ने जो बात उससे कही, वह किसी से नहीं कह सकेंगे। यदुनाथ से भी नहीं।

तभी, फिर कमला ने एकाएक तड़पकर कहा—'मैं पिता की इच्छा का खून नहीं करूँगी। उसे सम्मान दूँगी। यदु बाबू आये, तो मैं उससे स्पष्ट कर दूँगी।'

संयोग की बात कि उसी समय मुसकराता हुआ यदुनाथ कमरे के द्वार पर आ खड़ा हुआ। कमला ने अपने मन की बात रोक दी और उसकी ओर देखा। यदुनाथ स्नान करके और नये कपड़े बदलकर आया था। वह भला लग रहा था। खद्दर का कुरता और ढीला पाजामा उसके गोरे बदन पर फब रहा था। यदुनाथ को देखते ही, एकाएक कमला के मन में प्रश्न उठा कि क्या इस यदुनाथ के पास भी वासना है। इसके मन में भी नारी को भोगने की इच्छा है! कुत्ता जिस प्रकार हड्डी को चूसता है, तो यह धनिक कुमार भी···हाँ, जब इसके पास पैसा है, तो नारी को भोगने की लालसा का होना क्या आश्चर्य की बात है।

लेकिन यदुनाथ ने पास आकर कहा—'दिखता है, तुम अभी सोकर उठी हो। अभी बिस्तर पड़े हैं। पण्डित जी कहाँ हैं?'

कमला ने कह दिया—'कहीं गये हैं।'

यदुनाथ बोला—'रजनीश गया था। यह खड़ा-खड़ा चला आया। मुझे अभी-अभी माँ ने बताया कि पिता जी भी आए थे। वह कुछ विवाह के निमित्त तुम्हें उपहार दे गये।

इतना सुनते ही, बरबस ही, कमला की आँखें भर आयीं। जब यदुनाथ ने यह देखा, तो वह बोला—सुना तो है कि जब लड़की ससुराल जाती है, माँ-बाप का घर छोड़ती है, तो वह रोती है। शायद इसलिए कि वह एक दुनिया को छोड़ दूसरी में प्रवेश करती है...... क्यों, इसीलिए हैं, तुम्हारी आँखों में आँसू!'

कमला ने कहा—'वह लड़की किसलिए रोती है, इसे आप नहीं जानते। उस पीड़ा का मर्म नहीं समझ सकते।'

यदुनाथ ने बात सुनी, तो वह हँसा नहीं, चुप रह गया।

कमला ने कहा—'मेरे आँसू इसलिए हैं कि आपके पिता जी ने आज जिस प्रकार का अभिनय किया, मेरे गरीब बाप को झुकाना पसन्द किया, क्या यह उचित था! क्या यह नाटक आपकी सलाह से खेला गया। तनिक कल्पना तो कीजिए कि अब समाज क्या कहेगा... क्या मेरे पिता को मुँह दिखाना सुगम रहेगा!'

व्यस्त बनकर, यदुनाथ बोला—'समाज और दुनियाँ की बात मैं नहीं समझता। ऐसा नहीं चाहता। तुम अपनी बात कहो। मैं तुम्हें या पण्डित जी को कष्ट देना पसन्द नहीं करूँगा। कहोगी, तो मैं अपना प्रस्ताव वापिस ले लूँगा। कभी आवश्यकता हुई, तो मैं अपने माता-पिता की इच्छा पूरी कर दूँगा।'

कमला ने हार और चूड़ियाँ आगे रख दीं और कहा—'मेरी विनय है, इन्हें माता जी को दे दीजियेगा।'

किन्तु यदुनाथ इतना भारी बना कि जैसे पत्थर हो। वह उस अवस्था में ही, बाहर नीलाकाश की ओर देखने लगा। मानो वह अपने मानस की गहराई में खो गया।

पच्चीस

उस प्रात: के समय ही, असन्तोष और मानसिक पीड़ा से भरे पण्डित सुदर्शन जब घर में शांति नहीं पा सके, तो वे निरलक्ष्य बनकर घर से दूर एक पार्क में जा बैठे थे। सचाई यह थी कि जब वह अपने घर से चले, तो वे राय जानकीदास के पास जाना चाहते थे। उससे कहना चाहते थे कि मेरी पुत्री का सम्बन्ध स्वीकार करने का अर्थ है, मेरा उपहास करना। आप कई हजार का हार उसके गले में डाल आए हैं, इतनी बोझिल बना आए हैं, मेरी कमला को। अतएव, उसे वापिस ले लीजिए।

पार्क में जाकर देखा कि उस प्रात: की बेला में छोटे-छोटे बच्चे वहाँ आकर खेल रहे थे। कुछ व्यक्ति परस्पर वार्तालाप में भगवद् भजन और देश की राजनैतिक तथा सामाजिक चर्चा में भी लगे थे। कुछ लोग स्थानीय समस्याओं पर बातें कर रहे थे। किन्तु सुदर्शन जी का ध्यान उस ओर नहीं था। उस समय उनके मन में बार-बार आ रहा था कि आज पत्नी होती, तो उन्हें सहारा मिलता। उन क्षणों में धन का अभाव भी उनके मन में खटक रहा था। उनके जीवन में यह दूसरा अवसर था कि जब उन्हें पैसे का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ा। जिस समय पत्नी मरी, तो तब भी, उनके मन में इसी प्रकार का कसैला और विशादत भाव उदित हुआ था। किन्तु या तो यह पण्डित जी के मन की हठधर्मी थी, या सिद्धान्तहीन बनना उन्हें पसन्द नहीं था कि

जिस प्रकार पत्नी के लिए कफन प्राप्त करने को उन्हें याचक बनना पसन्द नहीं आया, तो पुत्री के विवाह के लिए भी किसी के समक्ष झुकना, पैसे की माँग करना उन्हें संगत और शोभनीय नहीं लगा।

उस पार्क के चारों ओर ऊँची-ऊँची भव्य अट्टालियाँ खड़ी थीं। उन सभी में सुबह का रेडियो बज रहा था। वह मधुर स्वर पण्डित जी के कानों में भी आ रहा था। आह ! कैसा सजा हुआ और कोलाहल से पूर्ण संसार था वह ! मानो चारों ओर सजीवता ! सभी ओर शोर ! उसमें पैसे की ठुमक और छनाछन ! मानो पैसा नाच रहा है, तो उसके साथ आदमी भी नाचता है।

उसी समय वह बोले, यह पैसा भौतिक पदार्थों का आविष्कार तो करता है, परन्तु बौद्धिक और आत्मिक ज्ञान नहीं प्रदान करता। उन्होंने कहा, जब आदमी अपना बौद्धिक विकास नहीं कर पाता, तो वह इंसान नहीं बनेगा, चेतनामय नहीं। इन्सान के प्रति सदाशय और सहृदय नहीं। तब तो यह इन्सान पशु ही बना रहेगा।

अवसर की बात कि पण्डित सुदर्शन जिस बैंच पर बैठे हुए थे, उससे कुछ दूर पर ही, धूप में एक भिखारी कुछ गूदड़ों के ढेर में लिपटा पड़ा था। कदाचित् धूप पाने के लिए वह उस स्थल पर आ गया था। अपने मन की बात सुनने के साथ, सुदर्शन जी उस ओर देख रहे थे। मानो बरबस ही, उस भिखारी की अवस्था से समूचे जगत की तुलना करने लगे थे। अपने को भी उस अवस्था में पा रहे थे। उसी समय उनके मन में बात आई कि इस जगत का आदमी जिस शक्ति को प्राप्त करता है, उसका उपयोग भी करना पसन्द करता है। अपनी सुरक्षा के लिए करता है। मानो इस मनुष्य ने यही समझा है। यही किया है। यही सीखा है। वह बोले, राय जानकीदास के पास पैसा है, तो वह मेरी पुत्री पर—अपनी पुत्र-वधू पर—हजारों रुपये का जेवर चढ़ा सकता है। अपनी प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करने के लिए उसे ठाट-बाट से

अपने घर के अन्दर ले जा सकता है जो पैसा उसने उपार्जित किया है, समाज से पाया है, अपने मन की इच्छा पर व्यय करता है···मूर्ख ! उसने अपने जीवन का तो दुरुपयोग किया ही, धन का भी करता है···

किन्तु उसी समय पण्डित सुदर्शन के मन में तीव्र चीत्कार उठा। जैसे उसने स्वतः ही पण्डित जी का मन्थन करना आरम्भ कर दिया। मानो वह जो कुछ कह रहे थे, उन्हें स्वीकार हो सकता था, जग को नहीं। वह व्यवहारिक नहीं। उसमें सार नहीं, कोई प्राण नहीं। लेकिन फिर भी उस वृद्ध पण्डित सुदर्शन ने अपने हाथों की मुट्ठियाँ बाँध लीं। और उस भिखारी की ओर देखा, उस शीत से ठिठुरते हुए इंसान को लक्ष्य किया। उन्हें लगा कि हाय ! इतनी इमारतें खड़ी हैं, पर इस एक इंसान के लिए कहीं ठौर नहीं। इसका कहीं अधिकार नहीं। मानो यह इन्सान नहीं। यह भूठन है। इन्सान की पीड़ा है···उसका पाप है ! तब उसके मन में आया, क्यों नहीं इन महलों में आग लग जाती··· उनमें रहने वाले चट-चट नहीं चटख जाते। जब इस एक आदमी को कहीं पनाह नहीं, तो इस जग के आदमी को भी इस धरती पर रहने का कोई अधिकार नहीं।

उस अवस्था में पण्डित जी मूक बन गए। कठोर हो गए। वह बोले—'सभी के समान राय जानकीदास भी दिखावा करता है। हाय ! यह कैसा अनाचार है कि जिसके पास पैसा है वह अपनी इच्छाएँ पूरी करता है, समाज का सिरमौर बनता है और इंसान के सिर पर, उसकी लाश पर पैर रखता हुआ अपने रंगमहल की ओर जाता है···यह इन्सान···धर्म और भावना का पूजक इन्सान······

उसी समय एक व्यक्ति उस ओर आया और पण्डित जी को देख, नमस्ते करके खड़ा हो गया।

एकाएक पण्डित जी ने कहा—'नमस्ते भाई ! आओ बैठो।'

वह व्यक्ति बैंच पर बैठ गया। उसने कहा—'पण्डित जी देखते हैं न आप, उस सामने बैठे भिखारी को, यह रात भर सड़क के किनारे

पड़ा रहता है। कल की ही बात है कि इस पार्क के पार एक मकान में शादी थी। दावत आलीशान थी। उस समय मैंने देखा कि यह भिखारी भूठन के ढेर में से भूठे टुकड़े, चुन रहा था। परन्तु इसे पहले भंगी ने फटकार दिया और फिर मैं यह देखकर भी चकित रह गया कि कुछ कुत्ते इस बेचारे से चिपट गए। इसने जितने टुकड़े, चुने, वे सब कुत्तों ने छीन लिये……'

पण्डित जी ने बरबस साँस भरी और कहा—'हाँ, भाई! इस आदमी के समान कुत्ते भी भूखे होंगे। वे भी अपने पेट के लिए कुछ खोजते होंगे।'

वह व्यक्ति बोला—'पण्डित जी, ऐसे तो यह देश जीवित नहीं रहेगा। क्या यह इन्सान कुत्ते का जीवन बितायेगा।'

पण्डित जी ने उस व्यक्ति की ओर देखा। जैसे उसे घूरा। तदन्तर ही, उन्होंने कहा—'तो क्या कुत्ता भूखा रहेगा''इन्सान श्रेष्ठ रहेगा ?'

वह व्यक्ति चकित भाव में पण्डित जी की ओर देखने लगा। जैसे वह उनका अभिप्राय नहीं समझ पाया।

लेकिन तभी पण्डित जी ने फिर कहा—'भाई मेरे, आदमी चालाक है। इस संसार में इसने सभी कुछ बनाया है। प्रत्येक वस्तु का उपयोग किया है। अपना अधिकार मानता है। वह यह भूल गया कि सभी जीवों का इस संसार पर अधिकार है। सभी इसके सृष्टा हैं।'

उस व्यक्ति ने कहा—'पण्डितत जी, ऐसा कोई नहीं मानता। दूसरे का अधिकार स्वीकार नहीं किया जाता।

पण्डित जी बोले—'तभी तो अशांति है। कलह है। आदमी के मन में पीड़ा है। एक को दूसरे से भय है।'

बात सुनी, तो वह व्यक्ति साँस भर कर रह गया। अपनी दृष्टि को उसने आकाश की ओर उठा दिया। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'ऐसे तो यह संसार नहीं रहेगा, पण्डित जी! मर जायगा।

पण्डितजी मौन रह गये। उसकी दृष्टि उस भिखारी पर चली गई। देखा कि इतनी देर में वह उठकर बैठ गया था। उसका मुँह सूरज की ओर था। सुदर्शन जी ने देखा कि वह एक उम्रदराज आदमी था। मुँह पर बड़ी-बड़ी दाढ़ी थी। वह श्वेत थी। उसकी आँखों में जिस प्रकार की चंचलता और उद्विग्नता समाविष्ट थी, उससे इस बात का भी पता चलता था कि वह विक्षिप्त था। जब पास बैठ हुआ व्यक्ति उठकर चल दिया, तो तभी, पण्डित सुदर्शन उस भिखारी के पास गए। वह उसके समीप पहुँच कर जैसे एकाएक खो गए। उन्होंने उसे पहचान लिया। उसका पूर्व इतिहास भी उनके सामने आ गया। वह एक सम्भ्रान्त और कुलीन परिवार का व्यक्ति था। शिक्षित था। लेकिन उसकी सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए उसके भाइयों ने, उसकी पत्नी ने उसे ऐसी वस्तु खिला दी कि जिससे उसका दिमाग खराब हो गया। पण्डित जी को यह पता नहीं था कि उसकी पत्नी मर गयी या जीवित थी, परन्तु भाई अवश्य था। वह उस सम्पत्ति का उपभोग कर रहा था। उस दुश्चरित्र पत्नी ने भी अनेक वर्षों तक जीवन के दरिया में गोता खाया था······

पण्डित जी उस व्यक्ति के पास बैठ गये। अचरज की बात कि उस भिखारी ने भी पण्डित जी को पहचान लिया। उसने तुरन्त ही, अपने विकृत हास्य से उनका स्वागत किया। उसी अवस्था में वह बोला—'अच्छा, आप सुदर्शन जी ! कहिये क्या हाल है, आपकी दुनिया का !'

बलात् सुदर्शन जी ने कह दिया—'सब ठीक है। दुनिया पूर्ववत् है।

'हाँ, हाँ, वह तो होगी ही ! पर यह बताओ, तुम कितने भूखों को रोटी दिलाने में समर्थ बने हो। कहो, किसी पैसे वाले को कंगाल बना सके !' यह कहते हुए वह स्वयं खिलखिलाकर हँस दिया—'किसी एक को नहीं, कदापि नहीं !'

पण्डित जी ने इस बात में संलग्नता प्रगट की। वह बोले—'भाई, पैसे वाला चालाक होता है। वह कंगाल नहीं ,बनता।'

किन्तु उस व्यक्ति ने जैसे निरे दार्शनिक तथा समाज-शास्त्र के पण्डित के समान गम्भीर रूप धारण करके कहा—'पर तुमने क्या पाया ···क्या खोजा ! कोई लेक्चर दिये ! तुम सोचते होगे कि पैसे वाले तुम्हारी बातों से मर जायेंगे। तुम्हारी घुड़की को देखकर डर जायेंगे !' वह बड़बड़ाया—'बड़ा खूँखार जानवर है,'यह पैसे वाला ! इस दुनिया के जंगल में अकेला दहाड़ता है···निर्भीक, निर्द्वन्द्व···ही-ही-हो-हो······

सचमुच, उस समय सुदर्शन जी न केवल अपनी अवस्था भूल गये, बल्कि यह भी याद नहीं रहा कि जिस व्यक्ति के पास बैठे हैं, वह विक्षिप्त है। अपितु उन्हें लगा कि उसकी बातों में बल है, आत्मिक ज्ञान है। वह उक्तभोगी है। इसलिए उन्होंने नितान्त श्रद्धा के साथ उसकी ओर देखा और कहा—'कुछ खाओगे ? भूख है ?'

वह हँस दिया—'अरे, भूख ! इसी के लिए तो कल कुत्तों से लड़ा था। पर मैं उनसे भी हार गया। एक कुत्ते ने मेरे हाथ में काट खाया। वह बहादुर था। मैं मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ।'

पण्डित जी ने कहा—'राम-राम !'

भिखारी बोला—'जब बलवान आदमी भी एक निर्बल पर प्रहार करता है, तो वह भी हार जाता है "और कुत्ते तो कई थे। आदमी का आचरण कुत्ते भी करते हैं।'

गीर भाव में सुदर्शन जी बोले—'तुम ठीक कहते हो।'

वह अपनी आँखें निकाल कर जोर से बोला—'मैंने परख की है। आज मायूस भी हूँ। वह मेरी स्त्री···वह भाई···वह छमछमाता हुआ पैसा···ही-ही-ही······

भिखारी अपने बालों को नोंचने लगा। उसकी आँखों में जैसे मन में भरा क्षोभ उतर आया। खून तैर गया, उन आँखों में ! उन बड़े-बड़े

सन-सरीखे बालों को पकड़े हुए ही उसने कहा—'पण्डित जी, सावधान ! इस दुनियाँ में दो खतरनाक वस्तुएँ हैं, एक औरत दूसरा पैसा ! नारी भी मनुष्य को प्यार करती है और उसके प्राणों का नाश कर पाती है …पैसा सहायक बनता है और महाकाल भी सिद्ध होता है, क्यों मानते हैं न, आप इस बात को !'

पण्डित जी ने बरबस कह दिया—'हाँ, मानता हूँ।'

वह बोला—'अवढ़ंगी अघोरि हूँ, राजा हूँ। मैं सभी कुछ देख चुका हूँ। नारी की घृणा देखी, प्यार देखा, पैसे का रंग देखा, बदरंग देखा।'

पण्डित जी ने कहा—'रामगुन, तुम अघोरि हो, सन्त हो।'

लेकिन वह भिखारी फिर हँस दिया। उस अवस्था में उसने आगे जिस विकृत रूप का परिचय दिया, वह पण्डित सुदर्शन को अच्छा नहीं लगा। परन्तु इतना उन्होंने अवश्य समझ लिया कि पागल व्यक्ति भी प्रतिशोध की आग में जलता है। कभी भी वह विचारक और समझदार बनता है उन्होंने अनुभव किया कि इस व्यक्ति के हृदय में जो घृणा और प्रतिशोध का भाव भरा है, वह रिस-रिस कर बाहर निकलता है, इसे तड़पाता है। इसीलिए यह हँसता है, अट्टहास करता है, किलकिलाता है। मानो इसके मन का रोग ही, इसे पागल बनाए रखता है। आत्मा की वेदना को प्रकट करता है।

और उस अवस्था में पण्डित जी की अपनी स्थिति क्योंकि उनकी परिचित सूरतें वहाँ भी दिखाई देती थीं। परन्तु वह भी उस भिखारी के प्रति इस प्रकार संलग्न थे कि जैसे वह उनका जन्म-जन्मांतर का साथी हो। एकाएक ही उन्हें दिखाई दिया। इसलिए वे उसकी कष्ट-कथा और जीवन-गाथा पर एक बार टिके, तो टिके रहे। उसी समय उस पागल ने अपने गूदड़ों से कुछ सूखी रोटी के टुकड़े, निकाले और उन्हें पण्डित सुदर्शन को दिखाता हुआ बोला—'लो, खाओगे, इन्हें ?' और तभी वह एक रोटी के टुकड़े को चबाता हुआ

बोला—'ऊंहुम ! तुम न खा सकोगे ! तुम तो हलुवा-पूरी खाओगे। समाज के नेता हो न, लोगों को सुधार की बातें बताते हो, इसलिए पहिले अपने शरीर का, जबान का सुधार करोगे, उसकी इच्छा का पेट भरोगे।' हा···हा···हो···हो।

उस समय, अपने स्वभाव के अनुरूप, पण्डित सुदर्शन को क्षोभ नहीं आया। अन्यथा, इतना सुनकर वह अवश्य चिढ़ जाते। कहने वाले से लड़ पड़ते। परन्तु तब तो उस पागल की वे बातें मानो उनके मानस में सीधी पहुँच रही थीं। वे काम की थीं, ज्ञानदायक लगती थीं। वे कील की तरह गड़ी जा रही थीं, वह कुछ कहते, तभी पागल बोला—'महाशय जी, यह दुनिया है। समझी नहीं जायेगी। मेरे समान बनो, तो कुछ पाओगे। मैंने समुद्र में गोता मारा है। चमचमाता मोती मेरे हाथ आया है।'

सुदर्शन जी ने बलात् 'हूँ' कर दिया और वहाँ से चल देना चाहा।

किन्तु उस पागल ने उनके हाथ पर अपना हाथ रखा और कहा—'इस दुनिया के पंजे में जो आता है, वह क्या बच पाता है। बताइये, आप कैसे बचेंगे ! बताओगे, तुमने अभी तक मोटर क्यों नहीं खरीदी। बंगले के स्वामी क्यों नहीं बने। ये मोटे कपड़े क्यों नहीं बदले। लगता है, तुमने बैंक में लाख-दो लाख रुपये भी जमा नहीं किये।' वह हँसा—बुद्धू रहे···निरे बुद्धू।'

सुदर्शन भी बोले—'मैं ऐसा अवसर नहीं पा सका।'

'हाँ, यह कहो, अवसरवादी नहीं बने। वरना पैसा तो तुम भी चाहते हो, मालदार बनने की बात मन में लेते हो।' उसने अपनी आँखें ऊपर उठायीं और पार्क के बाहर महलों की ओर दृष्टि ले जा कर बात कही—'इनमें से एक तुम्हारा भी हो सकता था। उस पर तुम्हारा नाम खुदा होता···तुम्हारे नाम का झण्डा···और वह अपेक्षाकृत जोर से हो-हो करके हँस दिया।

सुदर्शन जी खड़े हो गये और बोले—'तुम विक्षिप्त हो। दुःखी

हो। मेरे योग्य कोई सेवा।''

उसने आदेशात्मक ढंग से कहा—'जाओ, इन धनवानों से कह दो, लूट लो, जो लूटा जाय। आँधी उठी है, वह उन्हें उड़ा ले जाने वाली है।' वह बोला—'तुम मजदूरों के नेता हो न, तो उन्हें भी बता दो, ये धनवान उन्हीं का खून पीकर मोटे बने हैं···उन्हें मूर्ख बनाते हैं—'हा···हा···हा···हा···'

सुदर्शन जी चल दिये, जब वे पार्क के द्वार को पार करने लगे, तभी उन्हें पीछे से सुनाई दिया, वह पागल मानो उन्हीं को सुना कर कह रहा था—'यह बेचारा इनसान।'

लेकिन सुदर्शन जी ने उस ओर नहीं देखा। वह सड़क पार पहुँच गये। जब वह लौट कर घर पहुँचे, तो देखते हैं कि कमला उदास भाव से बैठी है। प्रातः में राय जानकीदास, जिस हार को उसके गले में डाल गये, चूड़ियाँ पहना गये, वे उसके हाथों में नहीं। हार भी गले में नहीं। रजनीश स्कूल गया। शंकर मिश्र भी नहीं। जब कमला सामने आई, तो उसको देख कर पण्डित सुदर्शन ने यह भी अनुमान लगाया कि मेरे पीछे यह कमला रोई है। शायद अभी-अभी रोकर चुकी है। इतना देख, पण्डित ने उसे अपने समीप बुलाया, बैठने को कहा। तब उन्होंने कहा—'बेटी, मेरा मन दुःखी है। जानती हो, ऐसा क्यों है?' वह बोले—'यह मेरी दुर्बलता है, जिस अजेयता को मैं प्राप्त करने चला था, वह मैं नहीं पा सका, मैं अनुभव करता हूँ कि इस दुनिया का ऐश्वर्य मुझे भी ठगने में सफल बन गया। मैं इसी में खो गया।'

कमला ने कहा—'पिताजी, आप शान्त बनें! उदार बनें!'

पण्डित जी बोले—'हाँ, बेटी! मैं उदार बनना चाहता हूँ। मुझे दम्भ था कि मैं उदार हूँ। परन्तु आज समझा कि नहीं, मैं पत्थर हूँ। कठोर हूँ। बोलो, वह हार कहाँ है।'

कमला ने कहा—'वह रखा है।'

सुदर्शन जी बोले—'वह तुम्हें पहने रखना चाहिये। तुम्हें अच्छा लगता है। मूल्यवान है।'

इतना सुन कर, कमला ने फिर पिता की ओर अपनी आँखों को उठा लिया। मानो उसने कुछ कहना भी चाहा।

किन्तु तभी सुदर्शन जी फिर बोले—'बेटी, मेरे मन में दर्द है कि आज यदि मेरे पास कुछ भी होता, तो मैं तुम्हारे विवाह पर लुटा देता। और तुम जानती हो, धन का यह अभाव ही आदमी को पीड़ा देता है। दिखाता है कि आज का मनुष्य पैसे की कल्पना को छोड़ और कुछ नहीं देख पाता। यही विवशता है। यही सभ्यता है। और मैं भी आज इसी का शिकार बना हूँ।'

कमला ने कहा—'पिताजी, आप पैसे का चिन्तन न करें। मेरे विवाह की बात को भी महत्व न दें।'

सुदर्शन जी बोले—'न, बेटी! जो निभता नहीं, वह निभाया नहीं जा सकता। उस परिस्थिति में वह नहीं चल सकता। तुम्हारा विवाह जरूर होगा। जब तुम्हारी माँ का विवाह हुआ, पिता का हुआ, तो भला तुम्हारा क्यों न होगा।

कमला बोली—'यदुबाबू आये थे। मैंने उनसे हार ले जाने को कहा था। उन्हें उतार कर दे दिया था। पर वह ले नहीं गये।'

सुदर्शन जी ने जैसे अप्रतिभ बनकर कहा—'न, बेटी! तुम्हें ऐसा नहीं कहना था। शुभ काम में विघ्न नहीं डालना था। जो अपराध मैंने किया, उसे तुम्हें नहीं करना था। वह बोले—'मेरे समक्ष तो प्रश्न है कि तुम्हें क्या दूँ।'

कमला बोली—'आपने जीवन भर दिया। अब भी जो देंगे, वह बड़ा होगा। उसकी धन से तुलना नहीं करनी होगी।'

उस समय सुदर्शन जी के मन को जैसे उल्लास मिला। उन्होंने कहा—'बेटी, अब मुझे एक प्याली चाय दो। गरम-गरम। आज प्रातः से ही सिर दुःखने लगा। भारी बन गया। गया था पार्क में शांति

पाने, पर वहाँ भी मन और भारी बन गया ।'

कमला उठ खड़ी हुई । वह रसोई घर में चली गयी । जब कुछ देर बाद वह चाय का प्याला लेकर आई, तो तभी उसने बताया कि शंकर मिश्र गाँव चला गया । वह कह गया है कि मुझे खबर मिलेगी तो आ जाऊँगा । किसी समय भी आ पहुँचूँगा ।'

चाय का घूँट भरते हुए पण्डित सुदर्शन ने कहा—'आश्चर्य होता है कि शंकर मिश्र बिलकुल बदल गया । भला आदमी है । अकेला है ।'

कमला बोली—'अब शंकर मिश्र निर्लक्ष है । वह कोई आश्रय चाहता है ।'

सुदर्शन जी बोले—'इस जगत में ऐसे बहुत आदमी हैं वे तिनके के समान इस दुनिया के दरिया में बहते हैं ।'

कमला ने कहा—'पिता जी, अधिकांश प्राणी बेकार आते हैं और चले जाते हैं ।'

सुदर्शन पण्डित ने इतना सुना और आँखों से हँस दिया, उन्होंने चाय पी ली और खाली प्याला कमला को पकड़ा दिया । जब कमला प्याले को रसोई घर में रखकर लौटी, तो सुदर्शन जी ने खड़े होकर कहा—'मैं अनुभव करता हूँ कि तुमने यदुनाथ से बहुत कुछ कहा होगा । परन्तु बेटी, मैंने प्रातः जो कुछ कहा, उसका यह अभिप्राय कदापि नहीं था । मेरा तो कहना था कि राय जानकीदास को इस प्रकार का प्रदर्शन नहीं करना था । विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है, जीवन की पूजा है, तो इसलिए, उसका पैसे से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए । पैसा क्षुद्र है, भाग्य की भावना पर आघात करता है । उन्हें छीनता है, तोड़ता है ।'

कमला ने कहा—'पिता जी, जिसके पास पैसा है, वह उसका उपयोग करेगा, प्रदर्शन भी करेगा । इस नीयत का क्या कभी खण्डन हो सकेगा । अभी तो इस विधान को नहीं बदला जायेगा ।'

सुदर्शन जी बोले—'यदि संसार को जीवन पाना है, तो अपने बीच से इस क्रय-विक्रय की आकांक्षा को निकाल देना होगा। पैसा यही करता है। अकल्याण की भावना का निर्माण करता है।'

कमला हँसी—'जिसके पास शरीर बल है, बुद्धि बल है, धन बल है, वह उसे कैसे छुपायेगा। उसका उपयोग अनिवार्य है।'

पण्डित जी ने इतना सुना तो अपना मत नहीं दिया। वह जब बाहर जाने लगे, तो बोले, मैं आज राय जानकीदास से कह दूँगा कि मेरे घर पर कोई प्रदर्शन न करें। मेरी पुत्री को अगर वे सोने से लादना चाहते हैं, तो अपने घर पर ही ऐसा करें। मेरे पास देने को कुछ नहीं। अशीष है। सो वह मेरी बेटी को प्राप्त है।'

जब सुदर्शन जी बाहर चले गए, कमला दूर तक उन्हें देखती रही। वह एक बार फिर यह समझने में प्रयत्नशील रही कि उसके पिता क्या हैं, वह कब अपने मन में कैसी बात ले आते हैं……

इसके बाद ही कमला उत्साह भाव से घर के कामों में लग गयी। उस दिन वह खूब रोई। वह अपने भाग्य और भगवान को भी कोसती रही। परन्तु अब उसके मुँह पर हास्य था और अत्यन्त स्नेहमयी मुसकान का भाव भी उसके मुँह पर उतर आया था।

छब्बीस

शंकर मिश्र जब गाँव में पहुँचा, तो वह इस बात को अपने पेट में नहीं रख सका कि पण्डित सुदर्शन ने अपनी लड़की का विवाह विजाति में करना स्वीकार कर लिया, गरीब बनकर भी करोड़पति का लड़का प्राप्त कर लिया। यद्यपि गांव जाते समय उसके मन में इस प्रकार की दुर्भावना नहीं थी कि वह पण्डित जी के प्रति गांव के समाज में हीनता का प्रदर्शन करेगा। परन्तु वह वाणी से भले ही बदला हो, मन से नहीं बदला था। शहर में रहते हुए पिता-पुत्री के प्रति उसके मन में जो श्रद्धा की भावना निहित थी, गाँव के वातावरण में जाते ही उस पर पानी फिर गया।

एक दिन जब संध्या समय शंकर मिश्र विजिया छानकर साथियों सहित नदी तट पर पहुँचा, तो वहीं पर उसे अपने पेट में छुपी हुई बात कह देने का अवसर मिला। जिसे नहीं कहना चाहता था, उसे बरबस ही, कह देने में समर्थ हो गया।

एक साथी ने कहा—'क्यों मिश्र तो तुम्हारा काम नहीं बना? सुदर्शन पण्डित की पुत्री से तुम्हारा गठ-जोड़ा नहीं हुआ?

इस बात को सुनते ही, शंकर मिश्र बोला—भैया गठ-जोड़ा तो हुआ, पर पति-पत्नी का नहीं, भाई-बहिन का हो गया।

इतना सुना था कि सभी साथियों ने खिलखिला कर हँस दिया। जिस व्यक्ति ने प्रश्न किया, उसने फिर शंकर मिश्र के कन्धे पर हाथ मार कर कहा—'तो यों कहो, कुछ दिन शहर में क्या रह आये, अपनी

बाणी का रुख बदल दिया। अरे, मिश्र ! हमें मूर्ख बनाने चला क्या ! उस शहर में पंडित जी, कहना तो आम बात है। हमें बहकाता है, तूने भी ऐसे ही कहना सीख लिया होगा। तू बार-बार वहाँ गया, रहा, आखिर, इसके अतिरिक्त तेरा और क्या काम हो सकता था। जो लड़की तुझे यहाँ देखना पसन्द नहीं करती थी, तू उसी के घर रह आया, उसके हाथ की रोटी खा आया—शाबाश ! आखिर तो हमारी चौकड़ी का पट्ठा था !'

उसी समय शंकर मिश्र ने सब दास्तान कह सुनाई और बोला—'उस कमला को पाना मेरे भाग्य में कहाँ लिखा था।'

साथियों ने उसकी बात पर भरोसा कर लिया और समझ लिया कि यह मिश्र ठीक कहता है। तभी एक बोला—'अरे, यार ! गये थे ! 'हरिभजन को, ओटन लगे कपास !' तुम सुदर्शन पण्डित की छोकरी को अपनी दुल्हन तो बना नहीं सके, बहिन बना आए—वाह !'

तीसरा बोला—'अब शंकर मिश्र का तीर खाली गया, तो झुक गया। इसने अपना रुख भी बदल दिया।'

चौथे ने कहा—'जिस लड़की को पैसे वाला मिला, उसे तब शंकर मिश्र जैसा पसन्द आता ! अरे, आँखें रहते क्या दही की जगह चूना खा जायेगा।' यह कहते हुए उसने जोर का ठहाका मार दिया।

पहिले ने कहा—'वह लड़की चालाक है। ऊँची उड़ान भरती है। उसका बाप भी रंगा सियार है। आदर्श और सेवा की आड़ में शिकार खेलता है। यह सुदर्शन पण्डित का ही काम है कि कुलिहा में गुड़ फोड़ता है। मजदूरों की दुहाई देकर नेता बनता है और रुपया भी कमाता है।'

एकाएक तनकर शंकर मिश्र बोला—'नहीं, नहीं, सुदर्शन पण्डित ऐसा आदमी नहीं। वह सचमुच ही 'दादा' है। बुद्धि और नीयत दोनों से बड़ा है। उसकी आत्मा में तेज प्रकाश है। अपनी लड़की कमला को भी उसने ऊँचे विचार वाली बनाया है। भला मेरा और

उसका क्या मुकाबला हो सकता है।'

'धत्त् तेरे की !' एक अन्य बोला—अरे, यार ! तू अपने को इतना छोटा मानता है। तू तो मर्द बच्चा है। समझता नहीं, औरत के सामने आदमी सदा बड़ा होता है।'

दूसरा बोला—'यह शंकर मिश्र असलीयत को छिपाता है।'

तीसरा बोला—'जो बाप अपनी लड़की को दूसरी जाति में दे दे, समझ लो कि वह पेट का काला है। बात तो जब थी कि किसी गरीब को देता, अपनी बिरादरी में देता।'

चौथे ने कहा—'जनाब, वह बूढ़ा पण्डित चौकड़ियाँ मारता है। पैसे की तरह जिन्दगी को भी चित्त-पट्ट करके परखता है। उसने इसीलिए गाँव छोड़ा। इससे बड़ा उसके काले मन का और क्या सबूत मिल सकता है कि धन के लालच में उसने लड़की को दूसरी जाति में देना स्वीकार कर लिया।'

शंकर मिश्र बोला—'पण्डित जी जाति-बिरादरी को नहीं मानते। वह तो कहते हैं कि इन्सान ही एक जाति है।'

एक व्यक्ति ने हाथ पर हाथ मार कर कहा—'वाह, पट्ठे ! अब वह बूढ़ा यह भी कहने लगा। इतनी ऊँची कौड़ी उछालने लगा।' वह बोला—'पण्डित को यह पता नहीं, कि जाति न होती, तो धर्म कैसे चलता। फिर तो किसी को भी माँ-बाप बना लिया जाता। सब ओर वर्ण संकरता का राज होता।

स्वयं शंकर प्रस्तुत वार्ता में रस नहीं ले रहा था। उस पर भंग का नशा चढ़ आया था। इसलिए उसने बात टालने के लिए कह दिया 'जिस पेड़ का फल न खाया जाय, उसका शोक ही क्या ? मैं अयोग्य था। कमला के लायक नहीं था।'

पास बैठे व्यक्ति ने कहा—'अरे, वाह देहाती ! इतना अपने आप ही समझ लिया। पण्डित की जिस लड़की ने तुझे हाथ से रोटियाँ बनाकर खिलायीं, बीमारी में तेरी तिमारदारी की, वह जरूर, मन में कुछ

रखती हो। पर तू ऐसा बुद्धू निकला कि कुए पर जाकर भी प्यासा लौट आया। और जानता नहीं कि औरत अपने-आप कुछ नहीं कहती। वह तो बस, आदमी का निमन्त्रण स्वीकार करती है।'

दूसरे ने कहा—'जी, हाँ! अगर पासा गलत पड़ गया तो! बे भाव के जूते भी पड़ते हैं।'

पहिले ने कहा—'यह अनाड़ियों का काम है, खिलाड़ियों का नहीं।'

दूसरे साथी ने बात को बदला और कहा—'पण्डित सुदर्शन ने भी अच्छा नहीं किया। लड़की को बेंच दिया।'

सिर हिलाकर शंकर मिश्र ने इस बात को स्वीकार किया।

एक बोला—'वह ब्राह्मण काला साँप है। उसके दाँतों में जहर भरा है। अपने स्वार्थ के लिए उसने जाति और धर्म को भी भुला दिया।

दूसरे ने कहा—'वह गाँव आए, तो उसका मुँह काला कर दिया जायेगा। वह जाति-द्रोही है, धर्म-द्रोही।'

उस समय झटका-सा खाकर शंकर मिश्र ने अपने उन मित्रों की ओर देखा। जैसे उसने बात को पसन्द नहीं किया।

किन्तु उस व्यक्ति ने फिर कहा—'ब्राह्मण कुल में उत्पन्न लड़की दूसरी जाति में जाये, यह हमारे लिए कलंक है। बोलो, है न, शंकर?'

शंकर ने जैसे ऊपरी भाव से कह दिया—'हाँ।'

'और तुम इस बात को तो मानते हो कि श्रेष्ठ जाति का अभिमान ही हमारा बल है। और हमारे पास क्या है!'

बलात् शंकर मिश्र के मुँह से तब भी निकला—'हाँ। किन्तु इतना कहने के साथ ही, वह अपने-आप बोला—'क्या ब्राह्मण बल जीवित है?' ब्राह्मणत्व है?' उसने कहा—'नहीं, कुछ भी नहीं।' और उसे याद आया कि शहर में प्याऊ पर पानी पिलाने वाला ब्राह्मण प्यासे

को पानी पिलाकर पैसा माँगने के लिए अपने दाँत निपोरता है। एक बार उसने राय जानकीदास के यहाँ रसोइये, को रोटी बनाते देखा, तो पाया कि वह सेठानी और सेठ के समक्ष गिड़गिड़ाता, उन्हें माई-बाप कहता। उसने प्रश्न किया—'आखिर क्यों ? इसीलिए न, कि उसके पास पैसा नहीं था और सेठ पैसे वाला था।' 'सर्वे गुण काञ्चन या ऽ भवन्ति' जिसके पास धन है, वही सर्व गुण सम्पन्न है और इतना तो वह गाँव में भी देखता कि कहीं खाने का निमन्त्रण हो, तो ब्राह्मण आपस में लड़ते हैं···कुत्ते के समान एक दूसरे पर झपटना चाहते हैं······

शंकर मिश्र के सामने बैठा हुआ एक युवक अपनी छोटी-छोटी मूँछें मरोड़ता हुआ बोला—'मजा तो तब हो कि यह विवाह न होने दिया जाय। पण्डित सुदर्शन को सबक दिया जाय कि ऐसे जघन्य अपराध की सजा है, मौत ! जिन्दगी का अन्त !'

एकाएक शंकर मिश्र ने उसे घूरकर कहा—'क्या मौत···जिन्दगी का अन्त !'

'हाँ, शंकर ! जाति और धर्म की उपेक्षा करने वाला मारा भी जाता है। इसके लिए तो इस देश में सदा ही खून का दरिया बहा है।'

शंकर ने उदास स्वर में कहा—'मुझे पता है।'

वह बोला—'तुम्हें नहीं पता। नहीं तो, तुम स्वयं विरोध करते।'

शंकर मिश्र ने कहा—'मैं लाचार था। स्वार्थ मेरा भी था।'

उसको कहा गया—'भला तुममें क्या दोष था। ब्राह्मण थे, उस सेठ के लड़के से अधिक बलवान थे। बस, यही न कि तुम्हारे पास पैसा नहीं था। देखा तुमने, पैसे वालों को कोसने वाला लड़की के विवाह के समय कैसा बदल गया। जिन्दगी भर समाज को मूर्ख बनाता रहा। वह पण्डित भी इस बात को कहता रहा कि पैसा स्थायी नहीं—टिकाऊ नहीं।'

शंकर मिश्र ने कहा—'टिकाऊ तो जिन्दगी भी नहीं। मैं भी नहीं,

तुम भी नहीं !'

उस व्यक्ति ने शंकर मिश्र के हाथ पर हाथ मार कर कहा—'अरे, मूर्ख ! यह संसार भी स्थायी नहीं। कुछ भी नहीं।

उसी समय अन्धेरा बढ़ा, तो सभी खड़े हो गए। जब वे लौटे, तो बात चली, सुदर्शन पण्डित के विरुद्ध प्रचार किया जाय। नगर में जाकर भी उसके घर पर सत्याग्रह किया जा सकता है। इस विवाह को रोका जाय। हमें भी तो अपने दोस्त को बताना चाहिए कि समय पर साथी किस तरह काम आते हैं।

इतनी बात सुनकर शंकर मिश्र सहज भाव से मुसकराया। वह उत्साह भाव से साथियों की ओर देखने लगा।

दूसरे ने कहा—'सचमुच, हमें बताना चाहिए कि जाति-बल क्या है। कितना बड़ा है। कितना शक्तिशाली है। हमें चिल्लाकर सभी को सुनाना चाहिए कि पण्डित सुदर्शन ने जाति के सम्मान पर चोट की है। वह ब्राह्मण जाति का मुँह काला करने पर तुला है।'

किन्तु जब गाँव आया, तो सभी फट गये। अपने-अपने घरों की ओर चल दिए। लेकिन जब शंकर मिश्र अपने घर में गया और आँगन में पड़ी चारपाई पर अकेला पड़ा रहा, तो उस सन्नाटे में, सदा की भांति तब भी उसे अभाव खटका'''वह सूनापन काटने को आया। अतएव, उसके मन में बात उठी कि सुयोग हो, तो वह अब भी उस कमला को प्राप्त कर सकता है। लोग आन्दोलन करें, तो असम्भव को भी सम्भव बनाया जा सकता है। इस प्रकार जब एक अलभ्य और सुस्वादु मोह उसके अन्तर में जागा, प्रतिष्ठापित हुआ, तो वह उस रात के प्रहर में, जाने कब तक आसमान के तारे देखता रहा। वह सो नहीं सका। वह एक अजीब प्रकार के मोहजाल में फँस गया। मन विलोड़ित हो उठा। शंकर मिश्र एक ऐसी तेज हवा का सहारा लेकर उड़ चला कि जो उसे विपरीत दिशा की ओर लिए जा रही थी। इसलिए

जब वह बहुत दूर उड़ गया, तभी एक झटका-सा खाकर नीचे गिर पड़ा। उसे ध्यान आया कि उस कमला के समक्ष वह ईंट का टुकड़ा है···माटी का ढेला! दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है······

आँख खोलते ही शंकर मिश्र वास्तविकता पर आया, तो वह जैसे चुटीला बन गया। तड़प गया। उसने कहा, साथी भी मूर्ख बनाते हैं··· अपना मनोरंजन करना चाहते हैं···गधे के बच्चे!

किन्तु जब नया सवेरा हुआ और शंकर मिश्र घर से निकला, त जो भी मिला, उसी ने प्रश्न किया—'कहो मिश्र यह ठीक है न कि पण्डित सुदर्शन ने अपनी जाति बेंच दी, ईमान बेंच दिया।'

चकित बनकर शंकर मिश्र ने जहाँ-तहाँ यह बात सुनी, तो वह चकित रह गया। उसने रात में बात कही और सुबह उसका ढिंढोरा पिट गया। परन्तु इससे तो उसे बल मिला। पश्चाताप करने की अपेक्षा वह स्वयं आशा से भर गया कि शायद उसके मन की बात पूरी होगी। लोक-चर्चा का बल पण्डित सुदर्शन को भी झुकाने के लिए बाध्य करेगा।

एक दिन शंकर मिश्र ने जब यह सुना कि गाँव का विरोध पण्डित सुदर्शन तक पहुँचा दिया गया, तो उसे अत्यधिक सुख मिला। किन्तु वह उस बूढ़े को जानता था, उसकी जिद का परिचय पा चुका था, इसलिए गाँव वाले सफल हों, इस विषय में वह अधिक आशान्वित भी नहीं था। वैसे जो व्यक्ति पण्डित सुदर्शन से जाकर मिला, वह गाँव का चौधरी था। उसके साथ गाँव के कुछ ब्राह्मण भी थे। चौधरी की बात सुनकर पण्डित सुदर्शन ने कहा—'चौधरी, जेवड़ी जल गई, परन्तु बल नहीं गया। ब्राह्मण जाति का पतन तो हो गया, लेकिन मिथ्याभिमान ज्यों-का-त्यों बना रहा।'

चौधरी मुसकराया। उसने मौन भाव में पण्डित जी की बात का समर्थन कर दिया।

पण्डित जी बोले—'अब जातिवाद का भवन गिर रहा है। उसकी दीवारें ढह रही हैं। आश्चर्य कि लोग अब भी उसे महत्व देते हैं।' यह कहते हुए पण्डित सुदर्शन का मुँह गम्भीर बन गया।

और गांव वालों ने देखा कि इतने समय में पण्डित सुदर्शन बहुत बदल चुके हैं। सिर के सभी बाल सफेद पड़ गये। चेहरा मुरझा गया। चिन्तनशील और परिश्रमी भी लगने लगे। अतएव, लोग अपनी बात को आगे नहीं बढ़ा सके। उसी समय कमला वहाँ आई। वह बोली—'गाँव में यह बात किसने प्रचारित की ? क्या शंकर मिश्र ने ?'

चौधरी ने कहा—'हाँ, उसी ने।' वह बोले—'शंकर मिश्र पहिले गया, तो तुम लोगों की बड़ी तारीफ करता था। पर इस बार बिलकुल बदल गया।'

पण्डित सुदर्शन ने कहा—'चौधरी, यह पुत्री के स्वार्थ की बात है, मैं बाधक नहीं बनूँगा। पुत्री जहाँ जाना चाहे, जाये। मैं उसका समर्थन करूँगा।'

चौधरी ने कहा—'किन्तु आप पिता हैं। आपका भी कर्तव्य है।'

पण्डित सुदर्शन बोले—'यह भी माँ-बाप का दम्भ है। वे अपनी सन्तान पर शासन करना चाहते हैं। उन्हें जीवन भर दास बनाये रखना पसन्द करते हैं। मेरी पुत्री सयानी है, समर्थ है, शिक्षित है; तो क्यों न अब इसे स्वतन्त्र बनकर अपने मार्ग का निर्माण करना चाहिए।'

फिर भी चौधरी ने कहा—'पण्डित जी, यह समाज, इसके नियम।'

पण्डित जी ने कहा—'ये सभी सीमाहीन हैं। प्रगति में बाधक हैं। क्रांतिकारी उन्हें तोड़ देते हैं। बलवान लाँघ जाते हैं। मेरी पुत्री भी क्रांतिकारी है, तो वह क्यों न उन्हें तोड़े। मैं कहता हूँ, जरूर तोड़े। मैं केवल ब्राह्मण समुदाय की चिन्ता नहीं करता; मुझे इन्सान की चिंता है। ठण्डी लाश बनी जाति की नहीं, एक बलवान इन्सान की चिन्ता है। ऐसा व्यक्ति विविध जातियों से बने देश की सेवा करता है और यह तो

तुम मानोगे ही कि सब धर्मों का मूल मानवता है,—मानव-धर्म ! वही राष्ट्र-धर्म कहलाता है ।' वह बोले—'चौधरी अब मैं थक गया । देखते हो, मेरा स्वास्थ्य रिस-रिस कर जा रहा है । अब जीवन समाप्त हो रहा है । दीये में तेल नहीं रहा, बाती का अस्तित्व मिट रहा है और यह तुम जानते हो कि आजकल का इन्सान दुःखी है, अशान्त है । नयी समस्या का निर्माण करना भला कहाँ की बुद्धिमत्ता है ! इसलिए मैंने कमला की इच्छा का विरोध नहीं किया । अपना भला-बुरा समझना इसी का काम था ।'

चौधरी के मन में बहुत सी बातें थीं । परन्तु जब पण्डित जी को स्वयं निःशक्त पाया, तो उन्हें आगे बढ़ने का रास्ता नहीं मिला । कमला की ओर देखकर भी उनका मन झुक गया । उसकी शिक्षा, विचार प्रौढ़ता का रूप धारण कर उसके चेहरे पर आ बैठे थे । वह सौरभ-प्रतिमा आदर के योग्य थी, उपेक्षा या प्रताड़ना के लिए नहीं···वह किसी देव-मन्दिर की प्रतिमा थी कि जो उस बौद्धिक विचार वाले आदर्शवादी पण्डित सुदर्शन के घर में कन्या बन कर आ गयी थी······

सत्ताइस

जिन विषम परिस्थितियों में राय जानकीदास ने पुत्र की माँग को स्वीकार किया और पण्डित सुदर्शन की पुत्री कमला को अपनी पुत्र-वधु मानने की सहमति दी, किसी और की दृष्टि में यह भले ही रहस्य और कुटिलता से भरी बात न हो, परन्तु स्वयं यदुनाथ उससे पूर्णतः आशंकित था और किसी भी घटित होने वाली दुर्घटना के प्रति सचेष्ट था। स्थिति यह थी कि पिता अपने पुत्र के समक्ष हार चुका था। जब यदुनाथ विवाह नहीं कर रहा था, तो उसकी इच्छा के समक्ष पिता ने अपना सिर झुकाया था। किन्तु वह पिता कब, किस घिनौनी और क्रूर अवस्था को जन्म दे, यही भाव उन दिनों यदुनाथ के मन में डोलता था। वह अपने पिता को यह बताने के लिए प्रयत्नशील था कि पण्डित सुदर्शन का काम व्यापक है, वह वास्तविक अर्थों में समाज के सेवक हैं।

इसी हेतु से यदुनाथ एक दिन राय जानकीदास को नगर के ऐसे स्थल पर ले गया कि जहाँ न तो सभ्य व्यक्ति का आना-जाना होता था और न ही स्वास्थ्यप्रद वायु का उस ओर जाना होता था। संयोग की बात थी कि उस स्थान पर जब पिता-पुत्र पहुँचे, तो रात के उस अन्धियारे प्रहर में ही पण्डित सुदर्शन भी उस ओर गये। वह एक छोटा-सा मकान था। जहाँ अन्धेरा था। पण्डित जी को देख, पिता-पुत्र रुक गये और देखने को उत्सुक हुए कि वह क्या करते हैं। किन्तु पण्डित जी ने वहाँ जाते ही पुकार लगायी—'रामू की माँ!'

उत्तर में एक पीड़ायुक्त आवाज उनके कानों में पड़ी। पण्डित जी वहीं पहुँच गये। बोले—'आज चिराग भी नहीं जला। बता तो, कहाँ दीया है, कहाँ दियासलाई।'

रामू की माँ ने दियासलाई पण्डित जी के हाथ पर रख दी। चिराग जल गया। पण्डित सुदर्शन बैठ गये। वह उस रक्तहीन, जर्जर और वृद्धा रामू की माँ कोलक्ष्य करते हुए बोले, 'तुमने आज कुछ खाया? अपने इन जख्मों को धोया?' उन्होंने कहा—'मैं इन दिनों इतना व्यस्त रहा कि तेरे पास नहीं आ सका।'

उत्तर में रामू की माँ मौन रह गयी। उसने लम्बी साँस ली और छोड़ दी।

पण्डित जी बोले—'रामू की माँ, धैर्य से काम ले। अपने को इतनी हीन और कायर मत बनने दे। अब उठ कर बैठ, मैं तेरे जख्म को धोता हूँ। इन पर नयी पट्टी बाँधता हूँ। मैं अब जल्दी ही तुझे बाहर भिजवा दूँगा। दूसरे नगर में कोढ़ियों का अस्पताल है, वहाँ तेरा इलाज होगा। अच्छी हो जायेगी। और यह क्या।' उन्होंने चंचल बनकर कहा—'तू रोती है, रामू की माँ! छिः! यह जीवन रोने के लिये नहीं है,—हँसने के लिये है। और तू तो नारी है,—माँ है। तूने कई पुत्रों को जन्म दिया है। वह नहीं रहे, तो भला इसमें तेरा क्या। आदमी धन उपार्जित करता है और चला जाता है। यही जीवन का क्रम है। तू जानती तो है कि इस दुनिया के बाग में सभी फूल देर तक नहीं खिले रहते। कुछ जल्दी मुरझाते हैं—'वे खिलते ही टूट जाते हैं।'

किन्तु इतना सुन कर भी रामू की माँ फफक पड़ी। वह अतिशय कातर बन कर बोली—'पण्डित जी, मैं असहाय हूँ। भाग्य की मारी हूँ।'

पण्डित जी ने पानी का बर्तन ले लिया। उसमें दवा डाली। वे

रामू की माँ के जख्मों को धोने लगे। वे अभी हँसने की बात कह रहे थे, किन्तु रामू की माँ की अवस्था देख वह स्वयं रो पड़े। उस वृद्धा के करुण और दुर्बल आँसू नहीं देख सके।

उसी समय रामू की माँ ने तड़प कर कहा—'मैं मरना चाहती हूँ, पण्डित जी।'

पण्डित जी ने कहा—'रामू की माँ, इन कष्टों से छुटकारा तब भी नहीं होगा। तुमने अपने जीवन में जो दर्द पाया है, वह क्या सहज में जा सकेगा।'

कोढ़ के वे जख्म धुल गये, पट्टी बँध गयी। उनसे बहता हुआ पीप साफ हो गया। पण्डित जी ने उन पर दवा का लेप किया। जब वे हाथ धोकर पुनः अपने स्थान पर बैठे, तो बोले—'रामू की माँ, जिन आँसुओं से तुम अपनी अवस्था का बखान करती हो, इस जगत में बहुधा यही होता है। तुम्हारे पास पैसा होता, तो तुम्हें पुत्र का अभाव भी न खटकता। तुम्हारा सफर शान्ति और सुख से बीत जाता।'

रामू की माँ बोली—'पण्डित जी, मैंने आज तक नहीं समझा कि इस जीवन का धर्म क्या है···लक्ष्य क्या। मेरे मन की यही पीड़ा है।'

पण्डित जी ने कहा—'तू यह न समझे, तो ठीक है। और जानती तो है कि आदमी बिक गया है। दास बना है। भला अभावों की इस दुनियाँ में सन्तोष कहाँ। अपराध हमारा है। जिस तरह तुम्हारे शरीर से यह पीप चू रहा है···कोढ़ से शरीर सड़ा है···इसीलिये न कि तुमने भूल की, इस नारी शरीर के साथ अन्याय किया। वासना की कीचड़ में अपने को फँसा दिया। सुन्दर जीवन का प्राण घोंट दिया···।

एकाएक रामू की माँ चीख पड़ी—'तुम मुझे मार दो, पण्डित जी।'

पण्डित जी के होठों पर विषैली मुस्कान आयी—'तुम्हारे रोग का यह भी इलाज नहीं, रामू की माँ।'

किन्तु रामू की माँ ने तब भी तड़पकर कहा—'मेरा रोग असाध्य हैं। आपने व्यर्थ ही मुझे पकड़ लिया। जीवन के दरिया में मुझे क्यों न डूबने दिया। इस पापिनी को उबारना नहीं था।'

इसी समय पण्डित जी ने थैले से कुछ फल निकाले और उन्हें उस वृद्धा के सिरहाने रखते हुए कहा—'निराश मत बनो। धीरज से काम लो। भगवान का स्मरण रखो।'

रामू की माँ बोली—'कल कमला बिटिया भी आई थी। उसके साथ यदु बाबू। वे कुछ रुपये दे गये।'

पण्डित जी बोली—'यदु बाबू बड़े बाप के बड़े पुत्र हैं, उदार हैं।'

रामू की माँ ने कहा—'मेरे आशीष की कीमत तो क्या है, पर उनसे कह दिया कि तुम दोनों की जोड़ी फले-फूले।'

उत्साहित बन कर पण्डित जी बोले—'तेरा आशीष बड़ा है, भगवान को आज तेरे पास ऊँची भावना है।'

साँस भरकर रामू की माँ बोली—'हाँ, भावना है, भगवान है। अब और मेरे पास क्या रखा है।'

पण्डित जी ने कहा—'संसार के सभी बच्चे तेरे हैं। तेरे आशीष के अधिकारी हैं। तू सभी को प्यार कर। सभी के लिये आशीषों की बौछार कर!' वह बोले 'आज तू जिस जीवन-तट पर खड़ी है, उस पर अकेली नहीं। यहाँ कुछ आकर उतरे हैं, कुछ चढ़ने वाले हैं। उस पार जाने वाले हैं। देख लो, कैसा संयोग है। यह कितना बड़ा मेला है। क्या यहाँ कुछ घटा है। चारों ओर बढ़ोतरी है। उज्ज्वलता है। प्रफुल्लता है। इस धरती पर सभी ओर तो भावना का शृंगार हुआ है।'

किन्तु रामू की माँ के मन में फिर उमस पैदा हुई। उसने कहा—'पण्डित जी, यह अन्धेरा···यह अन्धा इन्सान······

पण्डित जी ने उसके दुर्बल हाथ को सहलाया। उन्होंने कहा—

चिन्ता न कर, यह अन्धेरा भी हटेगा, रामू की माँ ! पथरीला इन्सान भी मोम बनेगा। पिघलेगा।'

उसी समय द्वार के पास खड़े राय जानकीदास ने यदुनाथ को टंकोर—'आओ चलो।' और वे जब उस मकान से बाहर निकल कर चले, तो लम्बी साँस भर कर ऐसे कातर बने कि जैसे वे अपने पुत्र के समक्ष भी क्षुद्र थे, कायर थे। सड़क पर खड़ी मोटर में पिता-पुत्र जा बैठे। घर पहुँच गये। राय जानकीदास अपने बिस्तर पर पड़ गये। रात आगे बढ़ने लगी किन्तु राय साहब के प्राणों में जो कोलाहल एक बार प्रविष्ट हुआ, तो वे उसे नहीं दबा सके, न निकाल सके। उनके मन में लज्जा थी। वह लज्जा और क्षोभ से जले जा रहे थे। उस सेठ के मानस में इस बात का प्रायश्चित था और जलन थी कि उसने पण्डित सुदर्शन को नहीं समझा। रास्ते में यदुनाथ ने यह भी अपने पिता को बताया कि जिस औरत की पण्डित जी सेवा करने जाते हैं वह किसी समय की भ्रष्ट नारी थी।

एकाएक पैदा हुई उस मानसिक और आत्मिक पीड़ा का परिणाम यह हुआ कि राय जानकीदास को खून की उल्टी हुई। बात उस विशाल भवन के प्रत्येक सदस्य के कानों में पहुँच गयी। डाक्टर बुलाया गया। किन्तु राय जानकीदास की इच्छा थी कि पण्डित सुदर्शन को बुलाया जाय। फलस्वरूप, उस रात में ही, पण्डित जी और कमला वहाँ पहुँच गये। उस समय राय जानकीदास शिथिल थे। उनके नेत्र अधखुले थे, जब पण्डित जी पहुँचे, तो उन्हें इशारे से पास बुलाया, कमला को भी इशारा किया। पण्डित जी ने अपना हाथ उनके सिर पर रखा और—'आप भाग्यवान हैं, धीरज से काम लें। भगवान का स्मरण करें।'

किन्तु राय जानकीदास की आँखें भर आईं। उन्होंने उद्वेग भरे स्वर में कहा—'पण्डित जी, यह कमला इस घर की बहूरानी है। अब इस घर को आपके आशीष की आकांक्षा है।

लेकिन पण्डित जी बोल नहीं सके। वे स्वयं मूर्तिवत् बने राय जानकीदास के मन की पीड़ा में समा गये। जब मौत आती है, तो इंसान उससे किस प्रकार भय खाता है, मोहजाल से निकलते तड़पता है, मानो वही सब उनके सामने था, उन्हें दिखाई दे रहा था, जैसे राय जानकीदास का समय आ चुका था। वह कैसा निर्मम और क्रूर आघात था कि सम्पदा थी, पुत्र और पत्नी थी, नौकर थे, यश था, परन्तु राय जानकीदास के लिए उस समय सभी बेकार थे। डाक्टर बैठा था। वह इन्जेक्शन दे चुका था। किन्तु खून की उल्टी हो रही थी। प्राण तड़प रहे थे। वह निकलने के लिए आकुल थे।

× × ×

प्रातः हुआ तो नगर में यह समाचार फैलते देर नहीं लगी कि राय जानकीदास का देहावसान हो गया। उनकी चिता जलाकर जब समाज लौटा, तो कमला यदुनाथ के साथ थी। उसकी आँखें भी भरी थीं। किन्तु उन दोनों के साथ चलते हुए पण्डित सुदर्शन मन में बात लिए थे, यही एक रास्ता है, कि जिस पर सब साथ चलते हैं, एक ही भावना से भरे होते हैं···मौत के आँचल में गरीब-अमीर सभी शांति का आभास पाते हैं···क्षुद्र और तुच्छ बन जाते हैं, इस धरती के लोग।